मीरा : लोकतात्त्विक अध्ययन

आवरण चित्र साभार
श्री सुरेश शर्मा

सघी प्रकाशन
जयपुर उदयपुर

मीरां : लोकतात्त्विक अध्ययन

प्रकाशक विजेन्द्र कुमार सधी
सधी प्रकाशन
सी 177, महावीर मार्ग,
मालवीय नगर
जयपुर

शाखा 53, बापू बाजार,
उदयपुर-313001

मूल्य एक सौ रुपये

सधी प्रकाशन, जयपुर-उदयपुर द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण 1989
सर्वाधिकार : लेखकाधीन/कोपड़ा प्रिंटर्स मोहन पार्क दिल्ली 110032 में मुद्रित

MEERA LOKTATTVIK ADHYAYAN
by Dr Alam Shah Khan

Rs 100 00

समर्पित

प्रथम गुरु श्री पुरुषोत्तम लाल जी तिवारी

को

इस भावना से—

मेरा मुझ मे कुछ नही
जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौपता
क्या लागै है मोर।

—कबीर

प्रस्तावना

मीरा राजस्थानी साहित्य मे एक एसी भक्त हुई है कि जिसका व्यक्तित्व दो बडे राजघराना के बीच सतु प्रथ रहा है। तथापि दोनो म स किसी न भी उसके व्यक्तित्व या उसकी भक्ति के दस्तावेजी सबूत सहेज कर नही रखे। मीरा की भक्ति गरिमा का अनुमान इसी तथ्य स किया जा सकता है कि अपन जीवन काल म ही गुजरात से वृन्दावन तक और धुर पूरब म काशी और बगाल के बाउला तक उसके पद गाय जाने लगे थे।

ऐसा क्या था मीरा की भक्ति म, उसके जीवन की परिस्थितियो और घटना क्रम मे कि एक ठाकुर घराने की कन्या, मात्र पैंतालीस वष की होते होते भावना रूप होकर मत्युञ्जयी बन गयी, कालजयी हो गयी।

यह सवाल लम्बे अरस से मन माथे मे घुमड रहा था। अत निश्चय किया कि मीरा के प्रामाणिक माने-जाने वाले पदो को लेकर एक अध्ययन के द्वारा यह खोजने का प्रयास किया जाय कि किन किन तत्वो विशेषताओ के रहन कोई सत, कोई भक्त या वीतरागी अपन देश-काल की सीमाओ को लाँघ कर सवदेशीय और सवव्यापी हो जाता है।

यो तो मीरा को लेकर काफी ऐतिहासिक विवेचन हुआ है उसके देशव्यापी पदो को छान कर प्रामाणिक अप्रामाणिक का विभेदीकरण भी किया गया है, उस पर पूववर्ती भक्तो सतो एव कवियो के प्रभाव की छाप को पहचानने के प्रयत्न भी किय गये है, उसके पदो को काव्य शास्त्र की कसौटियो पर कस कर यह सिद्ध करने की कोशिश भी की गयी है कि वह कवयित्री थी या नही वह भक्त थी या नही यावि वह स्वय भी थी या नही ?

इस प्रकार के साहित्यिक ऊहापोह और अनुमानो के चक्कर मे न पड कर प्रस्तुत अध्ययन मे यह जानने का प्रयास किया गया है कि दो धुरमूनीय राजघरानो न अमरत्व को प्राप्त मीरा जैसे व्यक्तित्व के जनक होने का गौरव भाव जानबूझ कर क्यो छोड दिया ?

यह खोजने का प्रयत्न भी किया गया है कि वे कौन-सी सामाजिक, सास्कृतिक

एव मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ थीं जिनके रहते मीरा के विशिष्ट, अन्तर्मुखी, हठीले और अक्खड व्यक्तित्व का गठन हुआ था। तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक एव आध्यात्मिक-लौकिक धरातल के साथ मीरा के व्यक्तित्व का समीकरण बिठाने का प्रयत्न भी इस अध्ययन मे किया गया है, जिसे अपने ढग का प्रथम व्यवस्थित प्रयास कहा जा सकता है।

मीरा के व्यक्तित्व को चरण बद्ध करके देखने के इस प्रयास मे उसके रचनाकार के स्वरूप को समझने की एक दृष्टि उभरती है, किंतु यहाँ गहराई मे न जाकर उसकी ओर सकेत मात्र किये गये हैं।

इस अध्ययन का मुख्य लक्ष्य लोक साहित्य म मीरा और मीरा मे लोक साहित्य की तलाश है। साथ ही यह भी देखना है कि मध्यकालीन वर्जनाओ मर्यादाओ से बँधी एक राजवधू, वह भी विधवा बागी बन कर लोक मे ऐसे कैसे रलमिल गयी कि मीरा म लोक और लोक म मीरा मूर्त हो उठी। वस्तुत मीरा हिन्दी देश की प्रथम जन-कवयित्री है और उसका काव्य कबीर के साथ, प्रथम जन काव्य। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन मे शास्त्रानुगमन एव चिन्तन नही है, यदि कुछ है तो लोक धरातल पर मीरा काव्य की परख का प्रयास। आशा है, इससे मीरा को समझने की एक और दिशा मिल सकेगी।

15 अगस्त, 1987

—आलम शाह खान

'आँगन छाया
23, सुन्दर वास (उत्तरी)
उदयपुर-313001 (राज०)

विषय सूची

1 मीरा एव उसका युग
मेडता--प्रादुर्भाव उत्थान और सघप युग 9 24
मेवाड--प्रतिष्ठित गुहिलवश और मीरा कालीन राणा 14

2 मीरा पारिवारिक परिवेश 18
मेवाड और मेडता का तत्कालीन परिवेश 25-38

3 मीरा लोक सग्रह के अवसर 25

4 मीरा व्यक्तित्व मीमासा 39 48
बाह्य साक्ष्य 49 64
पारिस्थितिक समीकरण 48

5 मीरा काव्य लोकतात्त्विक अध्ययन 60
(1) धार्मिक तत्त्व 65-184
(2) सामाजिक तत्त्व 6-
(3) लोक सस्कृति के तत्त्व 124
(4) शैली तत्त्व 163

उपसहार 174

सन्दभ सकेत 185 189

191

1 मीरा एव उसका युग

पृष्ठ भूमि

अजमेर दिल्ली के चौहानो, कन्नौज के गहरवालो, गुजरात मालवा के सोलकियो परमारो का पतन होने पर 15वी सदी के अतिम चरण मे मारवाड-मेवाड मे राठौडो गुहिलो का वचस्व बढ गया।1(5) इन दो राजपूतवशो के जोर पकडने का यह परिणाम हुआ कि दिल्ली के सुलतानो की राज्य सीमा सिकुड गयी और यह स्थिति आ गयी कि, "राजधानी दिल्ली के पश्चिमी दरवाजे दोपहर की नमाज के बाद बन्द कर दिए जाते थे। उसके बाद उस ओर से न कोई शहर म आ सकता था न बाहर जा सकता था, उस नमाज के समय मेवाती लोग बहुधा सरे हौज पर आ-जाते थे और पानी भरने वालो के बतन-कपडे तक छीनकर ले जाते थे।2(105)

मेवाड के महाराणा कुभा (विक्रमी 1525 मे मृत्यु) और राणा रायमल की (विक्रमी 1565 मे) मृत्यु के समय गुहिल राणाओ के लिए 'हिन्दूपत पातशाह', 'हिंदुवा सूरज', 'परमेश्वर', 'राजेन्द', जैसी उपाधिया अभिलेखो मे आती हैं, 3(13) जबकि जोधपुर और मेडता के राठौडो के लिए 'राव' की उपाधि लगती थी।4(22-23) अर्थात पश्चिमी भारत की राजनीतिक मर्यादाएँ इस तरह से गुँथ चली थी कि गुजरात मे पठान शासक 'सुल्तान' हो गए थे, मालवा मे भी वे 'सुलतान' हो गये थे, मेवाड मे 'महाराणा' थे जो वस्तुत अपने को 'दीवाण' कहते थे, मारवाडमे 'राव' थे और धुर पश्चिम मे भाटी राजपूत भी 'राव' कहलाते थे। बीच के छोटे-मोटे सामत, जागीरदार, ठिकानेदार कोई राव' कोई रावराजा, कोई रावल, कोई 'सरदार' कहलाते थे।

सम सामयिक गुजरात राजस्थान की सास्कृतिक भूमिका कुछ इस तरह की थी।5(8 9) —

(1) राठौडो तथा गुहिलौतो का मूल स्थान गुजरात, काठियावाड, मे था और कम से कम 18वी सदी तक गुजरात राजपूताने की सास्कृतिक और भाषानात्विक विशेषताओ मे समता मिलती है।5(8) हमें पता है कि 8वीं विक्रमी मे बप्पा रावल

ने मेदपाट का इलाका जीतकर गुहिलौत राज्य की नीव डाली थी। जो अगले 700 800 वर्षों मे फैलकर इतना बडा हो गया था कि उत्तर मे वह आगरा को छूता था पूव मे अजमेर-श्रीनगर को पश्चिम म बदायू को और दक्षिण म गिरनार की सीमा छूता था। उस वश की अद्वितीय प्रतिष्ठा थी और इतना मान था कि पडोसी राजा और राजपूतवश के लोग नजराने मे महाराणा को अपने कुल के 10,000 50 000 सिर नजरान मे देने की प्रतिज्ञा करते थे। 1(32 32)

हमे यह भी पता है कि राव सीहा ने पवारो क भण्डारे को जीतकर जिस राठौडी राज्य की स्थापना की थी, वह 200 300 वर्षों मे गगानगर स सिरोही और ईडर तक फैल गया था और इस तरह से पश्चिमी भारत के पूरे माग पर राठौडा का नियत्रण हो गमा था। दिल्ली और गुजरात के बीच मालवा होकर जाने के अलावा सारे रास्ते या तो गुहिलौता या राठौडों के राज्यो मे से होकर जाते थे। ये रास्ते सदा व्यापारियो, साधुसतो, शिल्पियो और अश्वविक्रेताओ से व्यस्त रहने वाले माग थे जिन पर राठौर वशी छोटे मोटे रावल, लोगो की रक्षा भी करते थे और अवसर पडने पर लूटमार भी करते थे4(38)।

(2) राजपूती जीवन सदा तलवारो की झकारो के बीच, घोडा की पीठ पर और युद्ध तथा सघर्षों के बीच बीतता था। घर पर रहना, सामाजिक या धार्मिक कामो मे मन लगाना न तो गुहिलोता म प्रमाणित है, न राठौडो मे। हा, छोटे मोटे जागीरदार, सूबेदार या ठिकानेदार कभी-कभार आलस और अमल पानी का सुख उठा लेत थ 5(36-37)। राजपूती वीरो की दिनचर्या इतनी युद्ध सकुल होती थी कि उन्हें स्त्रियो और उनकी गतिविधिया पर व्यक्तिगत ध्यान देने की फुरसत ही नहीं होती थी। उस समाज मे राजपूत घराने की पत्नियाँ या तो नजराने मे आई हुई भेंट होती थी या फिर युद्ध और सधि के नतीजे में आई हुई 5(8 9)। उनक साथ दावडियो, दासियो के जत्थे भी हुआ करत थे और इस तरह की स्त्रिया से बडे सामता और राजाओ के अन्त पुर भरे रहते थे, जो आपस म एक दूसरी की भाषा भी नहीं समझ पाती थी। खुद महाराणा सागा की 27 रानियाँ थीं 1(87), जो हाडा, राठौड, चौहान, सेराड, देवडा, तवर, सोलकी, बागडिया चौहान, साकला, ईडरिया राठौड घरानो से थी। जिस राव, राजा और महाराणा का जितना शौय और प्रताप होता था उसके अन्त पुर मे स्त्रियो की उतनी ही भर-मार होती थी।

बताया जाता है कि राजपूता का पारिवारिक जीवन लगभग शून्य होता था। किसी राव या राजा को जब अपने महलो म रात बितानी होती थी तो अन्त पुर के रक्षक से पता किया जाता था कि किस रानी के महाँ समय बिताया जा सकता है? तदनुसार सूचना होती थी और उस रानी के महल म चहल पहल हो जाती थी। दासियाँ कासा बनाती थी, समय होने पर सरदार वहाँ पहुँचते,

जीमण चाटण, पासा चौपड होता और मनोरजन का वातावरण बनता था5(37)। रानियो का पद और गौरव राजनीति और युद्ध के वातावरण से बधा रहता था। वे रानियाँ अपने निर्वाह और व्यय के पृथक साधन भी रखती थी—अपने पास आभूषण, नकदी, हीरे, जवाहरातो का सचय करती रहती थी। ताकि वक्त-जरूरत काम आए 5(38)। ऐसे प्रमाण भी हैं कि जब ससुराल मे निभाव न हो तो पीहर वाले अपनी कन्या के निर्वाह की व्यवस्था करते थे। राणा सागा की एक बहिन आनदाबाई का विवाह सिरोही के राव जगमाल के साथ हुआ था। उसका वहाँ निभाव नही हुआ तो सागा के भाई पृथ्वीराज ने 1566 विक्रमी मे जगमाल को अपमानित करके उसे अपनी बहन के चरण चूमने को मजबूर किया था 1(39 40)। उसी तरह पृथ्वीराज गिरनार के यादव राजा मडलीक के यहाँ से अपनी बुआ—रमाबाई—को मेवाड ले आया था और उसके निर्वाह के लिए जावद का परगना निर्धारित किया था।1(30)।

इससे पता लगता है कि राजपूत राज घरानो मे रानियो की प्रतिष्ठा और मर्यादा स्थिर नही होती थी। अपनी सतान के लिए कई बार उन्हे कूटनीतिक-योजना भी करनी पडती थी। हाडी रानी करमैती ने इसी तरह योजना करके अपने पुत्रो—विक्रमाजीत और उदयसिह—के लिए राणा सागा से रणथम्भौर का इलाका निर्धारित करवा लिया था और मेवाड की कुल परम्परा के विरुद्ध अपने भाई सूरजमाल हाडा को उनका सरक्षक बनवाया था। (17-18)। ऐसे प्रमाण भी है जहाँ राव या राजा के साथ वीर पत्नी युद्धरत भी रहती थी। सागा के भाई पृथ्वीराज का पूरा जीवन घोडे की पीठ पर बीता था और उसकी पत्नी 'तारा' उसके साथ हर युद्ध मे साथिन रही थी 1(40)। बल्कि 1566 विक्रमी मे वह उसके साथ सती भी हुई थी 1(40)।

अर्थात् 16वी सदी मे राजघरानो की रानियो के दो स्पष्ट कर्तव्य थे। एक तो यह कि वे अपने महल मे अपनी दासियो, दावडिया और सेवको के साथ अपनी मडली बनाकर मर्यादा मे जिए और जैसी राजनीतिक स्थिति हो वैसा गौरव या अवमानना सहें अथवा यह कि वे राजनीतिक दाव पेंचो का सचालन करें या पति गृह त्यागकर पीहर मे रहे। पहले उदाहरण मे नि यानवे फीसदी रानियो की गिनती हो सकती है, परतु दूसरे उदाहरण मे गिनीचुनी महिलाएँ आए गी जैसा कि मेवाड की हाडी रानी करमैती या सीसोदिन रमाबाई या आनदाबाई 1(29, 30,40)।

(3) सोलहवी सदी के गुजराती राजपूती समाज मे पुत्रियो का जन्म नरक भोग के समान माना जाता था 5(123)। पुत्र जन्म पर चारो ओर से बधाई और नजराने आते थे मगर पुत्री के जन्म पर सब ओर मौन छा जाता था 5(121)। तथापि, राज-कुलो मे पुत्री के पालन पोषण और शिक्षा-दीक्षा मे कसर नही रखी

जाती थी। उन्हें कुल-मर्यादा, भक्ति, संगीत, नृत्य और शस्त्र-कौशल की शिक्षा पुत्रों के साथ और उनके समान ही दी जाती थी। राजपूती घरानों में कन्याओं की शिक्षा पुरोहित के सुपुर्द की जाती थी और ध्यान रखा जाता था राजकुल की मर्यादा के अनुकूल उनकी तैयारी हो 5(123)। स्वयं मीरा के लिए गूजर गौड़ पंडित गजाधर को नियुक्त किया गया था और वह तथा उसका परिवार, विवाह के बाद, मीरा के साथ चित्तौड़ भी गया था—

श्री चित्रकूट मुरलीधर नाम मूर्ति—
व्यासासन द्विज राज गजाधराय।
प्रददाति मीरापत्यु स्वस्ति अथ कामा
तस्यान्वय कुल जन प्रथमो हि व्यास ॥7(68)

यह पंडित मीरा को संगीत, वाद्य कथा, पुराण, भजन, आदि सिखाया करता था और मीरा के निज मंदिर में पूजा पाठ किया करता था। राज-कुल के चारण भाट, बच्चों को पूर्वज कथा और पारिवारिक नाते रिश्तों की बातें सुनाते थे 4(185)। घराने की बूढ़ी दासियाँ, विधवा रानियाँ अथवा रिश्तेदार महिलाएं, महलों में बच्चों की देख रेख करती थीं और उन्हें पूर्वजों की कहानियाँ सुनाया करती थी। ऐसे प्रमाण हैं कि महलों में पुत्रों का आवागमन प्रतिबंधित रखा जाता था जबकि कन्याओं के आवागमन पर उतने प्रतिबंध नहीं होते थे। राणा रायमल के पुत्र पृथ्वीराज का आवागमन सीमित कर दिया गया था, रानी कर्मेती ने अपने पुत्र विक्रमाजीत और उदयसिंह को चित्तौड़ में न रखकर रणथंभौर में रखवाया था, मगर रायमल की कन्या आनंदाबाई पूरे चित्तौड़ के राज-परिवारों में निर्द्वन्द्व घूमती थी। आज भी राजपूताने में कन्याएँ नाते-रिश्तेदारों में स्वतन्त्रता से आ जा सकती हैं। किन्तु राजपूत परिवारों में पुत्रों का निर्द्वन्द्व आवागमन नहीं होता। उन पर रक्षात्मक नजर रखी जाती है।

(4) राज परिवारों में पिता की अपेक्षा माता का स्थान अधिक आदरणीय और रक्षात्मक होता था। अपने पुत्रों के भविष्य की चिन्ता माता को होती थी 3(12२) जबकि कन्याओं की चिन्ता पितृव्य जन करते थे क्योंकि उन्हें राजनीतिक मोहरों के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता था।

(5) सती होना और निर्विरोध समर्पण में रहना राजपूत रमणी का परम धर्म माना जाता था 5(125) यद्यपि सती होने का कहीं दुराग्रह नहीं मिलता। वह भावनात्मक आवेश की बात होती थी कि सत का आवेग दासियों और रखैलों तक को हो जाता था। जो रानी विधवा होकर जीवित रहना चाहती थी उसके लिए कठोर नियंत्रण होते थे। 5(127) राजस्थान की सवर्ण प्रथा में विधवा का आरंभ के 9 महीने तक 'खूणे' में यानि घर में किसी अंधकार युक्त स्थान पर रहना होता था। उस अवधि में कोई भी उसका मुख दर्शन नहीं करता था, उसे भूमिशयन और

रूखे भोजन पर जीवित रहना होता था। उसके बाद उसके पीहर वाले उसका शोक भग करते थे, उसे पीहर ले जाते थे। देव-दशन और तीथ व्रत इत्यादि करके वह वैधव्य भोगने को तैयार होती थी। बाद मे वह अपने ससुराल मे जीवन यापन करती थी। यदि वहाँ समायोजन नही हो पाता तो पीहर वाले उसके निर्वाह की व्यवस्था करते थे 5(128)।

राजपूती घरानो मे साल भर कोई-न कोई उत्सव, पव, व्रत आदि की गहमा-गहमी रहा करती थी और उस माध्यम से सारा रनिवास राग रग मे मगन रहा करता था। तीथ मेले, दशन आदि भी उनके लिए अभियानिक महत्व के होते थे 5(132)। उनका उपयोग वैर भजन के लिए, शक्ति सतुलन के लिए, या लूट-मार कन्या हरण, दप-दलन जैसे कामो के लिए होता था। उनमे राजघराने अपने प्रतिष्ठा चिह्नो के साथ, रनिवास के साथ, जाया करते थे और बल-प्रदशन करते थे (वगणावत महागाथा)।

जहाँ राज परिवार बसता था और राजधानी होती थी, वहाँ हर तरह की प्रवत्ति के केन्द्र होते थे। उसी तरह हर प्रसिद्ध तीर्थ स्थान पर हर राज्य और शक्तिशाली सामतों के स्थान होते थे 5(143)। वैसे स्थान आज भी हर तीर्थ स्थान और हर पुरानी राजधानी मे मौजूद हैं चाहे उनके स्वामी अब नही हैं। द्वारिका और गिरनार के आस पास, वृदावन और मथुरा मे, पुष्कर म, उज्जयिनी और बदरगाहो पर बहुत चहल-पहल रहती थी और हर शक्तिशाली राज्य के वहाँ अपने स्थान होते थे।

(8) गाँवो, शहरो और राजधानियो मे बस्ती की बसावट इस तरह से होती थी कि केन्द्र मे राजमहल और उसके चौतरफ घेरो मे सामत, मत्री, ब्राह्मण, व्यापारी आदि तथा बाहरी छोर पर कमीन, शूद्र आदि बसे होते थे 5(146 47)। किले के पास रक्षक और विश्वसनीय लोगो को बसाया जाता था। बस्तियाँ जाति बद्ध समूहो मे बसती थी। हर जाति के अपने त्यौहारो, उत्सवो का आयोजन राजाज्ञा से होता था, मगर धार्मिक आयोजनो पर पाबदी नहीं थी। जब कभी राजाज्ञा से कोई आयोजन होता था तो उसका खर्चा विशेष कर लगाकर निकाला जाता था 3(148-49)। तदनुसार राजमहलो मे आयोजित आराधना, पूजा, पाठ, यज्ञ हवन सत सम्मेलन आदि के व्यय का भार प्रधान और मत्री जनो पर पडता था। उन्हे सब व्यवस्था पहले से या बाद मे करनी पडती थी।

(9) राज्य की गतिविधियो प्रशसा निन्दा, स्थिति, प्रतिष्ठा, निबलता, सबलता धम रुचि आदि का प्रचार करने वाले साधन औपचारिक नही थे, न उन पर राज्य का कोई नियत्रण होता था 5(153)। साधु सत चारण, भाट पुरोहित, बजारे, व्यापारी, नाई आदि चाहा अनचाहा प्रचार किया करते थ और स्वभावत वह प्रचार प्रवादो, अफवाहो, किंवदतियो के रूप म फैलता था। यही कारण है कि

यहाँ के ऐतिहासिक लेखे तथ्यो और प्रमाणो की अपेक्षा किंवदंतियो पर अधिक निभर हैं और उनम अति रजना अथवा अवमानना के तत्व मौजूद होते हैं। जनापवाद और किंवदंतिया पर राज्य का नियत्रण सभव भी नही था क्योकि राज्यो और जागीरो की सत्ता स्थिर नही होती थी। सत्ता, अधिकार और जीवन तथा प्रतिष्ठा सब कुछ काल की तरह गतिमान था। ऐसे म किसी लोकापवाद को रोकना या नियत्रित करना राज्य के वश की बात हो ही नही सकती था। बजारो का आवागमन और व्यापारियो के सचरण म इन लोकापवादो का बडा महत्व था। 16वी 17वी सदी विक्रमी मे—जबकि राठौरो गुहिलौतो के प्रगाढ सम्बन्ध थे और मार्ग सुरक्षित थे तब बजारो के काफिले गाँव-गाव पहुँचते थे 4(164), मगर उससे 50 वर्ष पहले जब राठौर लूट मार मे व्यस्त थे और पश्चिमी क्षेत्र म अशाति थी तब सैनिकों के लिए आटा मिलना भी मुश्किल हो गया था 8(41-42), प्रजा तक राज्य छोडकर चली जाती थी।

मेडता प्रादुर्भाव, उत्थान और सघर्ष का समय

मेडता कभी आदि शहर था—पौराणिक राजा मा धाता का बसाया हुआ। 8 (37) बाद म यह चौहानो के आधिपत्य मे रहा था। 14वी-15वी सदी विक्रमी मे यह अचल उजाड रहा। अत सारा प्रदेश घने झाड-झखाडो से भर गया था 8 (37)। नागौर के चौहान कभी कभार वहाँ शिकार करने के लिए डेरे लगाते थे।

राव जोधा ने जब सवत 1515 वि० मे जोधपुर बसाया तब परम्परा के अनुसार भाइयो और पुत्रो को धरती बाँटने का विचार किया। अपने दो सहोदर पुत्रो—बरसिंघ और दूदा—को उसने मेडता का उजाड इलाका बसाने के लिए दिया। तदनुसार उन्होंने वर्तमान मेडता नगर की स्थापना सवत 1518 मे चैत्र सुदी 6 को हस्त नक्षत्र मे की 8 (39)।

उस अनबसे क्षेत्र मे लोगो को बसाने के लिए राठौडो को नागौर पाली, फलौदी बीकानेर, अजमेर आदि स्थानो से राजपूतो, जाटो तथा अन्य जनो को लाकर बसाना पडा 8 (39 41)। तत्कालीन आवश्यकता और राठौड परम्परा के अनुसार राजघराने और प्रजावर्ग के बीच शासक शासित का वैसा नाता नहीं होता था जैसा कि गुजरात, मालवा या मेवाड के स्थापित राज्यो मे था 9 (97)। वे अपेक्षाकृत उनके निकट होते थे और उनमे सुख दुख की बधी हुई भागीदारी होती थी। खेती म, नई जमीन तोडने म पानी की व्यवस्था म, आसपास के क्षेत्रो की लूटमार मे सब निस्सकोच भाग लेते थे। वैसे भी मेडता का क्षेत्र कम वर्षा और आवागमन की कठिनाइयो के कारण उजाड पडा हुआ था यद्यपि वह मारवाड शाकभरी, अजमेर, जालोर, सिरोही के बीच महत्त्वपूर्ण केन्द्र था 8 (40)।

तत्कालीन जोधावत, राजा कम और योद्धा अधिक थे तभी वि० स० 1550 तक बीकानेर से लेकर अजमेर तक, उधर जालोर—बाडमेर तक और दक्षिण मे ईडर तक उनका वचस्व फैल चुका था 10 (126, 236)। राजघरान और सामत-भूमिधरो के साथ-साथ अन्य जनों के निरतर सम्पक सगत के लिए भक्ति, कीतन, पव, उत्सव, मेलो का आयोजन मेडतियो की विशेषता थी 9 (99 100)।

मेडता राज्य की स्वतत्र सत्ता मे, उसके विकास और उत्थान मे, तीन पीढियो —दूदाजी वीरम दे और जयमल—का योगदान रहा था। 9(97-137)। मेडता बसाने मे मुख्य भूमिका दूदाजी जोधावत की थी यद्यपि वह दो सहोदर भाइया की सम्मिलित जागीर थी 8 (38-39)। मेडता बस जाने पर दोनो भाइयो मे अनबन हो गई जिसके कारण दूदाजी बीकानर जाकर रहे 8 (44 45) और वापस तब आए जब बरसिंघ का परलोक वास हुआ 8 (46)। दूदा मेडतिये का और उसके पुत्रो का मेडता पर स्वत्व कभी निर्विवाद और निर्विरोध नही रहा। अत उन परिस्थितियो मे उनके पारिवारिक जीवन और सामाजिक परम्पराओ मे हम स्थिरता और अविचलता की वैसी कल्पना नही कर सकते (12) जैसी कि जोधा घराने मे थी, गुहिल घरानो मे थी या सोलकी घरानो मे थी। हमे मानना होगा कि विक्रमी 1550 से 1560 तक के अपेक्षाकृत शात समय के अलावा मेडतिया दूदाजी, वीरमदे एव जयमल को कभी स्थिर रहने का अवसर नही मिला होगा। यही समय मीरा के जन्म और पालन पोषण का समय था 9 (67)।

मेडते का राज्य कभी शान्त नही रहा। स्थापना के कुछ समय बाद दूदाजी को बीकानेर और शेखावाटी की तरफ रहना पडा। बाद मे जब वे मेडता वापस आए तो सखाड की तरफ रहने को बाध्य हुए। ढलती उमर मे मेडतावास किया तब तक उनके सहोदर बरसिंघ जोधाणा के पौत्र और राव सीहा के पुत्र राव जैसा गागा और भोजा से उनके बैर पड गए 8 (47)। तब से लेकर सवत् 1590 वि० तक मेडता और जोधपुर के रावो के बीच सघष बना रहा—जब तक कि वीरमदे दूदावत ने मेडता से पलायन नही किया और बाद मे उसका पुत्र मवाड का सूबेदार होकर न चला गया 1 (41)। वि० सवत् 1518 मे स्थापित मेडता सिफ 70 वष तक येनकेण प्रकारेण मेडतियो के हाथ मे रहा, वह भी निर्विरोध नही। सदा अशात और सदा युद्धरत जीवन के कारण यह सहज अनुमान हो सकता है कि दूदा और उसके वशजों को कभी घर परिवार की सुध लेने का समय मिला हो, यह सभव नहीं। राज्य कुल की और वश परम्परा की जैसी विशेषताएँ और मर्यादाओ के बधन गुहिलौतो मे विकसित हुए थे वैसे मीरा के कुल म हुए होगे, ऐसी सभावना नही लगती।

कहा जाता है कि दूदाजी के पाँच पुत्र थे—क्रमश वीरमदे, रतन सी, राय-मल, रायसल और पीचाण 11 (42)। इनमे से प्रथम दो के बारे मे तो सूचनाएँ

मिलती हैं, मगर बाकी तीन के बारे मे कोई विगत प्राप्त नहीं है। मीरा के पिता रतन सी को दूदा की तरफ से 12 गाँव—जिनमे सबसे बड़ा कुडकी था—मिले हुए थे और उनकी देखरेख तथा मीमाबदी मे उसका पूरा जीवन खप गया। वे सदा ही गुहिलौतो को विविध अभियानो मे साथ देते रहे और अन्तत खानवा के युद्ध म वि० सवत 1584 मे काम आए।

इतिहास इस बात का गवाह है कि मेवाड के राणा रायमल के पुत्र सांगा को अपना प्रारभिक जीवन देशाटन और गुप्त वास करके बिताना पडा था। कम से कम वि० सवत 1566 तक वे श्री नगर (अजमेर) की ओर गुप्तवास कर रह थे I (40), तभी उनका सम्पक और सम्बन्ध दूदाजी एव रतन सी से हुआ होगा। वीरमदे के साथ सागा की बहिन गोरज्यादेवी का विवाह हुआ था 11 (39) और वीरमदे के भाई रतन सी की पुत्री और वीरमदे की पालिता मीरा का विवाह राणा सागा के पाटवी पुत्र भोजराज के साथ हुआ था 11 (80)। यह विवाह सम्बन्ध निश्चित रूप से मेडता और मेवाड घनी सागा के पूवकालिक सम्बन्धो का राजनीतिक परिणाम था।

निश्चित रूप से राठौर अपनी दुदम युद्धशक्ति, निष्ठा और समपण की विशेषताओ के लिए विख्यात थे। कहावत है—"जान राऊदा, मरण रा दूदा' 46 (7) सागा से पहले भी गुहिलौता तथा राठौरो मे राजनीतिक और वैवाहिक सम्बन्ध थे 9 (101) और वे सम्बन्ध सागा के समय इतने प्रगाढ हुए कि चित्तौड के कई अभियानो म और सकट के समय राव वीरमदे तथा जयमल गुहिलौतो के स्तम्भ बनकर काम आए थे 11 (42) जयमल ना अकबर के चित्तौड आक्रमण मे अपनी अदम्य वीरता की छाप छोड गया था 11 (42)।

तत्कालीन राजनीति म वीरता और अदम्य साहस ही राजपूती आन-मान के आधार होते थे। राजनीतिक दष्टि से राठौरो का मध्य-पश्चिमी भारत पर—दिल्ली से लेकर बीकानेर, शेखावाटी, मेडता, नागोर पाली, सिरोही तक—अखड प्रभाव होने से वैसे भी उनकी प्रभुता मित्रता योग्य थी, फिर उनकी वीरता, पहलशक्ति और दुदमनीय साहस किसी को भी शत्रुता से बचन मे सहायक था। यद्यपि उनमें आतरिक सघष कम नही था 4 (38) फिर भी वे भीतर-बाहर सब ओर अपना डका बजाते रहे और टूटे तो आपसी वैर स ही टूट। मगर, विक्रमी 1518 से लेकर 1588 तक के समय मे तो वे दुर्जेय ही कहलाए 11 (40 41)।

अवश्य ही वि० स० 1590 म मेडता के पतन और वीरमदे के मेडता छोडकर चले जाने के पीछे पारिवारिक सघष को टालना एक कारण था और मेडता को दुगबद्ध न कर रखना एक दूसरा कारण था 3 (143)। और यही वह समय था जब मीरा चित्तौड से रूठकर मेडते आई थी। निश्चित रूप से उसे अपने

भाई भतीजों के साथ मेड़ता छोड़कर अजमेर मेवाड़ाटी तक भटकना पड़ा होगा। क्योंकि एक बार जब जोधपुर के मालदेव ने मेड़ता पर अधिकार कर लिया तो उसने मेड़तियों के महल, आवास, कोठरियाँ सब नष्ट करके मैदान कर दिया था और वहाँ मूलों की खेती करवाई थी 4 (70 71)। प्रतिहिंसा उनमें इतनी तीव्र होती थी कि वे अपने पूर्वजों या भाइयों तक का विवेक नहीं रखते थे। ऐसे समाज में बहनापा, भाईचारा, पुरुष, वात्सल्य आदि की कल्पना करना कठिन ही है। फिर जब कोई राज-परिवार दर-बदर हो और अपने अस्तित्व के लिए मारा-मारा फिरता हो तो उसका मानस किसी अपमानित का बोझ सहन कर सकेगा, यह मानना और भी कठिन काम होगा 13 (74)। ऐसे में यदि वीरमदे और जयमल ने मीरा को वात्सल्य और सत्कार न दिया हो तो इसमें उनका दोष मानना उनके प्रति अन्याय कहा जाएगा। एक बार जब मेड़तिया वीरमदे के पैर अपनी धरती से उखड़े तो 14 बरस तक वे मारे-मारे फिरते रहे। परिवार तितर बितर हो गए, जिसका जहाँ सिर समाया वह वहाँ शरणागत हो गया और मालदेव 14 बरस तक वीरमदे के पीछे-पीछे लगा रहा 4 (72)।

सारांश वि० संवत 1518 में राव दूदा ने जिस मेड़ता राज्य की स्थापना की, उसकी बसावट के लिए जिस उद्दाम-नीति की पालना की उसमें जनता के साथ निकटता भाई चारा, अपनापा और भक्तिभावना की निश्छलता थी। यहाँ बसने वाले अधिकतर तो जाट परिवार थे जिन्हें कृषि की लगन ज्यादा थी। जो राजपूत थे वे प्रतिबद्ध और निष्ठावान थे सभी राव वीरमदे, रतन सी और उनके सभी भाई निरंतर युद्धरत रहते थे। राणा सांगा उनकी अदम्यवीरता और निष्ठा के प्रति आश्वस्त थे। अकेले वीरमदे ने उनके साथ 18 युद्धों में भाग लिया था और खानवा के युद्ध में घायल सांगा की प्राण रक्षा की थी 11 (42)। मीरा के पिता राव रतन सी उसी युद्ध में वि० सं० 1584 में काम आए थे।

मेड़ता का राज्य अपनी स्थापना के बाद शांत और स्थिर कभी रहा नहीं। सदा युद्ध की छाया चौ तरफ मंडराती रही, जोधपुर घराने से सदा अधिकार का आतंक बना रहा और पड़ोस में अजमेर और दक्षिण में गुजरात से घुसपैठ भी होती रही। भीतरी समस्याओं में अकाल की समस्या अक्सर बनी रहती थी, तब रतन सी और वीरमदे को विशेष अभियान भी करने पड़ते थे। वि० संवत 1542 एवं 1547 में भारी अकाल पड़े थे 4 (186)। मेड़ता का विकास सदा अवरोधित रहा, इसमें संदेह नहीं और राव दूदा का परिवार सदा भीतरी-बाहरी समस्याओं से जूझता रहा।

मीरा के समय—संवत 1555 से 1603 तक—को केन्द्र बनाकर देखें तो कह सकते हैं कि इस अवधि के आरंभ में तो मेड़ता को राव दूदा और वीरमदे के अपूर्व उत्साह और वीरत्व का वरदान मिला हुआ था। राव दूदा अपनी ढलती

अवस्था मे मेडतावासी होकर रह रहे थे, जोधपुर की ओर का आतक शिथिल पडा हुआ था और अजमेर का शाही प्रतिनिधि शात था। मेडता होकर जाने वाले मार्ग प्रशस्त थ और मडतिय राजपूत सीमाओ पर चौकस थे। कम से कम वि० सवत 1570 तक शाति का वातावरण था, जन जीवन सामान्य था और बीकानेर, नागोर, शेखावाटी के साथ मेडता के सम्बन्ध सौमनस्यपूण थे।

वि० सवत् 1570 के बाद, मेडता पर जोधपुर की कुदृष्टि गहरी होती गई, राव दूदा का अतिम काल (स० 1572) आ गया, मेवाड के राणा सागा के व्यापक अभियान शुरू हो गए और मालवा तथा गुजरात के बादशाह भी सक्रिय हो उठे। देश की राजनीतिक गतिविधियो मे अभूतपूव मोड आने लगे। पश्चिम की ओर भाटियो और तुर्कों की हलचलें भी बढने लगी और मेडता के साथ जोधपुर के सम्बन्ध कटुतापूण होते चले गए। इधर जब मेडतिये महाराणा सागा की फौज के साथ एक सशक्त सगठन बनाने और पूरे पश्चिमी भारत को अक्षुण्ण रखने के प्रयत्नो मे लगे हुए थे, तब उन्हीं क कुटुम्बी उनकी जडें खोदने का काम कर रहे थे। वि० स० 1572 से लेकर 1584 तक का समय मेवाड और मेडता की दोनो शक्तियो के लिए अपने अस्तित्व के सघष मे लगे रहने और दिल्ली, गुजरात और मालवा की राजनीति की काट करने का विकट समय रहा था। उसका अवसान सागा की मृत्यु राव रतन सी के खेत रहने और मेवाड घरान के विध्वस मे हुआ। मेडता के दुर्दिन भी मडरा रहे थे जो स० 1590 मे उसके पतन का परिणाम लेकर आए जबकि मीरा उसी समय कभी स० 1589 मे मेवाड त्याग कर वहा आई थी। वह विनाश भी ऐसा था कि मेडतियो के भवन आवास, सब नेस्तोनाबूद कर दिए गए, सिवाय चार भुजा के एक मदिर के सब नष्ट हो गया था।

मेवाड प्रतिष्ठित गुहिलवश और मीरा कालीन राणा

गुहिलो का राजवश मेडतिये राठौरो की तुलना मे प्राचीनतम माना जाता है। इस वश की स्थापना विक्रमी स० 512 मे कही जाती है।1(2) जब कन्नौज पर हष वधन का राज्य था तब मेवाड मे शिलादित्य की आन फिरती थी। कहा जाता है कि मवाड से पहले गुहिलो का उदय गुजरात कच्छ-बनासकाठ मे हुआ था।1(2) राठौरा का अभ्युदय भी उधर ही हुआ था। तुजुके जहाँगिरी के मुताबिक मेवाड के राजाओ का राज पहले पूव मे था। उस समय उनकी पदवी राजा की थी, बाद मे वे दक्षिण म गए और रावल कहलाए। वहाँ स मेवाड के पहाडी प्रदेशो म धीरे धीरे बढकर उन्होने चित्तौड ले लिया। यहाँ से उनकी पदवी महाराणा हुई। 15 (73) जहाँगीर के समय इस घटना को 1421 वष हो गए थे।

ऐतिहासिक मान्यताओ के अनुसार गुहिल रघुवशी कहलाते हैं। राय के पुत्र

कुश के वश मे गुहिल से पहले अतिम राजा सुमित्र था। सुमित्र का पुत्र गुहिल हुआ जिसके नाम पर यह वश गुहिल, गुहिलौत, गोहिल कहलाया। गुहिल का राज्य उत्तर मे आगरा चाटसू तक फैला हुआ था। विक्रमी स० 1044 के उसके सिक्के उस क्षेत्र मे प्राप्त हुए हैं।(14) उससे पहले विक्रमी स० 718 का गुहिल अपराजित का एक शिलालेख नागदा के पास कुण्डेश्वर मदिर मे मिला कहा जाता है।(14) इससे स्पष्ट होता है कि मेवाड के पवतीय प्रदेश मे इनका प्रवेश दक्षिण से हुआ था और वे बढते बढते आगरा तक पहुँच चुके थे। इतना बडा राज्य उस समय देश मे कोई नही था और उसका अस्तित्व राणा रायमल पथ्वीराज और सागा के समय तक—विक्रमी स० 1584 तक—भी था। यानी एक विशाल राज्य के रूप मे मेवाड की स्थिति—मीरा के समय तक—800 वप पुरानी हो चली थी।

इस प्राचीनता और विशालता के सन्दभ से देखा जाए तो मेवाड की शक्ति, प्रतिष्ठा और गौरव की कल्पना की जा सकती है। अनेक शिलालेखो मे, ताम्रपत्रो मे वहाँ के राजाओं को अवनीश्वर (एपिक इडिका भाग 24, 323) हिंदूपत पातसाह, समस्त राजवलिसमलकृत महाराजकुल (दरीबा का शिलालेख), महाराणा (हम्मीर के समय से), महाराजाधिराज (15) हिन्दुवा सूरज जैसी उपाधियाँ दी गई थी।

चित्तौड का दुर्ग कई बार गुहिलो के हाथ से गया और आया, मगर छोटे-मोटे विक्षेपो के बावजूद मेवाड की प्रभुता और उसका गौरव अक्षुण्ण रहा। दीर्घ-कालीन प्रभुता के साथ वहाँ के राजवश की मर्यादाएँ भी उसी अनुपात मे बढी और उन मर्यादाओ की रक्षा भावना भी उतनी ही तीव्रतर रही हो तो यह सहज स्वाभाविक माना जाएगा।

महाराज लाखा, मोकल, कुभा और रायमल की परम्परा मे यद्यपि मेवाड का राजघराना कुत्सित षड्यन्त्रो, पितृघात, 15 (54) भ्रातघात 15 (47) के अन्दरूनी कुकर्मो से मुक्त नही था तथापि उसकी बल प्रभुता और राजनीतिक प्रतिष्ठा कम नही हुई थी। विक्रमी स० 1525 के बाद रायमल के समय मे उसका शक्तिवधन सिरोही से आगरा-बयाना तक और गोडवाड से मालवा तक हो चुका था 1 (2 5)।

रायमल के तीन पुत्रो—पृथ्वीराज सग्राम सिंह और जयमल मे यद्यपि पार-स्परिक जानलेवा शत्रुता थी 15(47) तथापि उन्होने मेवाड के विशाल राज्य को सबल करने मे ही अपनी शक्ति का उपयोग किया था। राणा सग्रामसिंह को अपन कवर पदे का समय (विक्रमी स० 1566 तक) अजमेर के पवारो के बीच छद्मवेश मे बिताना पडा था 4(I331-333)। वि० स० 1566 से जब उन्होंने राजग्रहण किया तब से वि० स० 1572 तक मात्र छह वर्षों मे इतना

शक्ति सचय कर लिया था कि उनके नेतृत्व म 80 हजार अश्वारोही, सर्वोच्च श्रेणी के 7 राजा, 9 राव, 500 रावल और रावत, और 104 सरदार सदा तैयार रहत थे। मारवाड, आमेर, ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, रायसेन, कालपी, चदेरी, बूदी, गागरोन, रामपुरा, आबू के राव उनके मरद थे 1(2) और मेडता, जोधपुर, ईडर, जैसलमेर से उनके पारिवारिक और कौटुम्बिक सम्बन्ध थे।16

इससे पता लगता है कि सागा के समय मे मेवाड की शक्ति और प्रतिष्ठा अप्रतिम थी। यहाँ तक कहा गया है कि यदि खानवा के युद्ध का परिणाम उलटा निकलता तो देश के साम्राज्य का झडा चितौड पर लहराता।

यह सवाल जरूर विचारणीय है कि इतने प्रतिष्ठित, शक्तिशाली और मर्यादा श्रेष्ठ मेवाड ने मेडता के उन राठौडो से वैवाहिक सम्बन्ध क्यो किए जो किसी धरती के निर्विवाद धणी नही थे ? वस्तुत मेवाड की राजनीति मे विवाह, सम्बन्ध-स्थापन और मैत्री का साधन रहा था। राणा सागा से पहले के हर मेवाड नरेश ने 14 से 28 तक विवाह किए थे। खुद रायमल के 28 रानियाँ थी जो हर छोटे-मोटे राजकुल की थी 1(11) और उनसे राणा सागा के 14 भाई और 2 बहिनें थी। स्वय राणा सागा ने कई विवाह किए थे, उनके 4 पुत्र और 2 पुत्रियाँ थी, कई पासवानिये पुत्र थे और अनक धाय भाई थे 1(12-17)। बहु-विवाह के कारण ही मेवाड के राजकुल मे आतरिक कलह, विद्वेष और षडयत्रो की गहमागहमी रहती थी। उनके परिणाम स्वरूप राणा कुभा को उसके एक पुत्र उदाकण द्वारा विष देकर मारा गया था, 1(4)। एक पुत्र जेसा और उसकी माता ने राणा रायमल से कपट करने का यत्न किया था तो जसा की हत्या कराई गई थी और उसकी मा को महलो से नीचे उतार दिया गया था 14(12 15)।

राजनीतिक विवाहो के ऐसे परिणाम मेवाड के शासको को हर युग मे भोगने पडे होंगे। आमतौर पर राज कुलो मे पुत्री या बहिन का विवाह राजनीतिक लक्ष्य पूर्ति से किया जाता था 9(98)। मेवाड घराने ने ऐसा ही किया था जब रायमल ने अपनी पुत्री का विवाह राव दूदा के पुत्र वीरम दे के साथ किया और राणा सागा ने दूदा की पौत्री मीरा का विवाह अपने पुत्र भोजराज के साथ किया 9 (103)। इन सम्बन्धो का यह प्रभाव रहा कि चित्तोड और मेडता क राजनीतिक सम्बन्ध सागा के समय से लेकर राजसिंह के समय तक लगातार बने रहे। 4(220 30) वीरम दे के पुत्र जयमाल ने उदयसिंह के समय मे अकबर के आक्रमण की बेला ऐसी अनोखी वीरता से प्राण त्यागे थे कि अकबर भी चमत्कृत रह गया था। हर सम्पत्ति विपत्ति मे दोनो कुलो के सम्बन्ध 150 200 वर्षों तक अनवरत बने रहे। इससे स्पष्ट होता है कि यदि मीरा दोनो के बीच सेतु थी तो भी दोनो कुलो मे वह प्रतिष्ठा का बिन्दु कभी नही बनी। वैसे भी राजपूत

युग मे नारी राजनीतिक सम्बन्ध-सेतु तो होती थी मगर उसकी प्रतिष्ठा की स्वतत्र इयत्ता ऐसी नही होती थी कि जो प्रगाढ़ता को कम करे या राजनीतिक हितो को खडित करे। ऐसे प्रमाण भी हैं जब राजा लोग पारिवारिक कटुता के कारण अपनी कन्याओ को पीहर वापस ले आए हैं और उनके निर्वाह के लिए व्यवस्था की है मगर उससे राजनीतिक हितो पर असर नही पडा। राणा सग्राम सिह की एक भुआ (रमाबाई) का विवाह सौराष्ट्र (गिरनार) के यादव राजा मडलीक से हुआ था। वहा अनबन होने के कारण सागा के भाई पृथ्वीराज उसे मेवाड ले आए थे और राणा रायमल ने उसके निर्वाह के लिए जावर का परगना निर्धारित किया था 1(29 30)। उस रानी ने अपना सारा जीवन चित्तौड मे बिताया मगर गिरनार के साथ राजनीति सम्बन्ध खडित नही हुए। राणा सागा के साथ मडलीक ने उसके बाद भी कई युद्धो मे भाग लिया था और मीरा के द्वारिका वास के समय गिरनार के चारण उसकी सेवा मे बने रहते थे। उनके कुछ दूहे आज भी प्रचलित हैं—

मीराबाई राठोडा नी कुवरी
रोहीदास जात ना चमार।
मीराबाई घेर जाओ ने
घेरे बैठे रटो राधेश्याम।
चित्तौड के रे चौक मां मीराबाई
बातो एवी थाय।
चित्तौडा रा जानसी तो मारसी
थांरी चोपे करसी बात। 9(503)

यह स्पष्ट तथ्य है कि मेवाड के राजघराने मे अनेकानेक ठिकानो से कुल-ललनाएँ ब्याही जाती थी और वैसे सम्बन्धो से कुल प्रतिष्ठा और बल वृद्धि होती थी। यह भी निश्चित है कि बहुत बडी सख्या मे भीड होने से रनिवास या अन्त पुर की व्यवस्था भी उतनी ही जटिल, मर्यादानुसार और कठोर होती होगी। कुछ सकेत ऐसे जरूर मिलते हैं जो बताते हैं कि रानियो की प्रतिष्ठा और राजनीतिक महत्व के अनुसार अन्त पुर मे उनकी गरिमा, आदर और मर्यादा निभायी जाती थी। राणा सागा के समय उनकी हाडी रानी करमैती का वचस्व अधिक था। उसके राजनीतिक कुचक्रो के कारण मेवाड घराने मे विश्रृखलता उपजी थी और गुजरात के सुलतान ने करमैती का प्रिय बन, चितौड का भेद लेकर उस पर आक्रमण किया था। 15(60 61)। अवश्य ही अन्त पुर की कुटिल नीतियो, कुचक्रो और लोकापवादो से चितौड का राजवश मुक्त नही था।

यही कारण रहा होगा कि मेवाड के राजकुल ने सावजनिक धार्मिक या

सामाजिक पर्वों उत्सवों से राजघराने को असंपृक्त रखने की परम्परा बना रखी थी। साधु संगत, जोगी बिरागी आदि के प्रवेश पर वहाँ पाबंदियां थीं और अन्त पुर की मर्यादाएँ आश्चर्यजनक रूप से कठोर थीं। यही कारण था कि राणा-सांगा के बाद और वि० संवत 1588 के बाद जब राणा रत्नसिंह (वि० सं० 1553 1588) को मारा गया और मेवाड की राजनीति में विश्वंखलता आ गई, तब बाहरी लोगों के दुर्ग प्रवेश पर कठोर नियंत्रण किया गया था। इसका पता इससे भी लगता है—

राणाजी थांको देसड़ो म्हो रंग रूड़ो।
थारे देस महं राणा साध नहिं छै, लोग बसै सब कूड़ा॥

—मीरा

और यही समय था जब मीरा के साधु संगत के आयोजनों पर—राजनीतिक कारणों से—आक्षेप उठे थे अथवा निषेध लागू किए गए थे।

मेवाड की राजनीति में निषेध, मान्यता, स्वीकृतियाँ आदि में राणा की अपेक्षा उसके सरदारों, उमरावों, पुरोहितों का वर्चस्व अधिक होता था। उनकी राय जनमत बनाती थी 1(5)। उन्होंने ही वि० संवत् 1525 में राणा कुंभा के हत्यारे उदा को राणा मानने से इनकार किया था और रायमल को ईडर से लाकर गद्दी पर बिठाया था। बनवीर और विक्रम के अनाचारी आचरणों का विरोध और प्रतिकार उन्होंने ही किया था और उदयसिंह को कुंभलगढ से लाकर चित्तौड की गद्दी पर बिठाया था। सरदारों-उमरावों के वर्चस्व की परम्परा इतनी सुदृढ़ रही है कि—स्वतंत्रता के बाद भी और देशी रियासतों के अस्तित्व-हीन हो जाने के बाद भी—महाराणा भगवतसिंह के बाद उत्तराधिकार के प्रश्न पर मेवाड के सरदारों-उमरावों में तनातनी बनी हुई है। मीरा के साधु-संगत के विरोध में जितनी भूमिका राणा की नहीं रही होगी, उससे ज्यादा मेवाड के सरदारों उमरावों की रही होगी। मेवाड की कहावतों में प्रसिद्ध है कि—

बीजावर्गी वाणियो, दूजो गूजर गोड।
तीजो मिलै जो दाहिमो, करै टापरो चोड॥ —इनकी भूमिका

मीरा की भक्ति की धारा को रोकने, मोडने और तोडने में प्रमुख मानी जाती है। हो सकता है विष दान और सर्प पिटारी भेजने में इनका हाथ रहा हो और अन्त पुर की कुटिल नीतियों की जोड तोड से वे विफल भी हुए हों। इन दो घटनाओं के अन्तःसाक्ष्य भी हैं और बहिर्साक्ष्य भी। तथापि इन घटनाओं से मेवडियों और गुहिलोतों के राजनीतिक और सामरिक गढ़ेपन पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पडा था, यह भी तथ्य है।

मेवाड की भूमि, अपने प्राचीन काल से, नई जमीन तोड़ने, राजनीतिक प्रसार करने और घोड़े की पीठ पर उमर बिताने वालो की रही है। यहाँ के सरदार-उमराव और राणा के भाई बद नजराने मे राणा को अपना सर देने की आन रखते थे 1(28-32)। वैसे वातावरण मे राजपूतो के घराना म बल्कि सामान्य प्रजा मे भी वैरागी, साधुओ और कर्महीन लोगो के प्रति सम्मान या भक्ति का अभाव कालोचित माना जाना चाहिए। आज भी लोक में यदि कोई स्त्री भक्ति करे या वैराग बताए तो उसे मेवाड मे 'भगतण' कहा जाता है जो कि एक तरह की गाली है। अत मीरा को उस समय के राजकुल के परिवार उपेक्षा से बरतते रहे हो, वर्जना करते रहे हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं माननी चाहिए। बल्कि ऐसे प्रमाण भी हैं कि राजकुल म किसी अवमानना के दड स्वरूप रानियो को 'महलों से नीचे उतार दिया जाता था', रायमल के समय मे जेसा और उसकी माँ के साथ ऐसा किया गया था 1(12-15)। यदि मीरा के साथ उपेक्षा का व्यवहार किया गया हो तो विस्मय की बात नहीं। मीरा के कुछ पदा से ऐसी ध्वनि निकलती भी है—

तात, मात, भ्रात बधु अपना नहि कोई।
छोड़ि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई॥
मोती माणक परत न पहिरूँ, मैं तो कब की नटगी।
गैणो तो म्हारे माला दोवडी, अर चन्दण की कुटकी॥

कुल मिलाकर मेवाड की तत्कालीन राज परम्परा उतनी भक्ति प्रवण नही थी जितनी कि मेडता की वैष्णव परम्परा थी। दीघकालीन राजपरम्परा, बहु-विवाह और अनेकानेक राजवशो की कन्याओ से भरे हुए अन्त पुर की राजनीतिक कूटबुद्धि के कारण आन्तरिक विद्वेष और सरदारो सामतो की वचस्व वाली राज बुद्धि मेवाड को एक विशिष्टता प्रदान करती थी। यह विस्मय कारक तथ्य है कि राज रानियो को, उनके राजनीतिक महत्व के अनुकूल, महलो मे सम्मान भी मिलता था, अवमानना और उपेक्षा भी होती थी, महलो से नीचे भी उतारा जाता था मगर उन व्यवहारो का सामरिक सहयोग और राजनीतिक मित्रता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पडता था। मीरा के साथ यदि वर्जना, प्रतिबध और निषेध का व्यवहार था तब भी मेडतिया के साथ मेवाड के सम्बन्ध सौ स अधिक वर्षों तक—रायमल के समय से लेकर अमरसिंह के समय तक—अक्षुण्ण बने रहे थे 15(53-75)। यह भी तथ्य है कि सब कुछ होते हुए भी मीरा मेवाड मे अरक्षित नही थी। राणा सागा ने अपनी इस विधवा पुत्र-वधू के लिए माँडल और पुर के परगने निर्धारित कर रखे थे 17(13)। मगर मीरा को उन परगनो की व्यवस्था, सुख भोग आदि मे कोई रुचि नही थी। यह बात उनके इस पद मे व्यक्त

होती है—

हाल्यां मोस्यां सूं काम नहिं रे, सीख नहिं सिरदार।
कामदारां सू काम नहिं रे, मैं तो जाय करूं दरबार॥

मीरा दो विरोधी युगवृत्तियो के बीच विवादग्रस्त इकाई बनी थी। एक ओर उसके बचपन का मेडता-युग था जिसने उसे निश्छल भक्ति, प्रेम, लोक चेतना और स्वतत्र चेता भावुकता से पोषित किया था तो दूसरी ओर मर्यादाओ, प्रतिबधो, निषेधो का मेवाड युग जिसने उसके लोकचेता मानस को क्षुब्ध किया था। दो विरोधी वातावरणो के बीच उसका लोकमानस प्रखर होकर उभरा और अन्तत राज वैभव, सत्ता और मर्यादा का त्याग करके वह लोकाभिमुख हो उठी।

2 मीरा : पारिवारिक परिवेश

किसी व्यक्तित्व के निर्माण मे उसके जन्म स्थान, वातावरण और बाल्यकालीन परिवेश का विधायक महत्व होता है। जिन सस्कारो का निर्माण अबोध तथा बल्यावस्था मे होता है, वे कई बार अनमनीय और अपरिवतनशील भी होते हैं। उनकी अवचेतन प्रभाव कारिता को निरूपित और निर्दिष्ट कर पाना चाहे दुष्कर काय हो, किन्तु यह मनोसामाजिक तथ्य विवाद ग्रस्त नही रहता। इस तथ्य को ध्यान मे रखकर मीरा के व्यक्तित्व और भक्ति वैभव के लिए हमे उनकी पीहर और ससुराल की पारिवारिक स्थितियो का समन्वय करना चाहिए।

(1) मेडता और मेवाड का समकालीन परिवेश

जैसा कि पहले कह चुके हैं मेडता की स्थापना के समय वह इलाका काफी समय से वीरान पडा हुआ, गैर आबाद क्षेत्र था। वरसिंह और दूदा ने नागौर, अजमेर तथा जोधपुर के कई भागो से जाटो और कई साखो के राजपूतो को ला-लाकर वहाँ बसाया तथा उसे आवाद कराया 19(39 41)। अधिकतर प्रवासी नागौर के थे। वहाँ के निवासियो म जाट, राजपूत, ओसवाल, माहेसरी, अगरवाल, खडेलवाल महाजन, भोजक, खत्री, भाट, निरतकारी जो, कि नाचने गाने वालो मे से थे, ब्राह्मणो मे पोकरण, राजगुरु, गूजरगौड, पारीटव, दाहिमा, सनावड, सखवाल उपाध्याय, श्रीमाली, गुजराती, गौड, सिपाही श्रेणी मे पठान, तुर्क, तरकसबद, तोपची, देसवाली, काजी, और उनके अलावा 52 अन्य जातियो के लोगो को सम्मिलित करके बसाया गया था 19(83 86)। जिन जाटो को पहले लाकर बसाया गया था। उनके साथ मेडतिया का घरोवापन था, बल्कि सभी नव-निवासियो के साथ उनका सम्बन्ध राजा प्रजा का न होकर सहभागी और सह-योगियों का था 19(39)। इस तरह से नये राज्य की स्थापना के कारण स्थान नाम से दूदा के वशज मेडतिये कहलाए। निश्चित है कि नये राज्य की स्थापना के साथ राज परिवार को लोक रुचि का और लोक समूह को राज रुचि का परस्पर मान रखना पडता था। नई जमीन, नये राज्य और सुविधाओ के पदा होन पर धार्मिक मतो और साधु सतों की जमावट भी एक स्वाभाविक प्रक्रिया थी। राव

दूदा परम वैष्णव कहे जाते हैं और उनके साथ साथ उनके समय के कुछ दरजी, सुनार आदि भी परम वैष्णव कहे गए हैं। कहा जाता है कि व कंठीधारी वैष्णव थे। मीरा के पदों में भी संकेत है कि—

म्हारा पीयरिया का लोक भलेरो, बांधे कंठी माला।"

यह स्वाभाविक भी हो सकता है। जिस समय दूदा ने मेड़ता राज्य की स्थापना की थी उस समय ब्रज से लेकर गुजरात तक और मालवा प्रदेश तक का क्षेत्र वैष्णव भक्ति से सराबोर था 20 (38-51)। वैष्णव भक्ति जन-आंदोलन के रूप में स्थानीय भाषाओं, लोक भावनाओं और निष्ठाओं को लेकर पनपी थी, 20(39) अतः उसके प्रसार प्रचार में जन ज्वार का उफान था। प्राचीन दार्शनिक मतों की लौकिक मान्यता जीव धर्म, परम तत्व, असारता, सेवा, निष्ठा, मोक्ष, अहिंसा प्रेम भावनात्मक दृष्टिकोण परचे, चमत्कार,—सब मिलकर एक ऐसा संश्लिष्ट लोक मानस उस भक्ति की भूमिका में कायरत था कि आम आदमी को कुछ भी समझाने की किसी को जरूरत ही नहीं थी। 20(39 41) केवल समर्पण और भावुकता के बल पर ही अनपढ़ और अनगढ़ भक्त महात्मा और संत बन सकते थे—ऐसा संवेदनशील लोक मानस उस युग में मौजूद था। मारवाड़—बीकानेर नागौर शाकंभरी, अर्बुदांचल, शेखावाटी, जोधपुर, जैसलमेर के क्षेत्र में लोक मानस की रचना में प्राचीन शैवमत जैनमत, नाथपंथ, संतमत के साथ मिलकर वैष्णव भक्ति ने कृष्ण के सनातन भागवत रूप और चारभुजा स्वरूप को आराधना में विकसित किया था। दूदाजी के वंश देवता चारभुजा नाथ थे, जो कि राव दूदा के समय से लेकर जयमल के समय तक निर्बाध भक्ति के आलम्बन रहे थे 11(53 57)। 'यथा राजा तथा प्रजा' के सूत्र से मेड़ता अंचल की प्रजा में भी वैष्णव भक्ति की प्रबलता थी और कृष्णपंथ के साधु संतों और धर्माधिकारियों का वहां आवागमन बना ही रहता था। वर्ष भर कई अवसरों पर—सावन से लेकर फागुन तक—राजपरिवार, राजन्य वर्ग और सामान्यजन सम्मिलित होते थे 9(97-137) और साधु संगत तो आम प्रथा थी। राव दूदा परम वैष्णव थे इस कारण भी साधु-संतों का आवागमन, भजन-कीर्तन सदा चलता रहता था। उसमें राज परिवारों और सामान्यजनों का निकट सम्पर्क बना रहता था। उसी तरह का सम्पर्क यात्रा, पर्व, उत्सव, नेम, धरम, खेती, खलिहानी, छोटे मोटे अभियान, बेसरे आदि के समय भी बना रहता था 9(110)। अतः मेड़ता के राजपरिवारों और लोकजीवन के बीच अलगाव, दुराव और असम्पृक्तता की स्थिति वैसी नहीं थी जैसी कि मेवाड़ या पुराने राजघरानों में हुआ करती थी।

इस परिस्थितियों का प्रभाव मीरा के बचपन और मानसिक विकास पर लक्षित होना चाहिए। भक्ति के लौकिक स्वरूप के बीच जन्मी, पनपी और मुक्त-भाव से राजपरिवारों और साधारण जनों के साथ रहते हुए मीरा ने लोकभक्ति

का जो सस्कार कमाया था, वही आगे हठीला बनकर उसके व्यक्तित्व का आधार बना था। बचपन की मीरा को हमे राजरानी और मेवाड की जेठी बहू से भिन्न करके देखना चाहिए क्योंकि तत्कालीन मेडतिया परिवारो मे और मेडता से लेकर चुरू-बीकानेर तक के राठौरा मे रहन-सहन, पालन पोषण और जीवनप्रणाली मे सुस्थापित मेवाड राजवश से कई मायनो मे भिन्नता थी। मेडतियो मे जीवन-यापन मुख्यत कृषि आधारित था और अवसर पडने पर रैयत को साथ लेकर छोटे मोटे धाडे डालना आम जीवन प्रणाली थी 21 (32)। ऐसे मे राजपरिवार शेष जना से अलग थलग और असम्पृक्त बनकर नही रह सकते थे। ऐसे वातावरण मे मीरा ने लोकरीतियो का, लोकमानस को, लोकरुचियो, विश्वासो और जीवन को, वास्तविकता मे जीकर, सीखा था जिसके सकेत उसके पदो मे मिलते हैं।

मेडता की बसावट और उसे आबाद करने की नीति मे लोक-रुचियो के साथ राज परिवार की भागीदारी मेडतिया परिवेश का एक उपयोगी कारक था। दूदा की वैष्णव भक्ति, साधु-सतो का सत्कार, उन्हे आमन्त्रित करने का आग्रह उस नीति का अग था ताकि मेडता के नवोदित राज्य का प्रचार हो। इसी नीति के कारण दूर दूर के डागा, जाट, ब्राह्मण, चारण, महाजन मेडता मे आकर बसे थे और सबने इच्छानुसार भूमि भोग प्राप्त किया था 4 (23)। दूदा की इस सावजनिकता की नीति को, बचपन मे, मीरा ने सहज भाव से ग्रहण किया हो तो आश्चय नही।

वैसे भी राठौर वश मे और मेवाड के गुहिलोत वश मे जीवन की मर्यादाएँ भिन्न शैलियो की थीं। मेवाड मीरा के समय तक भी उस मर्यादा कोटि मे था जिसमे राजवशिया का घर, घोडे की पीठ पर ही होता था। स्वय राणा सागा का अधिकाश जीवन और उनके बडे भाई पथ्वीराज का पूरा जीवन नई धरती की खोज, नई स्थापना, शत्रु दलन और मर्यादा-रक्षा मे बीता था 1 (25-41)। इसके विपरीत राव दूदा की प्रकृति इतनी भिन्न थी कि बरसिंघ से मतभेद होने पर वे पहले तो बीकानेर की ओर चले गए थे और बाद मे सरवाड जाकर रहे 19 (42 46)। अपनी सुदीघ राज्य परम्परा मे मेवाड ने राजघराने, राजरानियो, राजकन्याओ और अन्त पुर की मर्यादाएँ स्थापित कर ली थी, जबकि मेडता के सघषरत राजघराने को हर ऊँच-नीच के साथ जीवन-यापन निद्वन्द्व रहकर करना पडता था।

मीरा के विषय मे एक तथ्य का हमे ध्यान रखना चाहिए कि वह किसी राव, राजा या महाराणा की कन्या नही थी। वह एक ऐसे ठिकानेदार की कन्या थी जिसकी स्थिति सिर्फ एक राजनीतिक मोहरे की थी। मीरा के पिता रतनसिंह को गुजारे के लिए 12 गाँव मिले हुए थे और उनका जीवन छोटे-मोटे युद्धों और

व्यवस्थाओ मे बीता था। मीरा का पालन-पोषण उनके दादा वीरमदेव की 'कोटडी' मे हुआ था और वहाँ वह केवल राजकुल की कन्या थी, कोई राजकन्या नही थी।

तत्कालीन राजपूती रीति मे यदि मेवाड के राजघरानो मे एकांतिकता और प्रतिबधित नारी जीवन था तो मेडता मे कन्याओ के निकटवर्ती बुटुम्बियो मे आने जाने-खेलने पर कोई प्रतिबध नही था। पर्दा प्रथा अवश्य थी मगर वह वयस्क कन्याओ और परिणीताओ तक सीमित थी। मीरा पर बचपन से जिस तरह से लौकिक मान्यताओ का और भक्ति तथा साधु सगति का प्रभाव पडा था, वह उसके वयस्क होने पर परिपक्व हो चुका था। इसका सकेत उसके पद मे भी मिलता है—

"मैं बैठी ही पडदा माही, ईश्वर पट खोलिया।"

इससे पता लगता है कि वयस्क होने पर और आम लोगो से पर्दा करने की स्थिति मे भी मीरा साधु सगत और भक्ति मे पगी हुई थी। एक वृत्तान्त बताता है कि—

"श्री गुसाइ जी के सेवक हरिदास बनिया—सो वे हरिदास बनिया मेरता ग्राम मे रहते हते। वा ग्राम मे एक ही वैष्णव हते और वा ग्राम को राजा जैमल हतो सो स्मात धर्म मे हतो और एकादशी पहली करतो हतो। और जैमल राजा की बहिन को घर हरिदास बनिया के सामे हतो। सो जब गुसाइ जी हरिदास के घर पधारे हते तब जैमल की बहिन कू बारी मे सू श्री गुसाइ जी मे साक्षात् पूर्ण परमेश्वर के दर्शन भये सब जैमल की बहिन ने पत्र द्वारा श्री गुसाईं जी कू विनती लिख कै पत्र द्वारा सेवक भई काहे ते वे पर्दा म से बाहर नहीं निकसते जा सू पत्र द्वारा सेवक भये। (1870)

चाहे मीरा का किसी सम्प्रदाय मे शामिल होना तय नहीं है, मगर इतना तथ्य है कि बचपन से जिस भक्ति के वातावरण मे वह पली थी और आस्था के जिस लौकिक स्वरूप को उसने कमाया था वह उसके व्यक्तित्व की एक विशिष्टता बनकर विकसित हुई थी।

मेडता की और जिस लौकिक भक्ति का विकास हुआ था, उस निर्दिष्ट करके ही हम मीरा के परिवेशगत लोक तात्त्विक घटको की पहचान कर सकते हैं।

बहुत प्राचीन काल से ही पुष्कर, मडोवर नागोर, फलोदी क्षेत्र, द्वारिका मथुरा का राज पथ रहता आया था। नाना प्रकार के भक्ति पथ, शाक्त-मत, सत, मत, नाथ-पथ और मुनि-पथ वहाँ सम्मिलित होते रहे थे। शाकभरी चौहानो के समय मे वे सब रत्न मिलकर एक ऐसा लौकिक स्वरूप धारण कर चुके थे जिसम सभी की कुछ बातें मौजूद थीं और समयानुसार किसी प्रचलित सम्प्रदाय की उसम प्रधानता परिलक्षित हो जाती थी। पूर्णाधिक रूप से ऐसी ही प्रवृत्ति पश्चिमी देश

के हर क्षेत्र मे देखने को मिलती है कि सामान्य जन की भक्ति और आस्था साकार भी होती है, निराकार भी होती है, भावना प्रवण भी होती है, वैराग्य-तत्वी भी होती है, कर्मवादी भी होती है, कीर्तनपरक भी होती है, योग तत्त्वी भी होती है और लीला दर्शी भी होती है। मीरा के समय मे मारवाड की लोक-चेतना पर प्राचीन नाथपथी साधुओ का प्रभाव भी था, भैरव, शक्ति, तत्र आदि की छाया भी थी, सूफी प्रेमवाद भी था और गोगाजी-पाबूजी जसे सिद्धो का परचाई प्रभाव भी था। उस आधार भूमि पर वैष्णव भक्ति पनपी थी और कृष्ण भक्ति सूफी छाया लेकर यत्र तत्र प्रेममयी होकर विकसित हुई थी।

जब राजनीतिक और सास्कृतिक विकास के केन्द्र बिंदु राजभवन और राज-वश हुआ करते थे तब राजवशो की रुचियाँ और क्रियाएँ ही जनमत बना करती थी। वह स्थिति मेडता मे भी थी। जब राज परिवार वैष्णव भक्त हो तब वहाँ साधुओ का, भक्तो का जमघट होना स्वाभाविक था, विशेषकर ऐसे सावदेशिक वातावरण म जब हर सम्प्रदाय और मत राजनीतिक शक्ति का सहारा लेकर लोक म प्रतिष्ठित होने की होड मे लगी हुआ हो 9 (101)। 15वीं-16वी सदी मे सारे देश म ऐसी ही स्थिति थी। साधु सतो की मडलियाँ, भक्तो के काफिले और व्यापारी-जन आवागमन मे साथ होते थे और उन सभी स्थानो पर डेरे करते थे जहाँ उनकी आव भगत होती हो या आश्रय मिलता हो। तीथ स्थानो, मेलो, उत्सवा, पर्वों और स्थानीय आयोजनो का ऐसा लौकिक विधान जमा हुआ था कि हर समय, हर माह, हर पक्ष, हर कही कोई न कोई साधु मडली जमी रहती थी। और ऐसा जब विधान था ता निश्चित रूप से कूट नीतिक उपयोगो के लिए और राजनीतिक गुप्तचरी के लिए भी इन विधानो का उपयोग किया जाता था। मीरा अपनी भक्ति प्रवणता के साथ जब चित्तौड पहुँची तो वहाँ की राज मर्यादाओ और राजनीतिक सवेदनशीलता के साथ उसकी साधु सगति का समायोजन हो ही नही सकता था। और अपनी वश परम्परागत सस्कारशीलता से वह मुक्त भी नही हो सकी थी। मूलत यह उसके राज मर्यादा विरोध का परिवेशजन्य कारण था।

मेडतियो की परम्परा मे 4(176) राव दूदा से तीन पीढियो तक तो वैष्णव भक्ति की सुदढ परम्परा थी ही, अपन पूवज पाबूजी से भी दूदा प्रभावित थे और समकालीन जम्भोजी का गहरा प्रभाव उनके समय के मेडता पर था 4 (182)। चारभुजा, ठाकुर जी, रघुनाथ जी, गोपालजी जैसे नामो से चतुर्भुज विष्णु की भक्ति होती थी, वैष्णव सम्प्रदाय के कई ग्रथ मेडतिया ने लिपिबद्ध करवाये थे मेवाड के गढबोर म चारभुजा की स्थापना मेडतियो ने की थी, कई ठाकुर अकेले या सपत्नीक साधु सत भी हो गए थे 4 (176), साधु सतो को वे साक्षात् विष्णु मानते थ और सत समागम को एक पव का रूप दिया जाता था। मदिरो मे

आराधना के लिए सगीत और कीतनो का आयोजन किया जाता था 3 (148)। लोग और राज परिवार के सदस्य उनमे सज धज कर एकत्रित होते थे। कई ठाकुर और सामा य-जन भक्ति के कुछ 'नम' भी पालते थे 3 (172) जसे प्रात उठकर सबसे पहला काम दशन करना, चरणामृत लिए बिना कोई भी आहार ग्रहण न करना, कठीमाला धारण करना और दिन के चारो पहर ईश्वर दशन करना, माला धारण करना, गुरु करना, और, ये सब लोक प्रथाएँ आज भी मारवाड-मेवाड की जनता मे देखी जा सकती हैं। मीरा न भी कठीमाला का और चरणामृत का नेम धारण कर रखा था—

"चरणामृत को नेम हमारो, नित उठ दरसणजास्या।
"तुलसी की माला ओ बीरा म्हारा न छूटै
कोइ छाडया नौसर हार, हरि के भजना मैं ॥ 23 (69)
और—"काठ की कठी नहिं छोडूं राणाजो
नहिं पहरू मोतीडा रो हार।" 23 (38)

मेडता मे भक्ति के गहरे वातावरण का एक कारण उस अचल की तत्कालीन भौगोलिक और यातायात परक स्थिति भी थी। मेडता निम्नलिखित मार्गों के केन्द्र मे पडता था—4 (193)

(1) अजमेर-अहमदाबाद—अजमेर मेडता सिरोही देसा-अहमदाबाद।
(2) दिल्ली पाटन—दिल्ली-आगरा मेडता पाली भगवानपुरा-जालोर पाटन।
(3) आगरा अहमदाबाद—आगरा अजमेर मेडता सिरोही अहमदाबाद।
(4) आगरा चित्तौड—जयपुर-अजमेर मेडता होकर।
(5) चित्तौड अहमदाबाद—चाकसू लाडनू मेडता जालोर होते हुए।
(6) जयपुर जोधपुर—परबतसर-अजमेर-पुष्कर मेडता जोधपुर।
(7) नागौर-पाली—मेडता होकर।

इतने माग जो कि पश्चिमी भारत को उत्तर दक्षिण म जोडते थे, यातायात, व्यापार, सना और धार्मिक विस्तार के साधन थ। इनके बीच मे पडन से मेडता कई तरह की धार्मिक मा यताओ का समन्वय केन्द्र बन गया था। सामरिक दृष्टि से भी वह चित्तौड, जोधपुर और अजमेर वालो के लिए महत्त्वपूण था।

वहा का सामाजिक जीवन मेवाड, बीकानेर, जैसलमेर जैसे क्षेत्रो के राजपूती जीवन से, कई मायनो मे भिन्न प्रकार का था यद्यपि वेशभूषा और जातीय मा यताओ के धरातल पर अ य राजपूती घरानो स समानता थी।5(36 67)। यथा—

(1) गो रक्षा जीवन का प्रमुख व्रत था और कई बार राठौर वीरो न गो-रक्षा मे अपने को बलिदान कर दिया था।

(2) विधवा विवाह को मान्यता नहीं थी। विधवाओ के लिए विशेष नियन्त्रित जीवन विधान होता था। उनके आवागमन, मेलजोल, शृगार, भोजन, दिनचर्या आदि का पथक विधान होता था। राजपूती परिवारो मे आज भी वैसा ही निभाव चला आता है।

(3) वैसे अन्य राजपूत वशो मे मास, मदिरा, अफीम आदि का सेवन वर्जित नही था मगर दूदावत मेडतियो मे उनकी वजना थी 4 (164)

(4) मेडतियो मे भी दासी दावडी प्रथा थी।

(5) कन्याओ की शिक्षा के लिए पुरोहित रखे जाते थे और वृत्ति के अलावा उन्हे गाँव या जागीर भी दी जाती थी। मीरा के लिए राव दूदा ने गूजर गौड पडित गजाधर को नियुक्त किया था। वे मीरा की शिक्षा दीक्षा के साथ उसके लिए चारभुजा की पूजा, सेवा कीतन आदि भी करते थे। विवाह के बाद मीरा उन्हें अपने साथ चित्तौड ले गई थी 4 (185)। चित्तौड मे मीरा के लिए निर्धारित माडल परगने का जिम्मा भी बाद मे इसी पडित को दिया गया था। मीरा को उस परगने की व्यवस्था, आय व्यय आदि से कुछ भी लेना-देना नही था—यद्यपि मेवाड घराने की जेठी बहू होने के नाते राणा सागा न उसकी मर्यादा के अनुरूप परगना निर्धारित किया था 1 (61)।

तत्कालीन परम्पराओ के अनुसार विधवा होने पर स्त्री को 12 माह तक घर के एकात कोने मे रहना पडता था, तब पीहर वाले उसे अपने यहा ले जाते थे और उसके बाद शोक भग सभव होता था। मीरा के वैधव्य (1579) के 5 वष बाद तक भी राणा सागा जीवित रहे थे। उस अवधि वि० स० (1574) मे अपने अपग होन से पहले उन्होंने चित्तौड मे चारभुजा का मदिर बनवाया था 15 (144)। अत मीरा को मेवाड मे कम से कम वि० स० 1584 तक कोई भारी विरोध नही सहना पडा था। राज मर्यादा के अन्तगत उसकी भक्ति, गजाधर पडित की सहायता स, चलती रही। अधिक से-अधिक स० 1588 तक भी—जबकि राजा रत्नसिह की हत्या की गई—उसे वर्जनाओ से अधिक कष्ट नही सहने पडे। वधव्य के बाद 10 वर्षों तक चित्तौड म वह अपनी भक्ति साधना करती रही। स० 1588 के बाद कुछ महीनों तक उसकी सास—कमवती और दवर विक्रमाजीत के हाथो उसे वजनाए और तकलीफें सहनी पडी होंगी। तभी स० 1589 मे उसने मेडता गमन किया था। 11 (57) उसी समय की स्मृतियां उनके इन पदों मे हो सकती हैं—

'राणाजी कोप्या'
'राजा रूठै नगरी राखै हरि रूठया कद जाणा।"
ऊनां भोजन जीम ल्यो, परो दखणी का चीर।
सीसोद्या घर आवीया, सगला मैला मैं थारा सीर।
ठंडा टूकडा थे पावो कोई, पीवो खाटी छाछ।

भू सूवो, भूखो मरो, कठै मिलै गोपाल ।।"—ठडा खाना देना, छाछ रोटी देना—मेवाड के अन्त पुर की अपनी व्यवस्थाए थी। यदि मीरा के साथ ऐसा हुआ था, ता निश्चित ही उसकी भक्ति प्रथा और साधु सम्मेलन चित्तौड की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के लिए हानिकारक रहे होंगे।

मेवाड मे राज रानिया की मर्यादा राजनीति से नियन्त्रित होती रहती थी और वह कभी स्थिर नही रहती थी। राणा मोकल के जमाने से ही मेवाड, अन्त पुर के षडयत्रों और कुचक्रो का शिकार था 4 (6 7)। वडा राज्य, विविध स्तरो के सम्पक वहु विवाह और निरन्तर युद्धो के कारण चित्तौड के राजपुरुष कभी घरेलू और गहस्थ नही रह सके थे। उनक अन्त पुर मे भी इतनी विवधता रहती थी कि रानिया आपसी रीतियो भाषा और प्रथाओ से पूरी तरह परिचित नही हो पाती थी। एक तरह से छत्तीसा राजकुलो और पूरी राजपूती प्रथाओ की खिचडी मेवाड के अन्त पुर मे होती थी। प्राचीन राज्य परम्परा जातीय गौरव और मर्यादा को बनाए रखन के लिए वहा कुछ मर्यादाए विकसित हो गई थी जिनमे उच्च-भावना, कुल गौरव, जातीय श्रेष्ठता,उच्च चरित्र,नारियों का नियत्रण म रहना, पर्दा पालन आदि पर दुराग्रह की सीमा तक आग्रह रहता था 1 (11)। राजरानियो बल्कि दावडिया के लिए भी सती होना गौरव की बात मानी जाती थी 1 (40)। मेवाड की परम्पराओं मे स्वय राणा के निणय इतने निर्णायक नही होते थे जितने कि सरदारो और भाई-वधुओ के होते थे। वे लोग राणा के प्रति,राज्य के प्रति इतने निष्ठावान होते थे कि नजराने म अपना सिर देने की प्रतिज्ञा रखत थ 1 (32 33) बताया जाता है कि मेवाड मे सरदारो सामता के साथ राजा क अपनापे का यह रिवाज था कि महाराजा जब खाने बैठता था तो अपने थाल की चीजो मे से थोडी थोडी चीजें दोने मे रखकर बडे बडे सरदारों को दता था और व उसे बहुत बडा सम्मान मान कर ग्रहण करते थे 1(31)। ऐसे सामत सरदार यदि मवाड की मान रक्षा के लिए पहल करें और राणा के मान को अपना मानें तो आश्चय नही। अब यदि मीरा की भक्ति का मेवाड गौरव के विपरीत मानन और बजनाओ का अम्बार खडा करने मे उनकी भूमिका रही हो तो यह असम्भव बात नही कही जा सकती। राजा के कुपित होन पर रानियो के कास म कटौती करना उनकी सुविधाए बन्द कर देना, दर्जा उतार देना—एसी अ न पुर का प्रथाए भी थीं। अन्त पुर का प्रशासन बडा कठोर होता था 1(20)।

अत मेडता के लोक सम्पक्त परिवश म पली-पनपी मीरा का मवाड मे बाधाओ का सामना करना पडा हो और उसका लोकव्यापी मानस विद्रोही बन गया हा तो ताज्जुब की बात नही। अन्त पुर की मर्यादा रक्षा मे राजरानी के शील और मर्यादा-पालन को कुल तारक मानन की प्रथा मवाड म भी 15 (41)। यदि किसी रानी क बारे म कोई विवाद रहा हा तो उसका नाम मेवाड़ की बहियों

मे न लाने की प्रथा थी। तभी मेवाड के इतिहास मे रावल रतनसिंह के समय की पदमिनी का विवरण नही मिलता, सागा के समय की मीरा काभी नही मिलता।

इस तथ्य के काफी ठोस प्रमाण हैं कि मेवाड मे मीरा केवल अपनी भक्ति के कारण विवादग्रस्त नही बनी होगी। मेवाड के राजवश मे भक्ति पुरातन गुण रहा है। दूसरी सदी विक्रमी से मेदपाट मे वासुदेव पूजा का प्रचार मिलता है 15 (140)। आज भी गाँव गाँव मे वैसे ही देवरे (चबूतरे) होते हैं जैसे कि प्राचीन काल मे थे—जबकि मदिरा का शिल्प-विधान प्रचलित नही था। जैन धम भी व्यापक था और चित्तौड के राजा जैन विद्वानो का सम्मान करते थे 15 (116-120)। विष्णु पूजा आक्षुण्ण रूप से लोक मे और राजवश मे प्रचलित थी। उसके प्रमाण दूर-दूर तक—आज के विजन प्रदेशो म भी मिलते हैं। विष्णु पूजा के साथ शैव, शाक्त, मातृका, भैरव, जैन पथ भी लोकव्यापी थे 15(141-142) महाराणा मोकेल ने चित्तौड मे द्वारिकाधीश का मदिर बनवाया था 15 (142), कभा न कुभश्याम का मदिर 15 (143) बनवाया था। स्वय महाराणा सागा ने स० 1574 से चारभुजा का मदिर बनवाया था 15 (144) जो कि मीरा के इष्ट-देव थे। मेवाड की कई रानिया राज-मर्यादा मे रहते हुए विष्णु की सेवा करती थी, कइयो ने राज्य मे कई स्थानो पर मदिर बनवाए थे। राणा सागा की बुआ रमाबाई ने जावर परगने मे राम स्वामी का मदिर बनवाया था 1 (29-30)।

तो, मीरा की भक्ति निश्चय ही वजनाओ और कोप ताडनाओ का कारण नही थी। मूल कारण था, राज मर्यादाओ का उल्लघन, मेवाड की जेठी बहू होने पर भी साधु सगत और कीतन सम्मेलन के आयोजन करने का—जिनसे चित्तौड की सवेदनशील राजनीति पर कुप्रभाव पडना स्वाभाविक था।

मीरा विवश थी अपनी लोकार्जित भक्ति की उद्दाम भावना से और मेवाड का राजवश विवश था अपनी मर्यादाओ की निष्ठा स। यही कारण था मीरा के असमायोजन का जो उनके पदो मे भी प्रखरता से व्यक्त हुआ है—

लोक-लाज कुल की मरजादा, यामे एक न रखूगी।
पिय के पलगा जा पौंचोगी, मीरा हरि रग राचूगी॥
पीहर वसू न वसू सास घर सतगुरु सबद सगाती।
ना घर तेरा, ना घर मेरा मीरा हरि रग राती॥

बड़े घर ताली लागी रे, म्हारा मन री उणारथ भाजी रे।
छीलरिय म्हारो चित्त नहीं रे, डाबरिय कुणजाव।
गगा-जमना का काम नहीं रे म्हू तो जाय मिलू दरयाव।
हाल्यां मोल्यां सू काम नहीं र, सीर नहीं सिरदार।
काम्हारां स काम नहीं रे, म्हू तो जाय बरू दरबार॥

कोई निन्दो, कोई बिन्दो, म्हे तो हरि गुन गास्या।
जिण मारग म्हारा साद पधारे, उण मारग म्हे जास्यां॥
मोती माणक परत न पहरू, मैं तो कब की नटगी।
गणो तो म्हारे माला दावडी अर चन्दण की कुटकी।

तो, मीरा चित्तौड मे यदि विद्रोहिणी थी तो अपनी लोकाचित भक्ति की अदम्य भावना के बल पर और मेडता मे वह यदि मान्य थी तो अपनी सहज लोकाभिव्यक्ति के कारण। उसका व्यक्तित्व तत्कालीन लोक मान्यताओ के तत्त्वों से गठित था और उसमे किसी तरह के प्रस्थान भेद, रूपान्तर का उदात्तीकरण या मार्गान्तर की गुजाइश नही थी। यदि उसके व्यक्तित्व मे कुछ लचीलापन होता तो सभवत वह मेवाड घराने मे भक्त राजरानी बन सकती थी मगर जिस रीति से उसने भक्ति वैराग्य और राज मर्यादा के प्रतिकूल साधु सगतो मे रुचि दिखाई, वह मेवाड की सुदीघ मर्यादा परम्परा मे खप नही सकी। मेवाड की राजपूती परम्परा मे तो स्त्री, स्त्री से भी पदा करती है और अपनी सास अथवा जेठा के सामने जबान तक नही खोलती। उसका परम धर्म यही होता था और होता है कि वह कुल की मरजाद निभाए। वह यदि भक्ति और वैराग्य दिखाए, आभूषण, परिवार, लोक सम्पक, माला, कठी आदि धारण करे तो उसे 'भगतण' कहा जाता है जोकि किसी कुलीन महिला के लिए बहुत बडी गाली होती है।

मेवाड और मेडता की कुल परम्पराओं मे नारी के स्थान, उसके कर्त्तव्यो और व्यवहार सरणियो मे इतना अन्तर था कि मेवाड मे राजपूत महिला 'कुल की आन' मानी जाकर चहारदीवारी म बन्द रहती थी जबकि मेडता की ओर वह कृषि, हाली, मोली, मनिहार, हमजोली नाते रिश्तेदारो के बीच मुक्त रह सकती थी। राजपूत वधुए भी कुछ समय तक पर्दे और प्रतिबधो मे रहती हैं बाद मे गहस्थी की आवश्यकतानुसार मेल जोल करती हैं। बेटियो पर तो पाबदी रहती ही नही। एक की बेटी पूरे गाव की बेटी होती है। मीरा का विकास ऐसे ही वातावरण मे मुक्त रूप से हुआ था कि वह तो—

जगती म्हारो पीर साधा सग सासरो" के स्तर तक पहुच चुकी थी। ऐसे धरातल पर पहुचने वाली भक्त के लिए मेवाड की अन्त पुर की वर्जनाए कोई मायने नहीं रख सकती थी। वहा के अन्त पुर का वातावरण तो राजनीतिक हथकडो और कुटिलताओ से गम रहता था। (31)। हमजोलियो बहुओ, बेटियों, प्रौढाओ, वृद्धाओ के अपने जमघट होते थे और वे निंदा, स्तुति, गपशप आदि मे अपना समय बिताती थी। महल और कोठरियां दासियो और दवादियो से भरे रहते थे और उनसे जासूसी, छल कपट और घातक काम भी कराए जाते थे। राज परिवार और अन्तपुर आम जीवन मे एक भिन्न लोक होता था।(71)। ऐसे वातावरण मे मीरा एक अजूबा ही बनी थी कि उसकी हर क्रिया पर हर व्यवहार

पर, टिप्पणियो से उसका पहला दिन आरभ हुआ होगा और निंदा स्तुति के उस माहौल ने अ तत 'बात को बतगड बना दिया होगा।

मेडता और मेवाड के लोकधम मे एक भारी अ तर यह रहा है कि मेडता जितनी गहराई से वैष्णव भक्ति, साधु सेवा नाथ पथी विचारधाराओ और सत-पूजा के प्रति सवेदनशील था, मेवाड उन मामलो मे उतना ही उथला था। मेवाड के लोगो म तत्र मत्र के प्रति बडी आस्था थी, शक्ति के विविध रूपो की— त्रिखडा, तोतला, त्रिपुरा, लक्ष्मी, तुलजा भवानी नदा क्षेमकरी, सवती, ब्रामणी, सव मगला, स्वेती, हरिसिद्धि, सुलीला, सर्वांगी ललिता, कालिका लीलावती उमा, पार्वती, गौरी, हिंगलाज, झातला लालबाई फूलवाई आवरी आदि 15 (150) उपासना प्रचलित थी। कई तरह के धम समातर चलते थे मगर वैष्णव धम की कुछ मान्यताए ही लौकिक हो सकी थी — ज स, चार वर्णों की उत्पत्ति और ऊच नीच के अभिप्राय, गगा का शकर की जटा म रहना त्रिलोत्तमा द्वारा ऋषियो की तपस्या भग करना, हनुमान का समुद्र लाघना, रेणुका का उद्धार, जरासध का जुडा हुआ शरीर, सुड निसुड की कथा, वराह अवतार, सेतुबध की कथा, आहिल्या तारण, लका दहन आदि 15 (145)। कृष्णलीला या कृष्ण स बधी मत लौकिक नही थे, साधु सगत जैसी बात अप्रचलित थी यद्यपि नाथपथी सतो के प्रति आतक जनित भक्ति प्रचलित थी। मेडता की और नाथपथ की इतनी व्यापक भूमिका रही थी कि वहा के लोक जीवन मे इडा, पिंगला, समाधि, ध्यान, योग, पाणीपियोछाण, वैराग्य, असारता आदि के अभिप्राय सहज हो चुके थ।

ऐसी अवस्था मे मीरा की कृष्ण भक्ति मवाड मे हलचल मचाने वाली सिद्ध हुई हो तो आश्चय की बात नही कही जा सकती। मेडता की और वैष्णव कृष्ण भक्ति और नाथपथी जोगियो की दीर्घकालीन परम्परा ने 24 (85) सूफी प्रेम-भक्ति के साथ रल मिलकर एक ऐसी लोक धारणा की रचना की थी जिसकी छाया मीरा के पदा मे मिलती है, जबकि मेवाड मे भिन्न भिन्न धम भिन्न भिन्न वर्गों मे स्थापित थे और वे कोई विशिष्ट रूप नही बना सके थे।

अत मीरा का चित्तौड मे अपनी मारवाडी लोक चेतना के साथ प्रवेश, उसका निर्वाह और उसका आग्रह वहाँ के राजघराने मे अप्रासगिक विक्षेप बना तो, यह स्वाभाविक था।

तथापि मेवाड के विशाल अ त पुर मे मीरा की भक्ति, उसकी सत-सगतियो और भजन कीर्तन वाली पूजा कम स-कम 15 वर्षों तक तो निभती रही जिसमे से केवल अतिम वष मे वजनाओ, निषेधो और निवारण के प्रयत्न सघन हुए होंगे। एतिहासिक तथ्यो के अनुसार विक्रमी 1584 तक मीरा के सामने समस्याएँ गभीर नही बनी थी। राणा सांगा की मृत्यु के बाद वहाँ के राजघराने मे और बाहरी सम्बन्धो मे अस्थिरता, कुचक्र और कुटिलताओ की उग्रता बढ़ी और स-

1889 मे रानी ककरमैती और उसके पुत्र विक्रमादित्य के गद्दी पर आते ही परिस्थितियाँ बहुत विषम हो गईं। साधु सतों, जोगियो और भक्तो के रूप मे बाहरी जासूसा और आतरिक विरोधियो की घुसपैठ चित्तौड के महलो तक होन लगी थी। चित्तौड के मुख्य मार्गों पर से सदिग्ध जनो और अपरिचित विदेशियो का आवागमन रोक दिया गया था 11 (50) मीरा के काय व्यापारो पर भी कठोर नियत्रण किया गया होगा जिसके कारण मेडतिया वीरम दे ने उन्हें मेडता बुला लिया होगा। विष देने की योजना या सपदश की कुटिलता—यदि ऐतिहासिक घटना हो तो वह स० 1888 89 म कभी घटी होगी, यद्यपि उसकी सभावना कम है क्योकि ऐसी कुटिलता मेवाड के राजघरान की प्रतिष्ठा के अनुकूल नही ठहरती। वहाँ की अतपुर व्यवस्था मे 'नीचे उतार देने की' प्रथा पहले से मौजूद थी और निश्चय ही मीरा के साथ वह किया गया था जिसके सकेत उसके पदो मे भी मिलते हैं—

1 सास नणद दे लीवो लीवो म्हारा मात पिता पठताय।
2 ठडा टूकडा थे पावो कोई पीवो खाटी छाछ।
भू सूवो भूखा मरो कठे मिलै गोपाल॥
3 सासरिया म दुक्ख घारो सास नणद सतावै।
देवर जेठ म्हारो कुटुम कबीलो नित उठ राड चलावै।
4 सासू बुरी है म्हारी नणद हठीली।
5 गढ चीत्तौडे ना रही नही रहण को जोग।
बसस्यां रूडी दवारिका, जहँ हरि भगतरा भाग॥
6 मीठा लागै टूक्डा, काई अमरत लागै छाछ।
भू सूवा, भूखा मरा, मा ने काल मिलै करतार॥
7 सासरिया न दुक्ख घणो रे, सासू-नणद सतावै।

कैजो म्हार बाबो सा ने, वेगा लेबा आवै॥—और मीरा के बाबो सा—वीरमदे विक्रमी स० 1889 के आरम्भ म मीरा,को मेडता ले गए 18 (1888)

मीरा को कष्ट देने की बात इससे भी प्रमाणित कही जा सकती है कि इतिहासकार एकमत से विक्रमाजीत को दुष्ट, अयोग्य और नीति विहीन बताते हैं—

विमात बधु उन रान बारो नरेश श्रीविक्रम नीति न्यारो।
बन न जामा महिपाल बन, धनो नसा देह प्रमाद छत्तै।
भानज जो अर्जुन को अभागो, रहे सदा मत्त अफीम रागी।
सु रानह वै ऊघन का सरा है चित्तौड को राज न जाहि चहै। 25 (2190)

यह भी सभव है कि मीरा के साथ दुव्यवहार म रानी करमेती और विक्रम के साथ फ्रे कुटिल सरदारो-सामतो या पुरोहितो का हाथ रहा हो। मेवाड मे प्रचलित एक कहावत—

बीजावर्गी वाणियो, दूजो गूजर गोड
तीजो मिलै जो दायमो, करै टापरो चोड ।।—बताती है कि कोई ऐसी घटना रही जरूर होगी जिसने मेवाड के राजकुल को बिखेरने और निंदा का पात्र बनाने का काम किया होगा और उस घटना मे इन तीन जातियो के लोगो की पहल रही होगी।

चाहे जो भी हो, इतना निश्चित है कि एक तो अपनी अनोखी कृष्ण भक्ति के साथ मीरा चित्तौड मे समायोजित नही हो पाई, दूसरे चित्तौड की कुटिल आन्तरिक दुष्टताओ ने उसका सम्पक ही चित्तौड से तोड दिया। वरना उसका तो कहना था—कि

1 सात बरस की मैं राम आराध्यो, जब पायो करतार।
मीरा नै परमातम मिलिया भव भव का भरतार।।

2 साध हमारा मैं साध की, हम हैं साधा आग।
साध हमारै मे रम्या, ज्यू पथरी मे आग।

3 साडीडा साडयो फेर देरे, परत न देसु पाव।
ले जाती बैकुठ को, समज्या नहिं सीसोद।।

हर परिस्थिति, हर घटना और मीरा के व्यक्तित्व का गठन परिवेशजनित परिणति के रूप मे माना जा सकना है। मीरा का मेवाड त्याग और उसके बाद मेडता का दुर्भाग्य भरा भविष्य भी एक ऐसा सयोग था जिसने मीरा को—

—तात, मात, भ्रात बधु अपना नहिं कोई।
—छाड दई कुल की कानि कहा करि है कोई।।
—इक ससार सगा नहिं कोई, सोचा सगा रघुबर जी।
मात पिता सैकुटुम कबीला, सब मतलब कैंगरजी।।—कहने पर मजबूर किया।

वस्तुत घटना चक्र इस तरह से चला कि मेवाड छोड कर और मेडता जाने पर स० 1589 से 1590 के लगभग एक वर्ष के बाद ही मुगलदेव के आक्रमण के कारण मेडता छिन्न भिन्न हो गया। 8(41 42) तथा 11(51) वह भी इस कदर कि वीरमदे को अपने परिवार और कुटुम्ब सहित शेखावाटी, अजमेर आदि की ओर भटकना पडा। 26 (27) मेडता से अजमेर, अजमेर से अमरसर से दिल्ली यो 9 वष तक जब वीरमदे का परिवार बेघर बेठिकाने, आश्रय के लिए भटकता रहा हो 27(299) व 10 (36) तो मीरा अपनी भक्ति और लावजमे के साथ कहाँ कहाँ भटकती फिरती! उसके कुल की आन और मर्यादा क्या हो सकती थी जिसका ससुराल भी बिखर गया हो और पीहर भी छिन्न भिन्न हो गया हो। उसकी यह अन्यथा छिपी भी नही रही—

मैं तो छोड़ि कुल की आनि, रानो मेरो कहा करसी।
सादा रै संग जाय दवारका मैं तो भज्या श्री रणछोड़॥
रायश्री रणछोड़ दीज्यो दवारका कावास।
संख चक्र गदा पदम मिटै जग की त्रास।
सकल तीरथ गोमती च रहत नित वास।
झाजर झझा बजै, सदा सुख की रास।
तज्यो देस स वेस हू तजि तज्यो राना राज।
दासी मीरा सरन आवल तुम्हैं अब सब लाज॥

माना जाता है कि जब वीरमद दर बदर होकर (स० 1591 92) भटक रहे थे और चित्तौड मे विक्रमाजीत की हत्या करके बनवीर ने गद्दी हडप ली थी, रानी करमैती जौहर कर चुकी थी और मेवाड के भावी बालक राजा उदयसिह को कुभलगढ मे छिपकर (स० 1593) रहना पडा था 15 (72) तब सब ओर से निस्सहाय, अकेली और उपेक्षित होने पर मीरा ने अपने रण छोडलाल की शरण ग्रहण की। उसका द्वारिका गमन विक्रमी स० 1593 93 मे हुआ था। कहा जाता है कि द्वारिका के रणछोड मदिर की बहियो म मीरा के आने और लम्बे समय तक वहाँ रहने का उल्लेख है 11 (53)।

मीरा का द्वारिका मे जाकर रहना दुष्कर कार्य नही था। ऐतिहासिक मान्यताओ के अनुसार सीसोदा का मूल गुजरात मे था और गुहिलवशी राजघराने आज भी उधर विद्यमान हैं। इतिहास म चित्तौड की राजकन्याओ के विवाह गिरनार तक होते रहे हैं, हर प्रसिद्ध राणा ने द्वारिका यात्रा की थी और वहाँ मन्दिर तथा निवास बनवाए थे। वहाँ गोमती के तट पर भी मेवाडी राजाओ का एक प्रसिद्ध मदिर था और वही मीरा का प्रवास स्थल था 11 (53)। निश्चय ही द्वारिकावास के अपने 10 वर्षों म मीरा की भक्ति का आवेग प्रखर होकर व्यक्त हुआ होगा। उसमे लोकतात्त्विक चेतना, अवचेतन आकाक्षाएँ, हताशा, असारता आदि के जो परस्पर पोषक और विरोधी आवेग मिलते हैं, वे उसी अवधि के हो सकते हैं जबकि वह कोई राजकन्या, किसी घराने की जेठी बहू, किन्हीं दो राज कुलों की आन, या रानी न होकर सिर्फ मीरा बन गई थी—सब बधनो और प्रतिबद्धताओ से मुक्त।

3 मीरा लोक-सग्रह के अवसर

मीरा के जीवनवृत्त मे किन प्रभावो ने उनका व्यक्तित्व सगठन किया था, कहा-कहाँ से क्या क्या प्रभाव उनके बचपन से उन पर पडे थे और क्यो उनकी भक्ति वैराग्य प्रधानता और हठीलेपन से सम्पृक्त हो गई थी, इन्हें समझने के लिए उनके समय की लोकनात्विक भूमिका को समझना आवश्यक होगा।

मीरा के जन्म और विकास के समय सामान्य और राजन्य वर्गों मे शासक-शासित का वैसा वग-भेद और प्रशासनिक विधान नही था, जैसा कि मालवा मे था, गुजरात मे था या मेवाड मे था। रेगिस्तान, पठार, अवर्षा, अन्नाभाव आदि ऐसे भौगोलिक कारण थे जिन्होंने छोटे छोटे क्षेत्रो को सुरक्षात्मक गढो, परकोटो का स्वरूप दे दिया था। उनसे बाहर या तो वीरान इलाके थे या झाड-झखाडो से भरे बीड थे। जनता म जब भी जो भी धार्मिक, सामाजिक रूढि बन जाती वह अपेक्षाकृत दीघजीवी और स्थायी हो जाती थी।

जीवन इतना सघषमय था कि परस्पर सहयोग और सहकार के बिना राजन्य वग को या साधारण जन को जीवन-यापन की सुविधा हो ही नही सकती थी। 11वी से 15वी शती विक्रमी तक लगभग पूरे देश मे लोकमानस ने एक समन्वित लोकधम और लोकमान्यताओ का विकास कर लिया था—खास करके उत्तरी और मध्यभारत मे 27(17-31) यथा

(1) भक्ति मे लाग वण या जाति भेद आवश्यक नही मानते थे। पूव काल मे नाथपथी सिद्धो सतो ने, वैष्णव भक्तो ने और साधु महात्माओ ने इसके लिए आधार भूमि तैयार की थी।

(2) काव्यो और शास्त्रो मे वर्णित सगुण, निर्गुण, प्रेम, ज्ञान, वैष्णव, स्मार्त, शाक्त, सिद्ध आदि मतमतान्तर उस समय तक समन्वित होकर ऐसे सवसामान्य लोकमत म विकसित हो चुके थे जिसमे—

ज्ञान मार्ग की मान्यताए भी थी, ईश्वर अलौकिक अरूप भी था और साकार भी था, उसके अवतारी रूप भी थे और वह प्रेम मय भी था वह बालक भी था, योगी भी था, वह नियामक भी था, भय का आलबन भी था और अधम उद्धारक

भी था। जीवन मे अहिंसा दूसरो को पीडा न पहुँचाना, क्षमा, धीरज, इच्छाओ का दमन, चोरी न करना, मारपीट न करना, ठगी न करना, दया करना, सत्सग करना, साधुओ की सेवा करना—ऐसे मूल्य व्यापक मान्यता पा चुके थे।

(3) साधु सत्सग और हरि-कीतन सर्वोत्कृष्ट और सर्वाधिक मान्यता पा चुके थे। तुलसी, सूर, मीरा और उनसे पूव के सतो ने इन उपायों को जनता के लिए मोक्ष का सरलतम साधन प्रसिद्ध किया था। साधु सत्सग और कीतन उपदेश के एक मात्र लौकिक सचार का साधन बनने का मुख्य कारण यह भी था कि यातायात, सचार, शिक्षा और देशाटन अभाव के उस युग मे ज्ञान, चेतना और लोकोपयोगी जानकारी का इसके सिवा दूसरा उपाय ही नही था। साधु-सन्त देशाटन करते, तीर्थयात्रा करते और अपने ज्ञान का प्रसार भी करते थे। इसी कारण भक्त और सत कवियो ने सत्सग की, साधु सगत की और साधुसेवा की निर्विवाद प्रशसा की है—

बडे भाग पाइय सतसगा। बिन हि प्रयास होइ भव भगा (7-33 4) तुलसी ने कई प्रसगो मे कई तरह से सत्सग की महिमा बखानी है जैसे—मोहजनित सशय के नाश के लिए सत्सग जरूरी है उसके बिना भक्ति और विवेक का उदय नहीं होता, सत मोदमय, मगलमय, सावदेशिक, सावकालिक सद्य फल दायक जगम और अलौकिक तीर्थराज हैं इसी जीवन मे चारो फल देते हैं, सतो की कभी निंदा नही करनी चाहिए, सतो का अपमान समस्त कल्याणो की हानि करता है। सूर के शब्दो मे भी—

जा दिन सत पाहुने आवत।
तीरथ कोटि स्नान करे फल जसो दरसन पावत (सूर सागर 2 17)

मारवाड की ओर तो वैसे भी पथिको का आवागमन कम होता था और जिधर साधु सतो का माग होना था उधर लोग खुले मन से उनके सत्सग की भावना रखते थे।

साधु महात्माओ का आना पव माना जाता था और भक्तजन उनके आवास, भोजन, भजन कीतन का अधिकाधिक लाभ उठाने की भावना से अभिभूत रहते थे। वह लोक परिवेश लगभग उसी तरह का होता था जैसाकि हम लोग आज भी जैन मुनियो और सतो के बारे मे देखते हैं।

तथापि साधु सतो के रूप मे कुटिल और दुष्ट खल जन भी अपना स्वाथ साधन करते थे। राजनीतिक जासूसी, कूटनीतिक प्रचार और गुप्तवास के लिए भी इस वेशभूषा का उपयोग किया जाता था। अत जो राज्य जटिल षडयत्रो और पेचीदा सम्बन्धो वाले थे उनमे साधु जोगी जती आदि को शका की नजर से देखा जाता था। मेवाड में साधु मडलियों और उनके भजन कीर्तन की लौकिक रीति के प्रमाण नही मिलते। जबकि मेडता, जालोर, जोधपुर, नागोर आदि क्षेत्रो की ओर उनकी

बहुलता थी। स्वय ठाकुर, जमींदार, सरदार, राव, राजा सत मडलियो को आमन्त्रित करते थे और वप भर किसी न-किसी तरह का आयोजन होता रहता था।

(4) मारवाड की तरफ लोकमानस मे समानता और ऊच नीच की भावना का विलोप अपक्षाकृत बडे पैमाने पर मिलता है। पशु पालन, कृषि की तुलना मे अधिक उपयोगी साधन था और गो रक्षा सावजनिक धर्म माना जाता था। लौकिक सहयोग, नतिकता और समानता का वातावरण कितनी तेजी से बनता था, इसका प्रमाण हमे मल्लीनाथ, पाबूजी, गोगाजी, हरभूजी मागलिया, मेहा, रामदेव जैसे वीरो सतो और उनकी महिमा के क्षिप्र प्रचार से मिलता है 28 (30 62)। ये सब वीर और सत जालौर, जोधपुर, नागौर, चुरू क्षेत्र के थे और उनमे से अधिकाश राजपूत थे। पाबूजी राठौर थे और मीरा के पूर्वजो मे से थे 28 (41)। हरभूजी राव जोधा के पूज्य थे और राव दूदा पर भी उनका अटूट प्रभाव था 28 (60)।

इन सब लोक देवताओ ने—जो कि मीरा से कुछ समय पहले हुए और लगभग समातर भी थे—पशु धन की रक्षा, त्याग, परोपकार, अन्याय का प्रतिकार, जाति भेद का विरोध, सामाजिक समानता, साधु सत्सग, तीथ यात्रा कमकाड आदि का विरोध, भजन कीर्तन का प्रचार, सत्सग करने का प्रचार, नीच और अस्पृश्य मानी जाने वाली जातियो का उत्थान, स्त्रियो को समकक्षता देने का प्रचार और समन्वित लोक धर्म का वातावरण बनाया था। 28 (61) मल्लीनाथ (1415 विक्रमी मे जन्म) ने राव राजाओ के लिए सत सम्मेलन करने और सवसाधारण जनता के साथ राज्य वर्ग की निकटता स्थापित करने की प्रथा चलाई थी। वे नाम स्मरण, साधु सत्सग, साधु सेना और तन्मय होकर भजन-कीतन करने को परम साधना मानते थे 28 (57)। तोमर रामदेवजी मीरा के निकटतम समकालीन थे। उन्होंने जिस तरह से कष्ट सहन करके सामती ठसक और राज मर्यादा आदि का दृढतापूवक विरोध करके, प्रतिष्ठा पाई थी, वह यदि मीरा के लिए सस्कारप्रद रही हो तो हमे आश्चय नही करना चाहिए। 'घट भीतर सकल तीरथ', 'तीथ-व्रत व्यथ', सत्सग सब तीर्थों का सार', 'जाति पाँति कुल मरजाद सब जीव का बधन'—ये सब रामदेवजी की मान्यताएँ थी। और भी—

—' सत री नाव गुरु खेवटिया रे, बैठो पार हो जावे"

(रामदेवजी की वाणी 101-17)

—' सतसग सिवा वठेइ नहिं सुधरै तीनूं हि लोक फिरि आवै
अमर पटो सत्सग मे मिलसी, वो फिर कोइ न छुडावै"

(राम० वाणी-106-27)

हरभूजी नागोर के थे और राव जोधा तथा उनके पुत्र दूदाजी उनके भक्त थे।

उनके यहाँ साधु सगत की यह स्थिति रहती थी कि हमेशा सदाव्रत चलता रहता था 28 (9)। राव दूदा भी साधु सेवा और सतसग के लिए विख्यात थे। ऐसे म मीरा के बचपन के सस्कारों को सरलता से समझा जा सकता है।

(5) इन लोक देवताओ द्वारा निर्मित लोक मानस के साथ कबीर, रैदास और रामानन्द की भक्ति और ज्ञान की धारा भी मारवाडी लोक जीवन मे समा गई थी। मारवाड मे धन्ना भगत (स० 1481) और गागरोन के पीपाजास (स० 1491) न सतगुरु, वैराग्य, सत सगत और 'सब हरि जन' वाले लोकमत की भमिका तैयार की थी। मीरा ने अपने पदो मे पीपा के परचे की बात कही भी है—

पीपा को प्रभु परचो दीन्हो, दिया रै खजीना पूर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, धणी मिल्या छै हजूर॥

धन्ना टोक क्षेत्र के थे और पीपा गागरोन (कोटा) के। ये दोनो भी मीरा से कुछ समय पहले ही हुए थे और उनके उपदेश साधु सतो की परम्परा मे, मीरा के चेतना काल मे, प्रचलित थे। 28 (73 84)।

(6) और जिस लोकभूमि पर यह सन्त मत पनपा था, नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय की वह मानस धारा भी मारवाड मे विक्रम की 6ठी से 9वीं सदी तक गगानगर से जैसलमेर तक, चुरू नागौर पाली पुष्कर, जोधपुर (मण्डावर), जालोर तक प्रबलता के साथ प्रवाहित थी 28 (19)। मीरा के समय तक उस प्रवाह की कई उपधाराएँ—माननाथी, बालनाथी, रतननाथी जसनाथी पूरे मारवाड-अचल मे व्याप्त हो चुकी थी। उनका इतना गहरा प्रभाव लोक मानस यह था कि इडा, पिंगला, सुखमना, जागे, वैराग, जोग, धूधरा धमकास्यां, निरजन, ध्यान, समाधि जैसी अभिव्यक्तियाँ आम आदमी की आम भाषा में भी समा गई थीं 11 (238 40)।

वस्तुस्थिति यह थी कि 13वीं से 16वी विक्रमी का मारवाड प्रदेश समन्वय का क्षेत्र था जिसमे ऐसे लोकमानस की रचना हो चुकी थी जो धम, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सामाजिक भेदभाव, वर्णाश्रम आदि के मामले मे उदार हो चुका था और हर मत की सार्वलौकिक बातें रलमिल कर उसमे समा चुकी थी। 28 (22) उस लोक मानस में ऐसी व्यापकता आ गई थी कि—

"जाति, गोत, कुल, नाम गनत नहि रक होइ के रानो।" (सूरदास) और "जाति, पाँति, कुल-कानि न मानस, वद-पुरानन साखी।" (सूरदास) जसी अभिव्यक्तियाँ आधारभूत हो चुकी थीं।

(7) इनके अलावा पुरातन काल से चली आ रही भाग्यवाद, विधाता, परिस्थितियो के सामने समपण, ज्योतिष, ग्रह, नक्षत्र, कम भोग, भाग्य, शकुन-अपशकुन आदि मे विश्वास, पूवजन्म, ईश्वर या देवी-देवता के साथ जन्म जन्मान्तर

का कौल, पिछले जन्म के कर्मों का भोग अगले जन्म मे मानना, अगले जन्म के सुधार के लिए इस जन्म मे कष्ट-योजना करना, शुद्ध जीवन के लिए सुख-सुविधाओ का स्वेच्छा से त्याग करना, भूमि पर सोना, रूखा सूखा खाना, छाछ पीकर ही जीने का अभ्यास करना, टाट पहनना, किसी-न किसी तरह का व्रत लेना, मानता करना, कठीमाला धारण करके उस व्रत को हर हालत मे निभाना—ऐसी मान्यताएँ और प्रथाएँ भी प्रचलित थीं। 27 (244) इनके स्रोत या मूल का पता नही लगता किंतु उनके अस्तित्व का पता पच्चीसो लोक कथाओ और लोक-गीतो से लगता है। हुआ यह होगा कि ईस्वी पूर्व के सामाजिक रिवाजो, और जैन, बौद्ध, वैदिक, अवैदिक, यावनी आदि मान्यताओ का उसी तरह से लोक जीवन मे समन्वय और तादात्म्य हो गया होगा जैसाकि परवर्ती युगो मे होता रहा है और आज भी हो रहा है। ऐसी पारपरिक मान्यताओ मे कुछ ऐसी सामाजिक-सास्कृतिक प्रथाएँ भी लोक मे प्रचलित थीं जो स्त्री की पवित्रता, नैतिक-निष्ठा और पतिव्रत की कसौटी मानी जाती थी। कई ऐसे प्रसग आते हैं—पुराणो मे, कथाओ मे, महाकाव्यो में—जिनमे स्त्री को अपनी सत्यनिष्ठा के लिए परीक्षाएँ देनी होती हैं। राम युग मे सीता के बारे मे भी अग्नि परीक्षा का विधान काव्य चर्चित है, महाभारत युगीन द्रौपदी के बारे मे, परशुराम युग मे रेणुका के लिए ऐसी कुछ प्रथाएँ थी—अग्नि में हाथ डालना और उसका न जलना, हाथ मे जलते अगारे लेना, गगाजल हाथ मे लेना और उसका सूख जाना, तुलसीदल हाथ मे लेना और उसका सूख जाना, सर्प को पकडना और उसके दश से बच जाना, विष पीना और उससे बच जाना, खौलते तेल में हाथ डालना। 27 (185) वास्तविकता तो यह है कि मध्यकाल तक (12वी-14वीं सदी तक) प्राचीन-नवीन सब धर्म, विश्वास और मान्यताएँ लोक मे इतनी समीप हो गई थी कि इनमे विभेद करना कठिन हो गया है 29 (30 31)। मेवाड मारवाड मे यह स्थिति थी कि एक ही वश के एक राव, राजा या ठाकुर एक मत के थे तो दूसरे किसी दूसरे मत के थे और कही कोई वैमनस्य नही होता था। सम्पन्न हो या साधारण व्यक्ति, उसके जीवन मे दान देना परम धर्म माना जाता था। विश्वास था कि दान देने से रोग शासन होता है, सम्पत्ति की अभिवृद्धि होती है, यश फैलता है 29 (301)। तप को भी मन-शुद्धि और पश्चात्ताप का साधन माना जाता था 29 (304)। विधवाओ के बारे मे मान्यता थी कि उनका वैधव्य पूर्व-जन्म के पापो का नतीजा होता है इसलिए अगला जन्म सुधारने के लिए वे कठिन तप करती थीं। उसमे भूमि पर सोना, रूखा सूखा खाना, शृगार न करना, लोगो को मुह न दिखाना, सिर मुडवाना, एकात सेवन करना भजन भाव मे रहना—ऐसे विधान थे।

सृष्टि के कर्त्ता को सर्व शक्तिमान मानना, उसे आत्मा का अधिष्ठाता मानना, कर्मभोग से चौरासी लाख योनियो मे जीव का आवागमन मानना, काल

की—कर्मगति या समय को अटल मानना, ईश्वर के भिन्न भिन्न प्रयोजनो से अवतार मानना—मत्स्य, कच्छप, वाराह, नसिंह, हरि, मनु, वामन, राम, कृष्ण, बलराम, सनकादिक रिषभ, हस, मोहिनी, ध्रुव, व्यास, यज्ञ, दत्तात्रेय, बुद्ध, नारद, नारायण, निकलक 29 (309 10) और उनमे से राम, कृष्ण, वासुदेव, चतुर्भुज, विष्णु आदि को पर्यायवाची मानना, सतो सिद्धो को सदगुरु मानना, साधु-सतो और सतिया के शाप को आस्था की नजर से देखना, उनके वरदान मे विश्वास रखना, हर अच्छे बुरे काम के लिए मुहूत और लग्न मे विश्वास रखना, 29 (313) स्वप्न के शुभ अशुभ फल मानना मत्र तत्र और टोने-टोटको मे विश्वास रखना, तावीज, गडे, लच्छे बाधकर शरीर को दैवी आपत्ति से बचाने की मान्यता रखना 29 (321), परावेतन मान्यताओ मे विश्वास रखना, जैसे—पूव जन्म की अधूरी इच्छा की पूर्ति के लिए ही विशेष घर मे जन्म लेना, ईश्वर के किसी शाप या वरदान की पूर्ति के लिए नया जन्म लेना अपने का पूव जन्म का योगी या राज्य या देवदूत या हाथी या मृग या कुछ भी मानने मे विश्वास रखना, प्रेतात्माओ के अस्तित्व मे विश्वास रखना, उसके साथ ही उन्हे वश म करने, उनसे इच्छित काम कराने मे विश्वास रखना, 29 (326) ऐसी अनेकानेक मान्यताएँ सर्वलौकिक हो चुकी थी।

(8) मारवाड मेवाड की और राजपूती घराना म स्त्रियो को लेकर विशिष्ट मान्यताएँ और जीवन चर्या और प्रथाएँ निर्धारित थी। बचपन म लडकियो के लिए गुडिया खेलना, गोटे खेलना, अपना रग रूप निखारना, सिंगार करना, हार, माला आदि धारण करना, गौरी पूजना और अच्छे पति की कामना करना, खेल तमाशे करना और देखना, मेलो मे जाना, पर्व-उत्सवो मे रमना हँसी ठिठोली करना, घरेलू व्यवहार सीखना झूठी-सच्ची प्रशसा या निंदा करना, बाहरी लोगो से और साधुओ आदि से लज्जा रखना—30 (24 26) इस तरह के विधान थे। कुलवधू बनने पर उसे पति कुल की 'आन' माना जाता था। पति को ही सवस्व मानना, उसके जीवन मरण के साथ अपना जीवन मरण मानना सती होना, कायर पति स सम्बन्ध न रखना—

पिय भागै तिस अद्दरै, सौंपे सकल सरीर।
वह रजपुत्तनि कुक्करी, सुमृतन कही गहीर॥

(परमार रासो—22 31)

कुल की मान मर्यादा निभाना—ऐसी मान्यताएँ दृढता के साथ स्थापित थी 13 (189 90) राजपूती किशोरियो और युवतियों पर पीहर म भी और ससुराल म भी, सुहागिन पर भी और विधवा पर भी वजनाओ और निषेधो की अधिकता इस कारण भी थी कि अभिजात वग रक्त की शुद्धता और आंगिक नैतिकता मे विश्वास रखता था—स्त्री की चचलता, कुटिलता और मिथ्याचरण सावलौकिक

भत्सना के विषय थे। फिर राजनैतिक और चारित्रिक दुघटनाओ की आशका सदा बनी रहती थी। इसी कारण कन्या के जन्म को दुर्भाग्यपूण मानने की मान्यता भी थी। पिता की ओर से कन्या का सिवाय राजनैतिक हित साधन के दूसरा आकपण या स्नेह नही होता था, मगर माँ के लिए कन्या और कन्या के लिए मा अन्तरग होती थी 13 (195)। अपने मन की बात कन्या माँ से या धाय माँ से कह सकती थी या अपनी अतरग सहेलियो से तथापि माँ अपनी पुत्री को व्यवहार की, पतिकुल मे समायोजित होन की शिक्षा देती थी—

मात पुत्ति परठिय सुमति। विधि विवेक विनयान।
पतिव्रत सेवा मुप धरम। इहै तत्त मति ठान।
पति लुप्पै लुप्पै जनम। पति बेचै बेचाइ।
इहै सीप हम धरी। जौ सुहाग समवाइ।

(पृथ्वी० रासो 1026/68 69)

सती का पूजना सती चौरे बनाना और सती को देवी मानकर पूजना, मनौती मनाना—यह भी परम्परागत मान्यता सावलौकिक थी 13 (243)। मगर, सती होने की प्रथा राजपूत सरदारो सामतो, राव, राजाओ के घरानो मे ही थी और वह भी मीरा के युग तक वैकल्पिक हो चुकी थी—

अरी महरिया क्यू तन जारै, जीवत इस मुर्दे के साथ।
मरे पिया तरे ना मिलि हैं, नाहक दी है पाय गमाय।

(परमार रासो-440)

ऐतिहासिक तथ्य है कि राणा सांगा के साथ करमैती सती नही हुई थी। राव दूदा व वीरमद तथा मीरा के पिता रत्नसिंह के साथ भी किसी के सती होने का उल्लेख नही मिलता। सती होने न होने की महिमा जितनी काव्यात्मक और साहित्यिक है उतनी व्यवहार जगत को नही है। तभी मीरा ने कहा है—

'गिरधर गास्या सती न होस्या, मन मोहया घन नामी।।"

(9) मीरा के युग मे कुछ दैनिक-जीवन सम्बधी आचरण-व्यवहार सम्बधी, लौकिक मान्यताएँ भी थी जो स्वस्थ, शात और सदाचारी सामाजिकता के लिए आवश्यक थी। यथा— चोरी न करना, मारपी या बटमारी न करना, पर निदा न करना, छानकर पानी पीना (अभिधा मे भी, लक्षण मे भी) सयुक्त परिवार मे राड (झगडे) की अनिवार्यता मानना। 11 (150-51) सहेलियो मे नाच-रग, हास विलास सिगार पटार, घर व्यवहार की बतकही आम दिनचर्या थी जिस गभीर स्वभाव वाली स्त्रियाँ पसन्द नही करती थी। बडो मे दासियो, दावडियो के जरिये निन्दा स्तुति के प्रसग दिनचर्या के अग थे। मीरा जैसी लडकियो को इनम रुचि नही भी होती थी—

आवो खहेल्यया रली करां हे ! पर-घर गवण निवारि ॥

बाकी तो, स्त्री के पुरुष की दासी बनकर रहने की प्रथा परम्परा से लोकाजित थी 9 (97) बड़े घरानों में जहाँ बहुविवाह होते थे, वहाँ तो राजरानियों का नाता केवल भोजी खाने से होता था, राजा या राणा से भेंट तो कभी हो जाती तो हो जाती। हास बिलास एकांत शृंगार और पति से भेंट के लिए भी रानियों को दूतियो, विदूषकों खवासा आदि का सहारा लेना पड़ता था। राज मर्यादा यही होती थी कि जिस रानी को जो राजनीतिक दर्जा मिला हो, उसके अनुरूप वह अन्त पुर वासिनी बनी रहे। 'वह कुल की आन' मानी जाती थी और उसके लिए उसे बहुत मर्यादित रहना होता था, यहाँ तक कि 'साका करन' का मौका आने पर उसे जौहर भी करना पड़ता था। मगर, अपनी कोठरी में या महल में उनकी दिनचर्या सिंगार पटार और विलासिता में बीतती थी। 5 (132)।

उस जमाने में बस्तियों की बसावट इस तरह से होती थी कि राजमहल के आसपास सामंत, सरदार, पुरोहित, बड़े साहूकार आदि बसते थे—जातिवार, समूहबद्ध होकर, और बाहरी घेरो में कमीन, श्रमिक, शूद्र आदि बसते थे। 5 (146-47) इसलिए समृद्ध वर्गों की जीवन चर्या, निंदा स्तुति आदि साधारण जनो तक अनुश्रुतियों के रूप में ही पहुँच पाती थी। मंदिरों में पर्व, उत्सव, संकीर्तन आदि का आयोजन किया जाता था। तब लोग उनमें सज धज कर जाते थे। उनके अलावा लोगों के पास अपने को सजा हुआ दिखाने का मौका और नहीं होता था। 3 (148)

(10) आम जनता की रीति राज रीति के अंधानुकरण की होती थी। जहाँ कहीं राज परिवार में धर्म या भक्ति का रुझान दिखता था, विविध मत मतांतरों के साधु, संत, महात्मा, प्रचारक, मठाधीश वहाँ पैठ करने और अपना सम्बंध राजपरिवार से जमाने की चेष्टा में लग जाते थे। हर सम्प्रदाय राज परिवार को अपने से जोड़कर प्रचारित करने लगता था और आम जनता में किंवदंतियाँ फैलने लग जाती थीं। राणा कुंभा के बारे में शैव, वैष्णव, शाक्त सब मतों के उल्लेख मिल जाते हैं। राव जोधा को लेकर सिद्ध, संत और वैष्णव होने की किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। मीरा के बारे में भी वैसा ही हो तो आश्चर्य नहीं मानना चाहिए क्योंकि उस युग में हर धर्म मत और सम्प्रदाय राज आश्रय चाहकर या उससे अपने को जोड़कर लोक व्यापी बनने की आपा धापी में लगा हुआ था। इसका एक परिणाम तो यह हुआ कि हर मत या सम्प्रदाय की कोई न कोई रीति लोक-मानस में जाकर समन्वित हो गई। तभी हम देखते हैं कि एक ही कवि या भक्त या उपदेशक एक बार ज्ञान और वैराग्य गाता है तो दूसरी बार रास रंग के माधुरी भक्ति के गीत गाता है। एक बार वह सुरति निरति माया-ब्रह्म, सुन्न मंदिर की बात करता है तो वही दूसरी बार प्रेम पियारे आधीरात के मिलन' और दास-दासी

बनकर चरण सेवा की बात करता है। ऐसी समन्वित रीति लोक-धर्म मे भी थी कि बिना भेदभाव के लोग नवरात्र मे शक्ति पूजा करते थे, शिवरात्रि पर तन्मय होकर शिव पूजा करते थे, दशहरे पर राम की पूजा करते थे, मानता करने के लिए दरगाह शरीफ भी जाते थे, भैरव उपासना भी करते थे और सतो पीरो के देवरे भी धोका करते थे। ऐसे समन्वित लोकधर्म के उदाहरणो का आज भी अस्तित्व मिल जाता है। अत उस युग के जो भक्त, सन्त, महात्मा या कवि जो कि किसी सम्प्रदाय विशेष से बधे हुए नही होते थे, आम जनता की लोक चेतना को अभिव्यक्ति करते थे। मीरा पर उसके समय के मेडता के परिवेश का ऐसा प्रभाव था कि वहाँ वैष्णव, सिद्ध, सत, नाथ, सूफी मातपूजक, वासुदेवीय, चतुर्भुजीय, लोकदेवता आदि के मतमतातर रलमिल कर एकरस हो गए थे।

(11) मेडता क्षेत्र मे यद्यपि वह नव स्थापित राज्य था और सदा सघषरत था—खान-पान की रीति राजपूती मर्यादा के अनुसार थी। 4 (164) पोषण के लिए अक्सर गोठो का आयोजन होता रहता था जिनमे मिठाइयाँ पानी मे गगा जल मिलाना, उसे सुवासित करना, इलायची, कपूर, पान, कस्तूरी, लौंग का सेवन मुख को सुवासित करने के लिए करना, छाछ का अमृत मानना, दूध, दही, घी, शक्कर के बिना भोजन को रूखा मानना—इस तरह की मान्यताए प्रचलित थी। सामतो, सरदारो, पुरोहितो मे दाख, बादाम, नारियल, खीर-खाड मेवे सामान्य चीजें मानी जाती थी। सरदारो, प्रसिद्ध वीरो और जुझारो की खुराक पर पूरा ध्यान दिया जाता था। आमतौर पर एक-एक सरदार को डेढ सेर का रोट, डेढ पाव घी, डेढ कूचडा मांस और डेढ सेर दूध मिश्री की खुराक दी जाती थी। लोक मे भी लापसी, चूरमा, खीर-खाड, बाटी दलिया, बाफले, राब का चलन था। उनके लिए मेवामिसरी दुलभ वस्तु थी, खाड और भात भी विशेष सम्मान की चीजें थी 11(153)।

वेशभूषा में लहगा, चोली, बूटेदार ओढना लहरिया, दखणी चीर, कसूमल साडी और भाँति-भाँति के आभूषण 11 (138) जैसे राजवर्ग मे होते थे, वैसे ही लोक मे भी, अन्तर उनके सस्ते या महँगे होने का होता था। अगर देव वृन्द के, कन्याओ के, सधवाओ के, विधवाओ के, परित्यक्ताओ के सजने-पहनने के साधन इतने भिन्न होते थे कि देखते ही उनकी पहचान हो जाती थी। राज परिवारो मे सोना, हीरे, मोती वैभव के प्रतीक होते थे, विलास की भाँति भाँति की चीजें होती थीं और साधारण जनो मे चाँदी, पीतल या रागे के आभूषणो का चलन था। उनकी घडत मे भी जाति और स्तर के अनुसार विशिष्टताएँ होती थी। यानी लोक जीवन मे परम्परा से जाति भेद इतनी गहराई तक चला गया था मगर धर्म भक्ति, उत्सव, पर्व आदि मे सब समान हो जाते थे।

लोक-जीवन की दिनचर्या या तो कृषि जीवन आधारित या पशु पालन आधा

रित थी। प्रात उठकर कलेवा करना, दूध-दही बेचने जाना, खेत जाना, भैस-गाय दुहना, घास पूले लाना, रसोई करना, दोपहरी ले जाना, पानी भरने जाना, हाट-बाजार करना, बाजार मे बिछायत करना—चादर बिछाकर अपना माल बेचना, बजारो से सौदे करना, इस तरह के प्रतिदिन के व्यवहार होते रहते थे। भिन्न भिन्न जातिया और सेवा कर्मियों की अपनी दिनचर्या अपने ढग की होती थी और फुरसत या पर्व उत्सवा पर लोग अलग-अलग ढग से खेल-तमाशा मे भी रमते थे—यथा—पत्रग (?), फाग, चौपड, चट-भट रस्साकशी, घूसा मुक्की, शिकार, नट-नटी के खेल, नाच गाना, रेल-पेल जिसमे किशोर किशोरियाँ सब शामिल होते थे। होली सर्वाधिक लोक प्रचलित त्यौहार था। 11 (144 45) मोर, सारस, बगले, दादुर, कागा, कोयल जैसे पक्षी, गाय, भेड, बकरी, हिरण, भैस, कुजर जैस पशु मधुमक्खी, वीर बहूटी जैसे कीट पतग, आम, महुआ, नीबू, कनेर जैसे फलदार वक्ष पौधे और झाडियो से भी लोगो की दिनचया जुडी हुई थी। प्रकृति के अदभुत व्यापारो, ऊजड खेडो, खडहरो आदि से जुडकर भूत प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी डायन, राक्षस, चुडैल, जिन्न, परी देवता, परचा आदि भयदायक या आकाक्षा जनिक विश्वास भी प्रचलिक थे और उनके निराकरण मे मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण वाले तत्र मत्र टोने-टोटको का अभाव भी लोकमत मे नहीं था। 11(140-155)

भिन्न भिन्न जाति स्तरो के जीवन मूल्य यद्यपि भिन्न होते थे तथापि भूमि प्रेम सर्वव्यापक और सर्वोच्च होता था। कई जातिया मे जो युद्ध प्रिय थी—भूमि और स्त्री दो ही मानदड होते थे। उनके उदाहरण आज भी दिखाई देते हैं।' स्वामिभक्ति राजगुण माना जाता था। वचन पालकता को आन माना जाता था और उसकी व्यापकता सरदारो चारण, भाटो, पुरोहितो, महाजनो, व्यापारियो तक थी। स्वाधीनता का मूल्य भी ऊचा था और सेवा मे भी व्यक्तिगत स्वाधीनता का सम्मान किया जाता था। राजपूती आन मे पारिवारिक या कुल जनित नित्य नियमों को आचार विचार को भी स्वाधीनता के समान मूल्य दिया जाता था। नेम को अटल माना जाता था, चाहे उसके लिए कुछ भी सहन करना पडे।

4 मीरा व्यक्तित्व मीमासा

रचनाकार अपने परिवेश का उत्पाद होना है। उसके व्यक्तित्व के घटक जितने आनुवशिकी होते हैं उतने ही वातावरण मे पोषित और परिपक्व होते हैं। मीरा उस आनुवशिक परम्परा म थी जिसमे पाबूजी जैसे लोक देवता हुए थे। 28 (41) पाबूजी का समय विक्रमी 1296 का था। वे राठौर राव धाँधल के पुत्र और राव आसथान के पौत्र थे। उनके जीवन के कई पराक्रम एसे कहे जाते हैं जिनकी कल्पना उस युग की राजपूती या जातीय परम्परा मे कोई भी कर नहीं सकता था। उस समय सिरोही कोलू के बीच 'आना बघेला' का ठिकाना था। वहा के भगोडे साठ थोरी (अन्त्यज और अछूत) भाइयो को जब बघेला के भय से किसी ने आश्रय नही दिया तब पाबूजी ने उन्ह शरण दी, उनकी रक्षा की बल्कि राज्य ने उन्हें सम्मानित पदो पर स्थापित किया। वीरता, वैराग्य, गो रक्षा, वचन पालकता और इच्छा शक्ति की दृढता के कारण उन्हे लक्ष्मण का अवतार माना गया था। गो-रक्षा मे शहीद हो जाने के कारण जनता ने उन्हे लोक देवता के रूप में पूजा। 28 (41-44)

तय बात है कि पाबूजी की परम्परा जोधाणो के लिए गौरव की बात थी। और दूदा जी उस परम्परा के वैष्णव भक्त थे। मेडता का वातावरण भक्ति, कीतन, साधु सत्सग और सामाजिक सौमनस्य से भरा-पूरा था और उसम पली-पनपी मीरा के लिए साधुओ के लिए भक्ति भाव, भक्ति से पवित्रता की कल्पना, जीवन मे भक्ति से ही सुख, असारता मे सार, क्षणिकता मे स्थायित्व जसे सम्बोधो का विकास असगत नही था। उसके व्यक्तित्व मे साधु-सगत इतनी गहन भावना से सम्पक्त हो गई थी कि —

साध हमारा हम साधकी, हम हैं साधो आग।
साध हमारे मैं रम्या, ज्यू पथरी की आग॥
11(159)

माई म्हारे साधाँ, री इकत्यार है।
साधु ही पीहर, साधु ही सासरो, साँवरिया भरतार हो।

जात पाँत कुल कुटुम कबीलो, साधु ही परिवार है।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, रमस्यो साधो लार हे।
32 (111-159)

बरजी री म्हाँ स्याम बिना न रह्यां।
साधो सगत हरि सुख पास्यू, जग सू दूर रह्यां॥
31 (127 60)

साधु मात पिता कुल मेरे, सुजन सनेही नाभी।
सत चरण की सरण रैन दिन, सत्त कहत हूँ बानी॥ 33 (107 30)

चाहे कुल मरजादा रहे या जाए, निंदा हो या स्तुति, चाहे प्राण जाए मगर, साधु सगति छोडना मीरा के लिए प्राण विसजन जैसा हो गया था।

साधुओ के बारे मे, जोगी-जती सन्यासी आदि के बारे मे मीरा की मृत्यु के 40 45 वर्ष बाद ही तुलसीदास ने भ्रष्टता का जो चित्र अपनी कवितावली, विनय पत्रिका आदि मे दिया है वह चाहे प्रादेशिक हो, मगर यह सोचने को विवश करता है कि मारवाड मेडता की ओर वैसी भ्रष्टता—मीरा के समय मे थी या नही। तुलसी का कहना है—

सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥
34 (7-99)

बमिन निज मत कलपि करि प्रकट किए बहु पथ। 31 (76 97)

सूद्र करहिं जप-तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना।
34 (7-99)

नहिं तोष विचार न सीतलता।
सब जाति-कुजाति भवे मगता॥ 34 (7 101)

जबकि मीरा का कहना था—

सेवा साधू जनन की, म्हारे राम मिलण की आस।
33 (106 29)

आज म्हारो साधु जनन रो मग रे राणा म्हारा भाग भल्या।
साधू जन रो सग जो करिये चढे ते चौगुनो रग रे॥
33 (108 33)

इस तरह की गहनतम साधु सगत की भूख मीरा के व्यक्तित्व का वह अतरग घटक था जो उसकी हठधर्मिता विद्रोह जगत बोध की तटस्थता, पीहर या ससुराल की मर्यादा चेतना से शून्य और विकट अन्तर्मुखी प्रवत्ति का प्रेरक था। इस घटक का प्रभाव शायद बचपन का वातावरण था। मीरा का कथन है—

सात बरस की मैं राम आराध्यो, जब पायो करतार।
मीरा नैं परमातम मिलिया, भव भव का भरतार॥

तथ्य बताते हैं कि अपने पिता रतनसिह के निरन्तर युद्धो और व्यवस्थाओ मे व्यस्त होने के कारण मीरा मेडता मे बाबा राव दूदा और दादा वीरमदे की स्नेह छाया मे पली थी। वहाँ का वातावरण भक्ति, सत्सग और चारभुजा की पूजा-अचना का था। बचपन से ही गजाधर पडित को मीरा की दिक्षा दीक्षा के लिए नियुक्त किया गया था। वे पडित चारभुजा की सेवा पूजा भी करते थे और बालिका मीरा को कथा-पुराण भी सुनाते थे, भजन-कीतन भी करते थे। यह भी तथ्य है कि राव दूदा और वीरमदे निश्चिन्त गृहस्थ नही थे युद्धो और सघर्षों से उन्हे घर पर रहने और राज मर्यादोचित शिक्षा का ध्यान रखन का समय कम ही मिलता था। फिर मीरा स्वत राजपुत्री नही थी, वह दूदा के ऐसे पुत्र की पुत्री थी जो राज्य का उत्तराधिकारी नही था, भायला था, जिसकी हैसियत सिफ 12 गाँवो के ठिकानेदार की थी। वह हैसियत भी इस तथ्य पर निभर थी कि वह अपने कठिन कर्त्तव्यो का पालन करता रहा, वह भी ऐसी स्थिति मे जबकि मेडता का राज्य नया नया ही स्थापित हुआ था और उस पर जोधपुर के बरसिह तथा उसके पुत्रो की गिद्ध दष्टि लगी हुई थी।

ऐसी स्थिति मे मीरा को राजपुत्री की मर्यादाओ, प्रतिबधो, सीमाओ, निषेधो के दायरे मे न तो बाँधने की जरूरत थी, न कोई बाँधने वाला था। उसका स्वभाव निश्चित रूप से अन्तर्मुखी और एकातिक तथा चिन्तन प्रिय रहा था जिसे आज के मनोवैज्ञानिक असामान्य बच्चे के लक्षण कहेंगे। 'मीरा की परची' 30 से पता लगता है कि—

गुडीया गोटा सयाँ रमावैं,
मीरा सत-सेवा पधरावै।
रग रूप सईयाँ मिल राचैं,
मीरा हरि के मिदर नाचैं।
सईयाँ मिल-मिल मगल गावैं,
मीरां कू हरि का जस भावै।
हार डोर सईयाँ गल पैहरैं,
मीरा कठी माला हरैं।
सईयाँ फिरि फिरि आन मनावैं,
मीरां हरि बिन सिर नहिं नावैं।
सब सईयाँ सिफ भवरां पूजैं,
मीरां भगति सतां नैं बूझै।
सईयाँ हस-हस करैं तमासा,
मीरां बोलैं वचन उदासा।

सईया सीखै विध व्योहारा,
मीरां सिवरै सिरजण हारा।
सईयां झूटी झिकर चलावै,
मीरां उनमन हरि गुण गावै।
सईयां साध सतो सू लाजै,
मीरां हिलमिल मगत साजै। 30 (24 25)

—मीरा बचपन से ही विशिष्ट थी। अन्तर्मुखी, चिन्तन प्रधान और एको
न्मुखी भावना प्रवणता के बिना वह ऐसे दिवा स्वप्न नही देख सकती थी कि—

माई म्होनै सुपने मे परण गया जगदीस।
सोती को सुपना आवीया जी सुपना बिस्वा बीस।
अग-अग हल्दी मैं करी जी, सुघे भीज्यो गात।
छप्पन कोट जहाँ जान पधारे, दुलहा श्री भगवान।
सुपने मे तोरन बाधियो जी, सुपने मे आई जान।
मीरां को गिरधर मिल्याजी, पूरब जनम के भाग।
सुपने मे म्हानै परण गया जी, हो गया अचल सुहाग॥
33(105 36)

और, असामान्य आत्मनिष्ठा न होती तो उस स्वप्न को जीवन का परम सत्य मानकर असामान्य हठ धर्मिता का अद्वितीय उदाहरण भी नही बनती। मनोविश्लेषणकर्ता मीरा के व्यक्तित्व मे मातृवात्सल्य का अभाव, निश्छल पित छाया की कमी, सहज स्वाभाविक स्नेह का अभाव, अकेलेपन वाला बचपन जैसे कारण 23(5 10) खोज लेते हैं, मगर सचाई यह माननी चाहिए कि अतीन्द्रिय आत्म तत्व कभी इतना प्रखर भी हो सकता है कि वह व्यक्ति के चरित्र और व्यवहार को आजीवन आच्छादित कर ले। मीरा के साथ ऐसा ही हुआ था कि वात्सल्य और सहज स्नेह की उसकी उत्कट आत्मपोषित भावना कृष्णोन्मुखी हो गई 23(15)।

उसके व्यक्तित्व की यह विशेषता और बचपन मे साधु-सतो से मिला उन्मुक्त स्नेह उसके मन मे घर कर गया कि सच्चा सुख हरि स्मरण मे है। ससार की असारता का, काया की नश्वरता का, पूर्व जन्म के कौल का यदि मीरा को बचपन से ही विश्वास हो चला हो तो अचभे की बात नहीं होगी। वह अ
उसे अनोखा बना गया। हरि स्मरण से आगे बढते-बढते उसकी उत्क
—आयु और परिस्थितियो के सन्दर्भ मे—किस तरह दाम्पत्य भा
ग्रहण किया होगा? यह किसी स्वतन्त्र अध्य का विषय हो सकता
वश्य जरूरी है कि—

देवर जेठ म्हारे कुबूधो, नित की छाडै राड । 11 (167)
सासू बुरी है म्हारी ननद हठीली । 11 (167)
सासरिया मे दुख घणो रे, सासू ननद सतावै ।
देवर जैठ म्हारो कुटुम कबीलो नित उठ राड चलावै ॥
11 (167)

इस टकराव मे उसके व्यक्तित्व का वह हठीलापन उभरता है जो हमे पावूजी की याद दिलाता है, या बीरमदे की याद दिलाता है, जिन्होंने नौ बरस तक दर-बदर रहते हुए भी अन्तत मेडता वापस लिया । ऐसा हठीलापन मीरा को विरासत मे मिला था । वही उसे कहला सका था—

—म्हाने गुरु गोबिन्द री आण, गोरक न पूजा । 33 (106 29)
—राणा जी म्हे तो गोवद का गुण गास्यां ।
चरणामृत को नेम हमारो, नित उठ दरसण जास्यां ॥
33 (108 34)

—नहिं भावे थौरो देशडलो रग रूडो ।
थारा देस मैं राणा मगति नहिं छै लोग बसै सब रूडो ॥
33 (109-35)

थें तो राणा जी म्हाने इसडा लागो ज्यू बछल्ल मे कैर ।
महल अटारी हम सब त्यागा, त्याग्यो थारो सैर ।
काजल टीकी राणा हम सब त्याग्या, भगवा चादर पैर ॥
33(110 37)

—सीसेद्यो रूठो तो म्हारो काइ करसी ।
म्हें तो गोवद का गुण गास्यां । 33 (110 38)
—म्हें तो गोविद का गुण गाना ।
राणा रूठै नगरी राखै, हरि रूठे कहँ जाणा । 33(112 43)

गढ चित्तौडे ना रहाँ नहिं रहण को जोग ।
वसस्यां रूडी दुवारिका, जहँ हरि भक्तां रा भाग ॥ 11 (53)

अपनी टेक के कारण मीरा को चाहे चित्तौड छोडना पडा, परिस्थितियों की कुटिलता के कारण मेडता भी छोडना पडा, सब ओर से निराश्रित होना पडा, मगर उसका व्यक्तित्व अटल और अडिग रहा । उसके व्यक्तित्व ने बचपन मे जो लोकव्यापी तत्व सगठित किये थे वे खुलकर तब प्रगट हुए जब वह उन्मुक्त होकर द्वारिका वास करने लगी—

रामश्री रणछोड दीज्यो द्वारिका वास ।
सख चक्र गदा पद्म मिटै जग को त्रास ।

मकल तीरथ गोमती कै रहत नित बास।
झालर झझा बाजै, सदा सुख की रास।
तज्यो देस रू बेस हू ताजि तज्यो राना राज।
दासी मीरा सरन आवत तुम्हें अब सब लाज ॥ (22)

एक व्यक्तित्व जो बचपन से हरि भक्ति, लोक स्नेह, साधु-सगत और निश्छल भावभूमि पर पनपा, राजकुलो की नारी मर्यादा, निषेधो, वर्जनाओ और ताडनाओ की टकराहट से बदला नही झुका नही, टूटा भी नही बल्कि लोकानुगत हो गया, लोकव्यापी हो गया और लोकाश्रित हो गया—यह मीरा के विकास का सार कहा जा सकता है।

तभी मीरा का जस, मीरा की कीर्ति, उसकी स्तुति और वदना के गीत उसके पीहर और समुराल वालो ने नही गाए, जनता ने गाए, भक्तो ने अपने-अपने ढग से उन घटनाओ और भक्ति के उद्‌गारो को सजोया—चाहे उनमे उन्होने अपनी छाप भी लगा दी हो। हर लौकिक भक्त और महान व्यक्ति के साथ ऐसा होता आया है। लोक मानस की श्रद्धा, उनकी भक्ति, उनकी भावना जब खुलकर अभिव्यक्ति होती है तब उसमे अपने-पराये का भेद नही रह जाता। महानता व्यापक हो जाती है और उसमे सबका समावेश हो जाता है।

मीरा के पदो के जो देशव्यापी सकलन मिलते हैं, उनमे मीरा के व्यक्ति को खोजना सरल काम नही है। उनमे देश हो गई है, युग हो गई है बल्कि जगत हो गई है। तभी तो कहा है—

जगती म्हारो पी'र, साधा सग सासरो।
मोहन चतुर सुजान, हरिजी रो आस रो ॥ (35)

मीरा के बारे मे ऐतिहासिक दस्तावेज चाहे कम हो, अधूरे हो, लोक भावना ने जो कुछ सकेला है, सहेजा है, वह उसके व्यक्तित्व की प्रखरता, टेक और उसकी महानता और प्रसिद्धि को समझ पाने मे सहायक है।

ऐसे बहिर्साक्ष्यो की काफी बडी सूची है जिनमे मीरा के राठौर वश के चारण, भाट, पुरोहित भी हैं, परवर्ती ठाकुर और भक्त भी हैं, वल्लभ मत के, रामानद के, वैष्णव-पथ के, नाथपथ के, परवर्ती भक्त और सत भी हैं और जैन साधु-साध्वियाँ भी हैं। ऐसे बहिर्साक्ष्यो का समय मीरा के जीवन काल से लेकर उन्नीसवीं सदी विक्रमी तक जाता है। जहाँ तक मीरा के पदो का प्रश्न है, वे भाषा के स्तर के कितने हैं, लोक के कितने हैं यह उत्तर अब तक अनुत्तरित है और अनुत्तरित रहेगा। किंतु भावना मीरा की है जो लोक ने स्वीकार की और उसे अपनी-अपनी भाषा में उसने आज तक जीवित रखा है। (13-39)

ऐसे साक्ष्यों से मूलत जो तथ्य उभरते है वे यों है—

(1) मीरा मेडतिणी का हठीला व्यक्तित्व था जिसने अपने ससुराल की कुल मर्यादा, सासारिक लाज की परवाह न करके भक्ति की।

(2) उसके व्यक्तित्व की जो अनूठी विशेषता राज विरोध का कारण बनी, वह भक्ति भावना नही थी बल्कि साधु सगति की अटल टेक थी जिसे उसने नही छोडा और क्या मेवाड तथा क्या मेडता वाले—उ होने उसे छुडवाना चाहा तो छुडवाना ही धार लिया। इस खीचतान मे ही—परिस्थिति वश ही सही—नाते रिश्ते टूट गए और मीरा लोकमयी हो गई।

(3) मीरा यद्यपि राज घराने के एक ठाकुर की क या थी और एक महत्व-पूण राजवश की बहू थी फिर भी ससार के वभव, राजसुख, सिगार, भोज आदि उसे भक्ति-पथ से विचलित नही कर पाए। जबकि राज-वशो की ओर से वजनाओ, निषेधो और प्रतिब धो के जितने प्रयत्न हुए उनसे उनका साधु सगत का आग्रह बढता चला गया। इस सीमा तक कि अ तत वह सब मर्यादाएँ तोडकर लोकव्यापी हो गई।

काल क्रम से देखें तो विविध स्रोतो मे मीरा सम्ब धी मत उल्लेख इस तरह से मिलते हैं।

(1) नरसी मेहता मा य समय विक्रमी 1528 से 1595। इनके एक पद मे मीरा की एक परची का हवाला आता है—

मीराबाई ना विष अमत कीधां, विदुरनी आरोगी भाजी रे॥ 11 (271)

यदि नरसी मेहता का समय सदिग्ध नही है तो मानना होगा कि मीरा के राजकुल की घटनाएँ गुजरात काठियावाड तक फैल चुकी थीं। उस जमाने मे जब साधु सतो का निरन्तर आवागमन द्वारिका मेडता मेवाड-वृ दावन होता रहता था तब लोक प्रवादो के फैलाव मे कोई देर नही लगती थी।

(2) हरिराम व्यास रचना काल का मा य समय विक्रमी 1612 और निर्वाण विक्रमी 1630। यह स्वामी हितहरिवश के शिष्य थे, ओरछा के निवासी थे और व दावन मे निवास करत थे। उनके पद मे उल्लेख आता है—

(i) इतनो है सब कुटुम हमारो।
सैन, धना अस नामा पीपा, कबीर रैदास चमारो।
रूप सनातन को सवग, मगल भट्ट सुढारो।
सूरदास परमानद मेहा, मीरा भगति विचारो॥ 11 (259)

(ii) मीरा बाई बिनु को भगतनि पिता जानि उर लावै।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु को सक वधु कहावै॥ (वही)

अर्थात विक्रमी 1612 अथवा उसके चार छह वष बाद तक मीरा की साधु सेवक के रूप म इतनी ख्याति हो चुकी थी कि परवर्ती साधु-सत उन्हें स्मरण करने

लगे थे। निश्चित रूप से वह ख्याति उन्होंने बचपन से अर्जित की थी और साधु-सतो को पितृवत मानकर उनसे ज्ञान ग्रहण करने की उनकी अटल वृत्ति थी।

(3) नाभादास इनका समय विक्रमी 1632 से 1680 तक मान्य है। ये कृष्ण भक्त थे और अनक भक्ता पर इन्होन भक्तमाल की रचना की थी। उसमे मीरा के बारे मे भी एक छप्पय है—9 (13-14)

सदश गापिका प्रेम प्रकट कविजुगहिं दिखायो।
निरकुस अति निडर रसिक जस रसना गायो॥
दुष्टनि दोप विचारि मृत्यु को उद्यम कीनो।
बार न बाको भयो, गरल अमरित ज्यू पीयो॥
भगति निसान बजाय कै, काहू तै नाहिन डरी (लजी)।
लोक लाज कुल शृखला, तजि मीरा गिरधर भजी। 33 (244 1)

इसमे व्यास जी की अपेक्षा एक लक्षण और व्यक्त होता है कि मीरा का व्यक्तित्व निडर और निरकुश था, भक्ति के पथ पर वह किसी से नहीं लजाई या डरी—यहाँ तक कि उसके लिए लोकलाज और कुल मरजादा भी छोडनी पडी तो उसने उसे छोडा। ऐसी जब सतो और भक्तो मे मीरा की ख्याति थी तो व्यवहारत घटनाए अनुश्रुत रही ही होगी। आज भी देखा जाता है कि जिन बडे लोगो की ख्याति, धम, साधु सत्सग, सदाव्रत, दान धम की ओर होती है उनके बारे मे वे लोग ही ज्यादा सवेदनशील और सावचेत होते हैं जिनका उन कामो से प्राप्ति सम्बध होता है। कहाँ भडारा हो रहा है, कौन दाता उदार है, कौन सकट मे है—इसका पता पडोसियो और समवर्गीय को नही होता मगर दूर दराज से आने वाले साधुओ, मगतो, याचको आदि को को विद्युत गति से उनकी खबर हो जाती है। सामाजिक सचार प्रणाली की इसी विशिष्टता ने मीरा की साधु सगति को, उसकी भक्ति भावना को उसके जीवन-काल मे ही व्यापक बना दिया हो तो आश्चय नही।

और ऐसे प्रचारक जनो को मीरा के जनम, विवाह, परिवार आदि से क्या लेना-देना हो सकता था? सिवा इसके कि वह साधु सतो का सम्मान करती थी। पोषण करती थी आदर देती थी और उनसे ज्ञान प्राप्त करती थी।

मगर, एक बात और ध्यान मे रखनी होगी। मीरा अवश्य ही साधु सगत करती होगी, साधारण राजपूत कुल बधुओ की तरह उनसे पर्दा और लज्जा भी नही करती होगी, उन्हे पिता समान मानती होगी मगर उनसे व्यवहार मे अवश्य ही उसका प्रखर व्यक्तित्व अपनी विशिष्टता कुलीन पाथक्य और अनमनीय गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखता रहा होगा। यदि वैसा न होता तो उस जमाने की मत मतातर की आपाधापी मे अवश्य ही कोई न-कोई सम्प्रदाय उसके नाम को पचा लेता, उस पर अपने सम्प्रदाय की छाप लगा देता। उन्मुक्त साधु सतो के सम्मेलन

के उपरान्त भी मीरा किसी सम्प्रदाय से नहीं बँधी, केवल कृष्ण प्रेम में रमी। यह उसके व्यक्तित्व के अटल निश्चय और अनन्य प्रेम का प्रमाण बनता है।

(4) दादूपंथी राघवदास—इनका समय विक्रमी 1653 1746 कहा जाता है और उनका मीरा-वरनन 'भक्त-माल' के समान है—11(265) यथा—लोक, वेद, कुल, जगत के सुख छोड़कर श्री हरि भजना, कलियुग में गोपी प्रेम की रीति प्रकट करना, सत समाजों में निडर रह कर कृष्ण भक्ति करना, राणा का कोप सहना, जहर का प्याला पीना, गिरधर को पति मानना, भक्ति की नौबत बजाकर भक्ति को प्रसिद्ध करना। इनके अलावा किसी कुटिल सत द्वारा मीरा के सामने कुत्सित प्रस्ताव करना और उसकी निडरता से भयभीत होना अकबर का मीरा के दर्शनार्थ आना, जीवगोस्वामी की गाथा, चित्तौड से द्वारिका जाना और वहीं लीलाधाम पाना—इतनी गाथाएँ नहीं हैं।

(5) दयाबाई—इनका रचना समय विक्रमी 1765 कहा जाता है। मीरा सम्बन्धी एक दोहे में इन्होंने केवल विष पान की गाथा का उल्लेख किया है। 36 (308)।

(6) प्रियादास—इनका समय विक्रमी 1760 1794 माना जाता है, यानी मीरा के लगभग 100 वर्ष बाद। ये भी वृन्दावन के वासी थे और गौडीय भक्त कहे जाते हैं। इनके चार दोहे मीरा की टीका के हैं 9(14) जिनके अनुसार मीरा को घुघरू बाँधकर नाचते, करतार लेकर बजाते और ससार को तिनके की तरह मानते बताया गया है। साथ ही ललिता नामक सखी के साथ वृन्दावन यात्रा की बात भी कही गई है। भक्ति के आवेश में नाचने गाने की यह कल्पना तन्मयता दर्शाने के लिए की गई हो तो विस्मय की बात नहीं होगी। हो सकता है, मीरा छाप के भजनों में ही तब तक नृत्य कीतन की बात जमा दी गई हो।

प्रियादास ने मीरा की कथा को पूरा सिलसिला देकर उसे "भक्ति का प्रकट रूप" सिद्ध कर दिया है। लगता है कि मीरा सम्बन्धी जितने मत, तथ्य, मिथक उस समय तक बन गए थे, उनका सम्पादन करके प्रियादास ने उन्हें एक ऐतिहासिक कथा का रूप दे दिया। तदनुसार—

(1) मीरा का मेडता में जन्म (2) बचपन से ही कृष्ण भक्ति का उन्माद (3) राणा के घर विवाह (4) कृष्ण का पति रूप में वरण—यह भी कि भावर के समय भी कृष्ण की मूर्ति और शालिग्राम बटिका उसके बटुए में थी (5) ससुराल जाते समय माता पिता से गिरधर की मूर्ति को दहेज में माँगना (6) ससुराल में गृह प्रवेश के समय गोरल पूजा से इनकार करना, फलत सास से विवाद (7) सास की शिकायत पर राणा/युवराज का मीरा को सेल मारने आना मगर नारी हत्या के भय से रुक जाना। नतीजन मीरा को एकान्तवास का दड देना (8)

तथापि मीरा का देवदशन को जाते रहना और साधु सतो को आमत्रित करते रहना (9) ऊन नामक नणद द्वारा राजवश की लज्जा रक्षा के प्रयास, मीरा को समझाना और वापस 'महलो पर' चढाने का प्रयत्न करना (10) असफल होने पर राणा द्वारा मीरा को विष का प्याला भेजना, साधु-सगत मे किसी कपटी साधु द्वारा मीरा के साथ कुत्सित आचरण, राणा, द्वारा मीरा पर गुप्तचर लगाना (11) मीरा का वृ दावन जाना, जीव गास्वामी का भ्रम मिटाना, चित्तौड वापस आना (12) राणा क दुव्यवहार से चित्तौड त्यागना और द्वारिका मे जाकर वास करना (13) चित्तौड पर आपत्तियाँ आना, उनको मीरा के प्रति अत्याचारो का परिणाम मानकर मीरा को वापस बुलाने के लिए ब्राह्मणो को द्वारिका भेजना (14) रणछोड जी के विरह से दुखी होकर मीरा की प्राथना (15) रणछोड जी की मूर्ति मे मीरा का समा जाना 7(15) इस प्रकार से प्रियादास ने मीरा की गाथाओ को एक सिलसिला दिया है जिनमे से कुछ तो ऐतिहासिक तथ्य हैं और कुछ युग-धारा, जिसने मीरा की भावनाओ को, भजनो का रूप देकर, उन्हे चरितार्थ करन की कोशिश की होगी।

चाहे जो हो, इन गाथाओं से मीरा के व्यक्तित्व की अटल अनड़ता व्यक्त होती है। वह इतना बताने मे सक्षम है कि उसने सब कुछ छोडा मगर लोक-सम्पक और लोक जीवन से अछूता रहना स्वीकार नही किया।

(7) नागरीदास—इनका मूल नाम सामतसिह था। यह जोधपुर के महाराजा उदयसिह के छोटे पुत्र कृष्णसिह की सतानो मे से थे और किशनगढ (अजमेर) के नरेश थे। वे उसी राठौर वश के थे जिसमे मीरा हुई थी। सामतसिह सरल स्वभाव के हरिभक्त थे। उनके छोटे भाई बहादुरसिह ने जब विक्रमी 1805 मे किशनगढ का राज्य जबदस्ती ले लिया तब सामतसिह सपरिवार दिल्ली गए—सहायता पाने को। सहायता न मिलने पर मथुरा चले गए और विरक्त होकर रहन लगे। राठौर वश का होने से और भक्त होने से उनके मीरा बयान मे प्रामाणिकता मानी जाती है। इनका समय विक्रमी 1756 स 1823 तक का था—यानी मीरा के 200 वष बाद। इनके मीरा वणन मे सती न होकर गिरधर गाना, सिगर पटारन भाता, निंदा स्तुति की परवाह न करना, कुल परिवार सब गिरधर को ही मानना—ऐसी बातें आई हैं 11 (265 66)। मीरा पर गुप्तचरी कराना, बिष भेजना, विधवा होने के बाद चित्तौड का त्याग, वृन्दावन जाना और वहाँ से द्वारिका वास करना और वहीं निर्वाण पाने की बात कही गई है। नागरीदास जी के विवरण से पता लगता है कि वृ दावन और द्वारिका मे भी मीरा अकेली नही थी। राज मर्यादा के अनुकूल उसके साथ पुरोहित आदि राणा के लोग भी थे। वहाँ रणछोड जी के मदिर मे—जो कि मेवाडी राणाओ ने ही बनवाया था—मीरा का वास था।

पारिस्थितिक समीकरण—मीरा के व्यक्तित्व को समझने बूझने के इतने ही आधार सभव हैं। ये सब मिलकर बताते हैं कि—

(1) राठौड वश की और जाधाणो की जो आनुवशिक टव थी, आन थी, दुदम अनमनीयता थी जो दूदा, वीरम दे, जयमल, दुर्गादास, जसवतसिह तक इतिहास म प्रमाणित है, वह मीरा का विरासत मे मिली थी।

(2) उसके साथ-साथ दूदाजी क नये राज्य की नई रीतिया के सस्कारो मे वह पली थी जिनम राज्य क निवासी प्रजावत नही थे, सहयोगी थे। राज-कुल और लोक-जीवन के बीच अतर के अवसर बने-बढे नही थे बल्कि अकाल, सुकाल पव उत्सवो मे दोनो सहभागी होते थे। मीरा को—कुछ तो इस कारण से कि वह कोई राजकुमारी नही थी, किसी सुस्थापित राज्य की मयादा उसे बचपन से बाधन वाली नही थी और कुछ इस कारण कि सदा युद्ध-रत और सघषरत दादा पिता के घर मे उसे लोक सम्पक की सुविधाए अधिक थी—लोक धरातल पर विकसित होने के अवसर मिले थे। अत उसका सस्कारी मन राज-कुलोचित मर्यादाओ, निषेधो से पृथक धरातल पर विकसित हुआ था।

(3) बचपन का वात्सल्य-अभाव और अपने को निराश्रित मानने का अव-चेतन भी उसके चिंतनशील, एकात प्रिय और गभीर होने का कारण था। वही उसे साधु-सगत मे सुख देने वाला और ज्ञान प्राप्त करन और उसीमे रमाए रखन वाला अभिकारक बना था।' परची (30) के लेखक ने उसके बचपन को बहुत सही आका है। साधु सगति और उनके पितृवत स्नेह में पगी पत्नी मीरा ने ससार की नश्वरता, असारता, सादगी की महत्ता और मन की उदारता जितनी सीखी, उतने लोक व्यवहार, कुल मर्यादा, राजपूती कन्याओ की लज्जा, परदा, बाहरी सम्पर्कों की शून्यता जसे तत्व नही सीखे।

(4) उसका मन सभार केवल अन्तमुखी चेतनाओ और स्वयकृत धारणाओ विश्वासो से ही निर्मित हुआ था। यदि मीरा का विवाह मेवाडी राजघराने म न होकर मारवाड मे ही किसी ठाकुर घराने मे होता तो सभवत वह अपने पति को भी अपने रग मे रग लेती, इतना उत्कट उसका भक्ति आवेग माना जा सकता है।

(5) मेवाड के राजघराने मे उसका विवाह चाहे राणा सागा के हित म रहा हो, दूदावशियो के लिए भी वह सबल के सहारे का साधन रहा हो, मगर मीरा के लिए वह दुघातक राजभोग ही रहा। अपनी विशिष्टता के साथ वह वहाँ समायोजित नही हो सकी। बडा विचित्र सयोग था कि मीरा अगर मीरा न होती तो वह राजनीतिक सम्बधो के यज्ञ की एक आहुति बनकर रह जाती। विचित्रता यह भी थी कि मेवाड के राजकुल मे उसने कष्ट पाए, अपमान पाया तथापि मेवाड और मेडता के बीच राजनीतिक सम्बधो म दरार नहीं पडी। सागा के बाद

उदयसिह के जमाने मे जयमल राठौर ने चित्तौड की रक्षा मे अपना अनोखा बलिदान दिया, उसके बाद भी मडतिए राठौर मेवाड मे जागीरें पाते रह और आज भी उनके वशज मेवाड मे बसे हुए हैं। (1) इसके पीछे मीरा के व्यक्तित्व का अनोखापन था या तत्कालीन राजनीति मे नारी के स्थान की नगण्यता की प्रथा थी, कुछ कह सकना कठिन है मगर, यह ऐतिहासिक तथ्य है कि विवाह के बाद मेवाड मे मीरा ने अपन को निषेधो, प्रतिबधो, वजनाओ और प्रताडनाओ से ही घिरा पाया।

(6) विवाह (वि० 1573) से लेकर विधवा होन तक (वि० 1579) मीरा को मेवाड के राजघरान के अनुरूप ढालने के प्रयास होते रहे। भाजराज क बारे मे कोई विगत नही मिलती किन्तु एक तो राणा सांगा की नीति कुशलता, दूसरे उनके अन्दर बाहर के प्रभाव के कारण मीरा को साधु सगत चलती रही होगी, पडित गजाधर स्थिति पर नियत्रण करते रहे होगे और भोजराज भी शायद, मेडता के महत्व को समझते हुए, मीरा के साथ उदारता बरतते रह होगे। मीरा का व्यक्तित्व तब भी राजसी प्रभाव से अछूता रहा और 'नित उठ दरसण जाने' और 'चरणामत का नम' निभाने की उसकी टेक चलती रही। साधु सत भी आत रहे और राज मर्यादा के भीतर मीरा उनके उपदेश सुनती रही। शायद सिगार-पटार मणि आभूषण उसने धारण किए ही नही।

(7) विधवा होने के बाद वि० 1579 से राणा सागा की हत्या वि० 1584 के समय तक मीरा का व्यक्तित्व दुधारी हो गया हागा। एक तो कवरपने मे भोजराज की मृत्यु का दोषारोपण उसी पर हुआ होगा, अन्त पुर मे वह नाना प्रकार से निन्दा का पात्र बनी होगी और उसकी भक्ति साधना पर भी व्यवधानी असर हुआ होगा। पाट पटम्बर, सुहाग, हार, माला, वस्त्र आदि त्याग कर कठीमाला, दोवडी धारण करने, भूमि पर शयन करने, रूखा सूखा खान और महलो मे भी वैरागन होने का समय यही था। उसका भक्त हृदय साधु सगति और भजन मे रमना चाहता था और राजमर्यादा उसे दूसरी तरह से रहने को बाध्य करती थी। इस कश्मकश मे उसन 'अपन को जीवित रखा और मर्यादा को तिलाजलि दे दी। अतत 'काहू की बरजी अब ना रहौं' वाली स्थिति मे वह आ ही गई। यही उसके व्यक्तित्व की परिवेश पर विजय थी और यही से उसके लोक व्यापी होने की घडी आरभ हुई थी।

(8) निश्चित रूप स विक्रमी 1584 स लकर 1588 तक का चार साल का समय मीरा क एक त का, उपे ा का वजनाओ का और निषेधा का समय रहा हागा। बचपन की एकान्तिकता के, निराश्रयता की भावना के पनपने और सकल्प को नई दिशा देने का समय यही था। मेडता पुष्कर-डाकोर तीर्थयात्रा के निमित्त जाने आन का कम क्रम इस अवधि मे बना हागा जसी कि वैधव्य के बाद रीति

हुआ करती थी। मेवाड की राजनीति मे भी कुचक्र, बाहरी भेदियो का आवागमन, बाहरी आक्रमण की तैयारियो और रानी करमैती के कुटिल चक्रो का दौरदौरा चल पडा था। यही समय रहा होगा जब अन्त पुर मे जोधाणी जोधकवर का प्रभाव कम पडा होगा और बूंदी की करमैती का जोर बढा होगा (1) सागा के बाद राणा रत्नसिह के राज क ये 4 वप (वि० स० 1584 1588) मीरा के लिए राणा के कोप के कम और अन्त पुर के बधनों के वर्ष अधिक रहे, जबकि उसे सास नणद की कुटिलता, राड और भक्तिहीनता की बातें कहनी पडी होगी। इसी समय मे उसकी अन्तर्मुखता बढी होगी और बाहरी दुनियाँ उसके लिए अथहीन हो गई होगी। हमे मान लेना चाहिए कि राणा सागा की मृत्यु के बाद मीरा ने अपने को पूणत निराश्रित और अकेला अनुभव किया होगा। 'भव सागर मे बही जात हौं' जैसी अभिव्यक्ति मे निराश्रितता फूट पडी है।

(9) और वह निराश्रितता वह घुटन चरम सीमा पर विक्रमी स० 1988 मे पहुँची जब रानी करमैती के आंतरिक कुचक्रो ने अपना रग दिखाया—राणा रत्नसिह की हत्या हुई और रणथभौर से करमैती के बेटे विक्रमाजीत को लाकर चित्तौड की गद्दी पर बिठाया गया। उसके बारे मे किसी का मत अच्छा नही था। स्वय बूदी के कवि सूयमल्ल ने—लगभग 250 वप बाद भी—उसके बारे मे लिखा—

विमात बधू उत रानवारो, नरेस श्री विक्रम नीति न्यारो।
बनें न जासो महिपाल बत्त, घनो नसादेह प्रमाद घत्तै।
भाणेज श्री अजुन को अथागी, रहै सदा मत्त अफीम रागी।
सुरान हूवै ऊंघन को सराहै, चित्तौड को राज न जाहि चाहै॥
25(2190)

विक्रमाजीत का सिफ 9 10 महीने का शासन ही मीरा ने भोगा होगा जिसमे अन्त पुर की उसकी सब गतिविधियाँ वर्जित और निषिद्ध हुई होगी, राजनीतिक कुचक्रो और बाहरी उपद्रवों के भय से साधु सतो, जोगी जतियो और बाहरी लोगो के आवागमन पर कठोर नियत्रण लगे होगे और अन्त पुर मे राज वधुओ की गतिविधियाँ भी निषिद्ध की गई होंगी। कुचक्रो के दौर मे मीरा से मुक्ति पाने के यत्न भी हुए हो तो आश्चय नहीं। इस समय मे ही मीरा के अह, उसकी अन्तर्मुखी भक्ति उसकी चेतन-अवचेतन सत्ता को इतना धक्का पहुँचा कि वे जो म्हारा बाबा सा न बेगा देवा आवै।' सासरिये म दुख घणारी, सासू-नणद मतावै। वाली बातें कहनी पडी होंगी। ऐतिहासिक तथ्य है कि विक्रमी 1590 के आरम्भ मे बीरम द मीरा को चित्तौड से मेडता ल गए थ। और यही समय था जब मीरा के व्याकुल मन न निणय कर लिया था—

गढ चित्तौडे ना रहा, नहिं रहण को जोग ।
बसस्यां रूडी द्वारिका, जहँ हरि भगता रा भोग ।।

(10) तो, मीरा का मेवाड की जेठी बहू बनना, उसके व्यक्तित्व के विपरीत असगत और असमायोज्य पटाक्षेप रहा । इन सघषमयी घटनाओ के बीच वह अनन्य रूप से सहनशील, साहसी, धैयवान और आत्मनिष्ठ बनकर उभरी । 17 (32) उसकी अपार सहनशीलता, अगाध विश्वास और अटूट निष्ठा तो उभर कर आई होगी जब विक्रमी 1591 मे मेडता बिखरा, राव वीरम दे को अजमेर, शेखावाटी, दिल्ली तक दर बदर होकर भटकना पडा और इस बीच मीरा को रणछोण की शरण मे जाना पडा । उस भयकर निराश्रयता मे—जिसका ससुराल भी मिट गया और जिसका पीहर भी अनाश्रित हो गया—मीरा की व्यथा शायद इस तरह फूटी होगी—

विध विधणा रा न्यारा ।
दीरघ नैंक मिरध कू दीवा, बण बण फिरता मारा ।।
उजलो बरण बागला पावा, कोयल बडणा काला ।
नद्यां नदयां निरमलधारा, समद करया जल खारा ।
मूरख जण सघासण राजा, पन्नत फिरता द्वारां ।
मीरा कै प्रभु गिरधर नागर, राणां भगत सँघारा ।।

(11) और, यह व्यथा अन्तत द्वारिका मे रणछाड की शरण मे जाकर ही मिली होगी—

म्हारे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोया ।
दूसरा जी कोयो साधो, सकल लोक जोया ।
भाया छोड्या बधा छोड्या, छोड्या सगा सूया ।
भगति देख राजी हुवया, जगति देख रोया ।।

तथा उसके युग-युग के भक्ति पिपासु व्यक्तित्व मे निखार तभी से आना शुरू हुआ होगा जब सब बन्धन काटकर उसने अनुभव किया होगा कि—

द्वारिका को वास हो मोहिं द्वारिका को वास ।
सख चक्र पदम हू ते, मिटै जग को त्रास ।
सकल तीरथ गोमती मे करत हैं नितवास ।
सख झालरि झाझ बाजै, सदा सुख की रास ।
तजियो देस, बेस, पति गह तज्यो सम्पत्ति राजि ।
दासी मीरा सरन आई, तुम्हैं अब सब लाजि ।।

और, वह लोक व्यापी हो गई, युग-जीवी हो गई, जीवन काल मे ही उसने ख्याति कमा ली थी और शायद अपने ससुराल वालो के दुर्भाग्य पर खेद भी प्रकट किया था कि—

राठौडां री धीयडी जी, सीसोद्या रै साथ।
लै जाती बैकुठ कू, राणा जी न मानी बात॥

उसकी भक्ति के बहुमुखी आयाम द्वारिका वास के समय में—विक्रमी स० 1592 से 1603 तक—मुखरित हुए होंगे।

5 मीरा-काव्य लोकतात्त्विक अध्ययन

समाजशास्त्री 'लोक' का अर्थ उस 'जन' से लगाते हैं जो अपनी परम्पराओ, प्रथाओ और विश्वासा की सत्ता मे जीवित रहता है। 37(3) मनुष्य के व्यक्तित्व और व्यक्ति तत्त्व की भाँति हर समाज का अपना मुखरित और आधारिक लोक तत्त्व भी होता है। हर वस्तुनिष्ठ सत्ता की भूमिका म आत्मनिष्ठता के ऐसे तत्व मौजूद होते हैं जिन्हें प्रयत्न करके समझना पडता है। लोक और लोकमानस दीर्घकालीन परम्पराओ जातीय विशेषताओ, आदिम सस्कारो और अर्जित सदाचारो का सगृहीत सभार होता है। वह लोकतत्वो से बनता है।

लोकतत्त्व दरअसल समाज की चेतन अवस्था के मूल मे स्थित वे गुण-सूत्र हैं जो चेतन धरातल को, आचरण, व्यवहार को सजीवक रस प्रदान करते रहते हैं। सामाजिक जीवन का हर ज्ञान उसकी हर चेतना, उसकी हर पल की आचार-सहिता, उसकी प्रयोजनवती भाषा, उसकी उक्ति सम्पदा जो चलते को रोक दे, बैठे को उछाल दे, पानी मे आग लगा दे—वह हर बात पोथियो मे नही होती, वह समाज के लोकतत्वो मे होती है और परम्परा, रीति, आचरण, व्यवहार, मान्यता आदि के जरिये से समाज को अनुप्राणित, सचालित और क्रियमाण रखती है। लोकतत्व समाज के हजारों वर्षों के अवचेतन लोकमानस का सकलित सभार होता है जिसमे कौन सा तत्व किस युग का, किस प्रसग का, किस सस्कृति का है, इसे पहचानना कठिन होता है।

किसी समाज म हजारो हजार रीतियाँ होती हैं, जीवन के हर कदम पर प्रथाएँ होती हैं, मान्यताएँ होती हैं, विश्वास होत हैं, धारणाएँ होती हैं, परम्पराएँ होती हैं, जो कभी पर्वों म, उत्सवो म, सस्कारा म साहित्य मे शिल्प म, चित्रकला मे, सगीत नृत्य गीत, कथा कहानी सब मे अनुस्यूत होती हैं। 38(23) लोकाभिव्यक्ति उनस बनती है। हर समय, समाज की हर भौतिक सत्ता, उसकी उपलब्धियाँ और उसका चतन जगत इस लोकतात्विक सभार से आदान प्रदान करता रहता है और इस प्रक्रिया से लोकतत्वो का सभार भी उसी तरह से बनता—विकसता रहता है, जैसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बढता विकसता रहता है। अन्तर

इतना ही होता है कि व्यक्ति की सत्ता सीमित होती है और समाज के लोक-तत्वो की कोई इयत्ता नही होती।

लोकतत्वो के अध्येताओ ने मानव के सगठित मन के तीन स्तर निर्धारित किए हैं—37(36) लोक मानस, जनमानस और मुनि मानस। जनमानस तो दैनिक व्यवसाय बुद्धि के नियन्त्रण और सचालन से सम्बन्ध रखता है। वह चेतन स्तर होता है। इस स्तर के अनुकूल जो लोग आचरण और व्यवहार करते हैं, उनसे जनमानस को कोई शिकायत नहीं रहती। लोकमानस लोकतत्वो को जन्म देता है, साधारणीकरण का धरातल बनाता है और काव्य, भक्ति, वार्ता, कथा आदि का जन्म इस धरातल से होता है। मुनि मानस विशिष्ट क्षेत्र मे ज्ञान विज्ञान के सम्बन्धो का निर्माण करता है। ज्ञान विज्ञान, साहित्य, शास्त्र आदि इस मानस के उत्पादन और परिणाम होते हैं। मुनिमानस और लोकमानस मे घात-प्रतिघात और आदान प्रदान होता रहता है जबकि जन मानस आवश्यकतानुसार दोनो का व्यावसायिक उपयोग कर लेता है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार भारतीय साहित्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लोकसाहित्य पर आधारित था। न जाने कितनी बार वह उपरले स्तर के ग्रन्थो से प्रभावित हुआ है और कितनी बार उसने उन्हे प्रभावित किया है। वस्तुत लोकतत्वो की व्याप्ति इतनी अधिक है कि साहित्य उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता क्योकि साहित्य-कार स्वय उस भूमि की उपज है जिसके विभिन्न भाव एव विचार पक्षो को लोक-तत्वो के नाम से पुकारा जाता है। 23(189)

मीरा अपने युग और मेडतिया समाज की उपज थी (अध्याय 1-7)। वह भी ऐसी उपज जो आगे जाकर समवर्गी समाज म खप नही सकी बल्कि लोकान्तर व्यापी हो गई। मेडतिया समाज के लोक तत्वो (अध्याय—2) ने उसके व्यक्तित्व को सवारा था और उसकी अपनी व्यक्ति सत्ता ने इतनी अन्तर्मुखता कमाई थी कि वह जीवन भर जनमानस के के धरातल पर नही आ पाई। वह एक पुनीत भक्त आत्मा तो थी ही, एक अनन्य लोकनिधि भी थी। उसके पदो मे—जिन्हें अब तक अनुसधानकर्ताओं ने तररचित माना है और जिनमे प्रक्षेपो की कमी बताई है—(39) उसके युग और समाज के लोकतत्वो की अभिव्यक्ति जिस तरह से हुई है उसे हम निम्नलिखित शीर्षको म वर्गीकृत करके अनुशीलन के योग्य बना सकते हैं —

1 धार्मिक तत्व (1) स्वरूप (i) निर्गुण तथा नाथ तत्व
(ii) सगुण तत्व
(iii) सगुण निर्गुण मे अभेद
(2) साधना (i) निर्गुण मत आधारित
(ii) सगुण मत आधारित

(iii) सगुण निगुण मे अभेद

(3) ईश्वरीय अनुभूति के तत्व (i) दरसन—परसन

(ii) प्रतीक्षा और विरह

(iii) विनय और दासता

(iv) टेक और हठीलापन

(v) पूरब जनम को कौल

2 सामाजिक तत्त्व

(i) पव उत्सव आदि के हवालो मे

(ii) कीनन, भजन, साधना के आयोजनो मे

(iii) साधु सगति की टेक मे

(iv) खान-पान, वेशभूषा, आभूषण आदि के प्रासगिक उल्लेखो मे

(v) सुहाग दुहाग की सांस्कृतिक चेतना के रूप मे

(vi) राज-रीतियो के प्रासगिक हवालो मे

(vii) लोक रीतियो और प्रथाओ के वक्रता विधानो मे

(viii) रूढोक्तियो के प्रयोग मे

3 लोक सस्कृति के तत्व

(i) शकुन

(ii) स्वप्न

(iii) सदाचार धारणा

(iv) कमवाद

(v) भाग्यवाद

(vi) नेम धरम

(vii) जतर मतर आदि

(viii) प्रकृति

(ix) सयुक्त परिवार चेतना

4 शैली-तत्त्व

(i) शब्द सम्पदा

(ii) उक्ति सम्पदा

1 धार्मिक तत्व

(1) स्वरूप (i) निगुण भक्ति तत्व—उपनिषद काल का ब्रह्मवाद निगुण ज्ञान भक्ति मे विकसित होते-होते बौद्ध वज्रयान, हीनयान और सिद्धियो से छनता-छनता विक्रमी 10वी-11वीं सदी मे एक ओर ज्ञानमार्गी कबीर आदि की भक्ति मे विकसित हुआ और दूसरी ओर सूफी प्रमभक्ति स मिलकर वैष्णव सगुण भक्ति

से सम्मिश्रित हुआ। 11(187) सिद्धो की परम्परा मे ही गोरखनाथ का नाथ मत योग और साधना का आधार बनकर प्रचलित हुआ 9 (105)। मीरा के समय तक निगुण भक्ति का स्वरूप इतना लोकायत हो गया था कि कही वह नाथ सम्प्रदायो मे सिद्धि, चमत्कार, हठयोग, शैव पूजा, शक्ति साधना, शक्ति पीठ, पीर भावना आदि मे फैल गया था और कही ब्रह्म क अलक्ष्य अरूप, सर्वव्यापी दार्शनिक धारणाओ के रूप मे जम गया था। कही वह प्रेमवाद से मिलकर जन्म जन्मान्तर की विरह वदना, कष्ट साधना और कातर पुकार के रूप म स्थापित हो गया था। इस बिखराव मे लोकमानस ने सबसे कोई-न कोई तत्व ग्रहण किए।

लोकमानस कभी प्रेम शून्य नही होता। उसका अवचेतन ज्ञान और योग-वैराग्य को भी लौकिक भावनाओ से जोड लेता है। कबीर जसे निगुण सत क काव्य मे भी मीरा वाला लोकतात्विक धरातल मिलता है 'हरि मेरा पिउ मैं राम की बहुरिया पुरुष एक अविनासी द्वारा अपने को ब्याहने की बात', 'साई कै सग सासुर आई। सग, न सूती स्वाद न माना, गा जीवन अपने की नाइ' हौं बलि बर देखोगी सोहि से होते होते, विरह अगनि तन अधिक जरावै 'बहुत दिनन के बिछुरे माधा मनमहि बधै धीर 40(88)' मे यानी आत्मा को ब्रह्म का अश मानकर उस चिर विराहिणी मानना और पूर्ण होने की ललक मे तडपना—यह लोकतत्व उसी तरह का हुआ जैसे विराहिणी पत्नी पति के लिए ललकती है। इसी तरह की लोकतात्विक परम्परा धमदास (विक्रमी 15 15) म भी मिलती है—मितऊ मडया सूनी कर गइ ला।

अपना बलम परदेस निकर गैलो हमरा क बिछवो न गुन द गैलो।
जागिन होइ कै मैं बन बन ढूढौं हमरा कै विरह बिराग दै गैलो॥
40(83)

निगुण उपासना चाहे दार्शनिक धरातल मे शुरू हुई थी, सैकडो वर्षों के लोक सम्पर्क न उसका साधारणीकरण इस स्तर तक कर दिया था कि उसम ब्रह्म का स्वरूप तो निरजन अलख अनाम विराट, अजन्मा अनेम अमूत घट घट व्यापी, अनन्त, अविनासी अनादि बना रहा किन्तु वह साधक आत्मा का अप्राप्त लक्ष्य भी बन गया, उसका एसा स्वामी बन गया जिसके लिए साधिकाएँ (आत्मा) तो साधों हैं मगर साधिका के लिए वह एक है— हमसें तुमकूं साध हैं तुमम हमका एक।" या तुमम हमकूं एक है हमसी साध करारि। सतू और मीरा म यही साध धरातल समान रूप म है। लोकमानस तक आने के लिए वह ब्रह्म साधक आत्मा का चिर विरहिणी पति बन गया उसम साथ विरह और वैराग की भावनाए जुड गई महत बन गए, वो। भरी गजें बन गई। इसी से समाधिस्थ

बन गई और उत्कट आवेग लौकिक बनकर जुड गए। कबीर के यहा वह लोकतत्त्व—

हरि मोर पिउ मैं राम की बहुरिया।
राम बडो मैं तन की लहुरिया॥ 41(18)

बना, सत दरिभाव के पास—

सोइ सोहागिनी प्रेम रस, करे पियासे नेह।
सोहागिनी पिया हुकुम जो गावै।
जिस दिन सेवा खसुम को लावै॥—

बनकर व्यक्त हुआ। कबीर मीरा की तरह मगलाचार भी गाते हैं—

दुलहिनी गावहु मगलचार।
हम घरि आए राजा राम भरतार।
तन रत करि मैं मनरत करिहौं, पांचउ तत बराती,
रामदेव मेरे पाहुने आए, मैं जोबन मैं माती। 41 (5)

कबीर की चुनरी भी नेह-बस भीगती है—

भीजै चुनरिया प्रेम रस बूदन, आरती सज कै चली है सुहागन।
प्रिय अपन को ढूढन॥

धरनीदास, दादूदयाल, बुल्ला साहब धरमदास—ऐसे निगु निया सतो मे हम आत्मा परमात्मा के दाम्पत्य भावी लोकतत्वो के सबूत मिलते हैं—42(48)

भई कत दरस की बिनु बावरी।
मोत न व्यापे पीर प्रीतम की मूरख जानै आवरी॥ (धरनीदास)

आव पिया तू सेज हमारी।
निस दिन देखौं बाट तिहारी॥ (दाद)

पिया बिनु मोहि नीद न आवै।
खन गरजै खन बिजुरी चमकै, ऊपर से मोहि आकि दिखावै॥
(धरमदास)

मोर मनुवा मनावै, धावै पिया नहि आवे हो।
सास मोरी दारुनी, ससुर मोरा भोला हो॥ (सत रज्जब)
प्रीतम अपनो परम सनेही, नैन निरखिन अघानी॥ (दादू)

नानक भी मीरा के युग के थे। वे कहत हैं—

पीर घटि सो है नारि जे, पिर भावए जिउ।
झूठे वैण चवै कामि न आवए जिउ॥ 42(31)

सा सोहागिनी अकि समावँ ।
गुरु गहेली गहलु न पाव ।।
फिरु पछतावँ जब रूणि विहावँ ।
करमहीणि मनमुखि दुखु पावँ ।। 42(92)

सत रैदास भी—जिन्हें कि मीरा ने गुरु माना है—इस लोकतत्व का उपयोग कर चुके हैं—

पिया बिन सजेइ क्यो सुख सोऊँ ।
विरह विथा तन खाई ।। 42(93)

और गुरु अजुनदेव, गुरु अमरदास में भी वही परम्परा अवतरित होती चली गई है। बल्कि पत्नी भाव के इस तत्व का निभाव बरात, पीठी, सास, ननद, ससुर, जेठ, देवर, आदि के नाते रिश्तो का सामाजिक धारणाओं के साथ भी हुआ है— 42(96)

खेलत रहलू अँगनवा, सखी सग साथी हो ।
आइ गवन निगिचाव, बदन भयो धुनिल हो ।।
पहिलें गवनवाँ ऐलू, पनियाँ के भेजलन हो ।
देखि कुवाँ के रूप, मनें पछितैलू हो ।।
कुँवाँ भीर भई भारी, तो गागर फूटल हो ।
कौन उतर घर देव, हाथ दोउ छूछे हो ।।
घर मोरी सास दारुनी, तो ननद हठीली हो ।
कैहि से कहन दुख आपन, सगी न साथी हो ।।
ठाढि मोहारे धरि सुलुकैं, मनें पछिताइल हो ।
पिया मोसो मुखहूँ न बोले, कवन गुन लागल हो ।। (धरमदास)

और निर्गुनिया भक्ति की यह लोक परम्परा अवश्य ही साधु-सगति से मीरा तक अवतरित हुई होगी। वह भी "गिरधर के रग राती' 33 (20) "परदेसी प्रीतम को पाती लिख भेजने", 'पचरग चोला पहनकर झिरमिट खेलने जाना", "तन खोलकर पिय से मिलना", "सुरत निरत का दीप निरतर जलाए रखना" जैसी बातें कहती है। वह 'अपने पिया' को ही अपनी परम गति मानती है, "बिराना छल लाख का हो तो भी अपने काम का नही" ऐसी निष्ठा जगाती है और "वर हीणो अपणो भलो हे, कोढ़ी कुष्टी कोइ"—तक के धरातल तक एकनिष्ठता व्यक्त करती है 33(25)। वह 'स्वप्न मे अपन गोविंद से अपन व्याह" का अनुभव करती है। उसमे हल्दी-पीठी, सुधा से तन भीगने, छप्पन कोटि जीवों की बरात, तोरण और अचल सुहाग की अनुभूति करती है 33 (27)। वह सुख में इतनी मगन" है कि सब "लाज-सरम, कुल [illegible]

चुकी" है, "ऊची अटरियाँ पै सेज बिछी" है और वह उस 'पचरगी झालर वाले, कलियो और फूलो से सजी सेज" पर 'बाजूबद, कडूले पहने" "माग मे सिदूर भरे" "सुषुम्ना सेज" पर प्रतीक्षा कर रही है 33 (32)। वह 'अपने सांवलिया के रग मे" इतनी 'रच' गई है कि अपने भीतर ताल, पखावज, मदग की सुर लहरी सुनती रहती है और "नत्य मग्न" रहती है कि लोग उसे "मदमाती और बावली" समझने लगत हैं 33 (40)। उसे अपने 'पिय के बिना घडी भर भी सुहाता नही", "भोजनिया नही भाता" और 'नीदलडी नही आती' 33 (41)। रैदास की चेतना की तरह मीरा 'विरहिणी भी पिवकी बाट जोहती" है और प्राथना करती है कि "नेरी राखिल्यो" यानी अपने पास रख लो 33(65)। कबीर की तरह मीरा को भी "रमैया बिन रह्योइ न जाइ", "मोहि खान पान फीको सो लागै", "नैणा मुरझाइ रहे" और "हरि मिलिया बिनु तन तरस-तरस जाइ" का अनुभव सताता है। 33(71) उस "दरद दीवानी का दरद न जाणै कोइ", "उसकी सज सूली पर है जहा सावण किणविध होइ" और "पिया की सेज गगन मडल मे है" सो "किण विध मिलना होइ" का सकट है। अत 'दरद की मारी" वह 'बन-बन डोलती है" उसे कोई "बैद" नही मिला। वह पीर तो तभी मिटेगी जब "बैद सांवलिया होय" 33(72) उसे अपने "रमैया बिन नीद न आवै", "विरह सतावै", "पिय बिन सेज अलूनी" रह जावै और "रैण जागत बिहावै'। 33(76) मीरा 'विरहिणी जागती बैठी रहती है" जबकि 'सारा ससार सुख की नीद सोता है', सदा ही 'उसकी नीद नसानी हो" और "पिय का पथ निहारत सिगरी रैण बिहाणी हो" 33(87)। 'अपने पिय की रट" उसे 'रात दिन लगी रहती है' और "दूसरी सब सुध बुध" वह खो चुकी है 33(91)।

निगु निया मत को लोक-मानस तक पहुँचने के लिए लौकिक प्रतीको का विधान करना पडा और पति पत्नी भाव हजारो-लाखो वर्षों का ऐसा प्रतीक विधान रहा जो सावदेशिक और सावकालिक बन सकता था। उसके साथ सजोग, वियोग, अलकरण, प्रतीक्षा, आनन्द, उत्साह, सृजन, परिवार, देश, काल की मर्यादा सबकुछ जुड सकने लायक स्थिति थी। यही कारण है कि ऐसा प्रतीक विधान दशन और मतमतातरो की मर्यादा तोडकर क्या निगु निया और क्या सगुनिया, क्या देशी और क्या ईरानी—सभी भक्ति मार्गों मे दिखाई देता है। उसके भीतर की तात्विक सत्ता ही प्रमुख रूप से उसके सवव्यापी होन का कारण हो सकती है तभी हम निगु निया सतो और मीरा के बीच लौकिक प्रतीको के माध्यम से—निर्गुनिया कहिए या सगुनिया—आत्मा की खोज सम्बन्धी समान अभिव्यक्ति भी पाते हैं, यथा—

कबीर ऊँची गेल राह रपटीली पाँव नहिं ठहराय।
लोक लाज कुल की मरजादा, देखत मन सकुचाय॥

नैहर वास बसो पीहर म, लाज तजि नहिं जाय।
अधर भूमि पुरुष भय भोला, सुरत झकोरा खाय॥
(—कबीर)

मीरा ऊँची नीची राह रपटीली, पाँव नहिं ठहराइ।
सोच सोच पग धरूँ जतन से बार बार डिग जाइ॥
ऊँचा नीचा महल पिया का, हमसे चढया न जाइ।
पिया दूर पथ झीणोम्हारो, सुरत झकोल खाइ॥ 2(230)

कबीर जोगिया बिन रह्यो न जाय।
हौं हिरनी पिव पारधी हो, मारे सबद के बान॥
जाहि लगि सोई जानहि हो, और दरद न जान।
मैं प्यासी हौं पीव की हो, रटत रटत पिव पीव॥
पिया मिले तो जीव हैं ना तो सहजै त्यागैं जीव॥
पिय कारण पियरी भई हो लोग कहैं तन रोग।
छह छह लाँघणा मैं किया, पिया मिलण के जोग॥

मीरा घायल ज्यू घूमू सदारी, म्हारी विधान बूझै कोइ।
काढि कलेजो मैं धरूँरे कागा तू लै जाई।
ज्यादेसा म्हारो पिव बसै, वै देखैं तू खाइ॥

यह कागा कलेजे वाला प्रतीक विधान राजस्थानी लोककाव्य का प्रसिद्ध विधान है जिसका उपयोग ढोला मरवण और कई लोकगीतो मे मिल जाता है।

पानाँ ज्यू पीली पडी रे लोग कहैं पिंड रोग।
छाने लागण मैं कियारी राम मिलण के जोग॥

—कबीर की व्यजना से यहाँ शैलीगत और देशकाल गत अतर ही नजर आता है।

निर्गुनिया अद्वैत सम्बन्धो की लोकतात्त्विक अभिव्यक्ति मे रैदास और मीरा मे तुल्यभाव मिल जाता है, यथा—

मीरा जो तुम तोडो पिया, मैं नहिं तोडू रे।
तोरी प्रीत तोडी कृष्ण, कौन सग जोडू रे॥
तुम भये तरवर, मैं भई पखिया।
तुम भये सरवर, मैं भई मछिया॥
तुम भये गिरधर, मैं भई चोरा।
तुम भये चँदा सामी, मैं भई चकोरा॥
तुम भये मोती प्रभुजी मैं भई धागा।
तुम भये सोना तो हम भई सुहागा॥ 9(232)

रैदास अब कैसे छूटै, राम रट लागी।
प्रभुजी तुम चन्दन, हम पानी।
जाकी अग-अग बात समानी।
प्रभुजी तुम धन हम बन मोरा।
जैसे चितवत चन्द-चकोरा।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती।
जाकी जोत बरै दिन राती।
प्रभुजी तुम मोती, हम धागा।
जैसे सोन हिं मिलता सुहागा॥ 9(232)

—इस तरह के नाते रिश्तो के अभिप्राय भक्तों तक ही सीमित नहीं थे। आधुनिक हिन्दी छायावादी कविताओ मे भी उनके उपयोग हुए हैं।

हमे यह मानना चाहिए कि मीरा के समय तक मारवाड क्षेत्र में निर्गुणिया सतो, लोक-देवताओ और नाथपथियो का जो व्यापक प्रभाव था (अध्याय-3/37-38) उससे मीरा अछूती नही थी, रह भी नहीं सकती थी क्योंकि राव दूदा भक्त थे और साधु-सतो के जमघट उनके यहाँ बने ही रहते थे और [illegible] उनके बीच मुक्त भाव से खेलती गुनती रहती थी। इन साधु-सन्तों के सम्पर्क से सतो की बानी, उनकी शैली और उनकी बातो के अर्थ मीरा ने ग्रहण किए ही हों तो, वह स्वाभाविक था।

हो सकता है निर्गुणिया बानी और भजन-कीर्तन के [illegible] की भाव सामग्री मीरा को प्राप्त हुई हो। और वह [illegible] लोक-तत्वो से रचपचकर अपने ढग से व्यक्त हुई हो। [illegible] जिनमे प्रामाणिकता और मीरापन की कमी [illegible] कृत प्रमाणित पदों मे भी निर्गुणिया लोक-तत्व [illegible]—यथा—

माई मेरा पिया बिन [illegible]।
राग रग सिणगार न भावै, सूनि रैन दिन के दैन॥
सावण आया भादि [illegible]।
सेज अलूणी भवन [illegible]॥
आव सलूणे [illegible]।
मीरा के प्रभु [illegible]॥ 9(2[illegible]

—यहाँ हम [illegible] पत्नी के लिए [illegible] जाना हजारों दर्दों [illegible] जलाना, [illegible]

रूखा सूखा खा लेना—ये सब सामाजिक-सांस्कृतिक परिपाटियां आज भी जीवित हैं। "अलूणी सेज," "ढुलि रह सिर केस' —मे उन्ही की छाप है।

उसी प्रकार—

रमैया बिन मो सू रह्योइ न जाइ।
खान-पान मोहि फीको लागे, नैणा रहै मुरझाई ॥ 9 (407 9)

और,

ओलू थारी आवै हो महाराज अविनासी।
बिरह वियोगिन बन-बन डोलू करवत लूगी कासी 9(409 13)

—यहाँ 'बन बन डोलू" म नाथपथी गोपीचद भरथरी की लोक कथाओ के तत्वो की छाप है। उनमे बार बार जन्म लेने और किसी अथ को—समाधान को —खोजने के अभिप्राय मिलत हैं। 'कासी करवत लना" और "दुष्ट से जा मिलने' की लोक भावना एक विश्वास के रूप मे 19वी सदी तक भी विद्यमान थी और यह लोकतत्व जैसा निगुनियो और नाथपथियो मे था वैसा ही वष्णव सगुनिया भक्तो मे भी था।

वैस ही लोकतत्व इस पद मे मिलता है—
जोगिया जा छाइ रह्या परदेस।
या तन ऊपर भसम रमाऊँ और करूँ सिर केस॥
भगवा वेस धरूँ तुम कारण, ढूढत च्यारूँ देस॥
मीरा के प्रभु राम मिलण कू, जीवनि जनम अनेस॥ 9(421-62)
और
तेरे कारण बन-बन डोलू, कर जागण को भेस॥ 9(421 64)

निर्गुनिया पथ के अविनाशी, अनादि, अनन्त, अलख्य, ज्योतिष्मान स्वरूप का दिग्दशन भी लोकतात्विक धरातल पर मीरा मे मिल जाता है—

तेरो मरम नही पायो रे जोगी।
आसन माडि गुफा मैं बैठयो, ध्यान हरि को लगायो॥
गल बिच सेली, हाथ हजारियो, अग भभूत रमायो।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, भाग लिख्यो सोइ पायो॥ 9(423 67)

यहाँ 'गुफा" साकतिक प्रतीक है "सहस्रार चक्र" का 42(171)
और इसका प्रयोग कई सतो ने किया है—

गगन गुफा मे बठि के देखे जगमग जोति (मलूकदास)
गगन गुफा मे पैठि अधर आसन बठि (यारी साहब)

नैनन बनज बसाऊँ री, जो मैं साहिब पाऊँ।
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न लाऊँ री॥
त्रिकुटी महल मे बना है झरोखा, तहा से झाँकी लगाऊ री।
सुन महल मे सुरत जमाऊ सुख की सेज बिछाऊँ री॥
मीरा क प्रभु प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ री॥
9(425 81)

ये त्रिकुटी महल, झरोखा, झाँकी लगाना, सुन महल, सुख की सेज जैसे प्रतीक बहु प्रचलित रहे हैं और साधु सतो के माध्यम से लोक धरातल पर उतरे हैं। ब्रह्म के निर्गुनिया स्वरूप की धारणा भी लोकव्यापी थी। मीरा ने भी जैसे

पूरण ब्रह्म अखड अविनासी, तुम बिन बिरह सतावै जी। 9(325 7)

सम्बोधन निर्गुण ब्रह्म के लिए किए हैं जैसे सत कवियो ने जोगिया, रमैया, दयाल, राम, हरि, काहा, गाविन्द, साहब, गोपाल, अविनासी, अविगत, सतगुरु, निरजन पुरुष, कत, खसम, सैया, पिया, भरतार, सबद, ओंकार आदि किये हैं 42 (112 14) मीरा ने स्थानिक प्रभाव से महाराज, पावणा, ब्रजराज हरि के प्रयोग भी किए हैं—

आज रँगीली रण प्रीतम पावणा हो राज। 11(78-13)
तन सणगारु सेज सवारु, अजन सास, घनवारु।
स्याम सुदर तन धारू, लेसू भावना माराज॥ 11(78 13)
आजि म्हारै पावणिमा बैरागी जी। 11(79-17)
कदि रे मिलेगी आई रमैयो महान कदि मिलैगो आई। 11(83-30)
ओ तो वर देही को सगाती, मो वर सिरजण हार। 11(93 63)
तुम भज्या हो महाराज सबै सुख। 11(94 67)

कबीर आदि सतो ने तो ब्रह्म को पति रूप मे माना ही है, मीरा ने अपनी आत्मा के विवाह का और प्रतीक्षा का पूरा चित्रण भी किया है—

भाई म्हानै सुपने मे परण गया जगदीस।
सोती को सुपना आवीयाजो, सुपना बिस्वा बीस।
अग अग हल्दी करीजी, सुधै भीज्यो गात।
भाई म्हानै सुपने मे परण गया दीनानाथ।
छप्पन कोटि जहाँ जान पधारे, दुलहा श्री भगवान।
सुपने मे तोरण बाधियोजी, सुपने मे आई जान।
मीरा को गिरधर मिल्याजी, पूरब जनम के भाग।
सुपने मे म्हान परण गया जी, हो गया अचल सुहाग। 33(105-27)

मारवाड के लौकिक जीवन की छाप तो इसमे है ही, वहां की नारी के सामान्य अनुभव भी मीरा के पदो मे अभिप्राय बनकर उतरे हैं। एक परिणीता की प्रीतम की निरतर याद—

ओलू थोरी आवै हो महाराज अविनासी। 9(409 13)
निस दिन ऊभी पथ निहारूं, कब मोहे धीर बंधासी।
किरपा करो म्हारै भवन पधारो, नाही ये जिवडी जासा॥

और

कबीर की तरह मगलाचार भी—

म्हारा ओलगिया घर आया जी।
तन की तपन मिटी सुख पाया हिलमिल मगल गाया जी।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यू मेरे आणद आया जी।
मगन भई मिलि प्रभु अपणा सू मैं कर दरध मिटाया जी।
चद को देखि कमोदण फूले, हराखे भया मेरी काया जी।
रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया जी।—इसमे 'घर' 'भवन' 'महल' शरीरवाची प्रतीक हैं 42(172) और, निवेदन भी कि—

सतगुरु म्हारी प्रीत निभाज्यो जी।
थै छो म्हारा गुण रा सागर औगण म्हारा मति जाज्यो जी॥
9 (424 75)

—ये सब निगुनिया स्वरूप के प्रभाव सिलसिलेवार नही हैं, यत्र तत्र हैं, यादच्छिक हैं और बेतरतीब हैं। यह इस बात का सबूत है कि मीरा किसी मत विशेष के प्रति प्रतिबद्ध नही थी। साधु मगति से जो अभिप्राय या प्रतीक या अभिव्यक्तियां सार्वजनिक हो चुकी थी, उन्हे मीरा ने अपनी भावनानुसार अपनाया और भजनबद्ध किया।

निर्गुनिया ज्ञान पथ और नाथ पथ—मीरा के समय से काफी पहले लोकधरातल पर आकर अभेद प्राप्त कर चुके थे। मीरा पर परिवेशगत नाथ पथियो का लोक प्रभाव हमे स्वीकार करना ही चाहिए। कहा जाता है कि भारत के पूर्वी भाग मे यदि सिद्धो का बोलबाला था तो परवर्ती काल मे वैसा ही व्यापक प्रभाव पश्चिमी भारत मे नाथ पथियो का था। जलधरनाथ, मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ भरथरी राजा गोपीचद की परम्परा मे राजस्थान का पूरा मारवाड क्षेत्र और दक्षिण म वागड तथा मेवाड भी प्रभाव क्षेत्र था। जसलमेर-जोधपुर मारवाडी तथा नागोर बालनाथी पथो के गढ़ थे। स्वय दूदाजी बालनाथी हरभूजी के समकालीन और उनके पूजक थे। पूरा नागोर, जालोर, जोधपुर मेडता

नाथपथी जोगियो, सिद्धो, पीरों और लोक देवताओ की मान्यताओ से आपूरित था। 28(19) मेवाडी राणा चाहे एकलिंग के उपासक थे मगर एकलिंग जी की पूजा का अधिकार आज भी नाथपथी पुजारी को होना है। 9(105) नाथपथ का इतना लोकप्रभाव था कि आम लोकगीतो मे 'पिय' को वाल्हा,' 'जोगी जी' 'जोगराज' जैसे सम्बोधन मिलते रहे हैं। नाथपथी एक ओर अपनी यम नियम की पराकाष्ठा, दूसरे अपनी विशिष्ट वेशभूषा और—धुनी रमाकर, भभूत चढाए रतनारी आंखो के स्वरूप से भयदायक और आतक्कारी व्यक्तित्व वाले भी मान जात रहे हैं और दूसरी ओर नारी समुदाय के लिए अस्पश्य और अप्राप्य भी माने जाते रहे हैं। इसलिए महिला जगत मे नाथपथी सिद्ध सदा ही 'बैरागी,' 'निर्मोही,' मिलकर भी न मिलने वाला,' 'भरम मे न फँसने वाला' व्यक्ति लोक-सिद्ध बना है।

मीरा के पदो मे नाथपथ के प्रभाव के कारण ही प्रियतम के लिए 'जोगी' 'जोगीडा' जसे प्रतीको का प्रयोग हुआ है और उसके स्वरूप वणन मे नाथपथी वेषभूषा का भी यथा—माला, मुद्रा, कुण्डल, सेली, नाद। ऐसे 'जोगी' प्रियतम के लिए 'जोगण' बनने और उसे "बन बन ढूढने का अभिप्राय भी व्यक्त हुआ है।" 'सतगुरु' 'सैन,' 'जोत मे जोत,' 'सुरत, 'अमरितपान,' 'बिष सो अमरित कीनो,' 'गगन मडल रस पीजै' 'अमृत झरै सदा सुख उपजै, 'सुरतनिरत को दिवलो,' त्रिकुटी महल मे झरोखा —एसे प्रतीक और पारिभाषिक प्रयोग मीरा को नाथ-पथी जोगियो या सतो से लोकाश्रित होकर प्राप्त हुए थे, ऐसा विश्वास करने का कारण बनता है।

नाथपथी परम्परा मे जिन पारिभाषिक अर्थों को प्रतीक दिए गए थे, वे लोकमत प्रधान थे, 42(36-38) यथा—गगन मडल (ब्रह्मरध्र), बकनाल (सुषुम्ना), सुवा (व्यक्ति), बिलाई (माया), कुटुम (काया) अगनि (माया), अरध (मूलाधार), नाग (काल), गगा इडा नाडी), चकवा (चित्त), चिता (आत्म तत्व), चिंतामणि (प्रबुद्ध मन), चारे (विषय, ससार), कथा कावर, डोली, बेगली, नगर महल भुवन बाडी (काया शरीर), खीर (अमृत), गगन (ब्रह्मरध्र), भुजगम (सास क्रिया) बाघिन (माया) दीपक (जीवन, ज्योति), सेज (लौ, लगन)। मीरा के पदो मे ऐसे ही लोकमत मे स्वीकृत अभिप्रायो, प्रतीको को देखा जा सकता है—

जोगिया नैं दीजो जी आदेस
जोगिया चतर सुजाण सजनी ध्याव सकर सेस।
आचूगी मैं नाह रहूँगी रे म्हारा पिव बिना परदेश।
करि किरपा प्रतिपाल मो परि, राखो नि आपणे देस।

माला मुद्रा मेखला रे, वाला खप्पर लूगी हाथ।
जागण होय जग ढूढ सू रे, म्हारा रावलिया ही साथ।
सावण आवण कह गया रे, कर गया कौल अनेक।
गिणता गिणता घस गई रे, म्हारी आगलिया री देख।
पिव कारण पीली पडी रे, बाला जोवन बालो बेस।
दासी मीरा राम भजिके, तन मन कीन्हो पेस।
9 (288 29)

—यहाँ जोगिया के स्वरूप का वर्णन नाथपथ से प्रभावित है, तथापि पूरे पद मे नाथपथी मत की एकता नही है। साहित्यिक रूढि विरह, आकुलता, सब कुछ गडडमडड हो गया है और बीच मे नाथपथी जोगी वाला प्रतीक जड दिया गया है। इसी तरह के पदो मे नाथपथी दूसर प्रतीक अथवा अभिप्राय भी प्राप्त हैं—यथा—

आऊँगी मैं नही रहूँगी, कर जटाधारी बेस।
चीर को फाडू कथा पहिरू, लेऊगी उपदेस।
मुद्रा माला मेखलू रे, खप्पड लेऊँ हाथ।
प्राण हमारा वहाँ बसत है यहाँ तो खाली खोल।
पाच पचीसा बस किए, मेरा पलू न पकडे कोय।
मीरा व्याकुल विरहिणी रे, कोई आय मिलावै मोय॥ 9 (289)

—इसमे कई नाथपथी स्वरूप के लोकतत्व हैं। कही ये हैं, तो कही सन्यासी तपस्वी वाला स्वरूप भी है—

अग विभूति, गले मृगछाला, घर घर जपत अलेप।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, राम जी मिलन की टक।
9 (290 32)

इतना ही नही नाथपथी मत के साथ 'रसीली प्रीति' की अभिव्यक्ति विरोधवक्रता भी व्यक्त करती है—

जोगिया री सूरत मन मे बसी।
नित प्रति ध्यान करत हूँ मन मे, नितप्रत होत खुसी।
कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, मानो सरप डसी।
मीरा कहैं प्रभु कब रे मिलोगे प्रीति रसीली बसी।

—'जोगिया' के साथ 'प्रीति रसीली' की बात और पुन 'ध्यान' के अभिप्राय को अमगत अभिव्यक्ति माना जा सकता है। नाथ मत के साथ वैष्णवी स्वरूप का रलमिल जाना, मीरा के पदो म आश्चयजनक नहीं है—

जोगियो आण मिल्यौ अनुरागी ।
ससा सोक अग नहिं तिसना, दुबिधा सब ही त्यागी ।
मोर मुगट पीताबर सोहै, स्याम बरन बड भागी ।
जनम जनम कौ साहिब म्हारो, वा ही सो लौ लागी ।
अपणा पिव सू हिलमिल खेला, हरि दरसन अनुरागी ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, अब मैं भई सुहागी ।।

9 (291-36)

देखने जोग बात है कि वही 'जोगिया' है, "जनम जनम का साहिब" है और वैष्णवी मतानुसार 'मोर मुकुट पीताम्बर' वाला 'श्याम वर्णी' भी वही है। ऐसा रलना मिलना प्रासगिक साधु सगति से प्राप्त जानकारी और अभेद लोकमत के कारण ही सभव हो सकता है। विधिवत साम्प्रदायिक दीक्षा का अभाव इस प्रकार के पदो से लक्षित होता है। ऐसी स्थिति मे—जहा लोक तत्व ही अभिव्यक्ति के साधन हो और किसी तरह के दशन या मत की दीक्षा का अभाव हो—प्राप्त ज्ञान की प्रधानता नही होती, भावना-ही भावना उजागर रहती है। उसमे क्या नाथ मत, क्या सत मत और वैष्णवी मत सब समन्वित हो जाते हैं—

चाला वाही देस, चाला वाही देस ।
कहो कसुम्भी सारी, रगावा, कहो तो भगवा वेस ।
कहो तो मोतियन मांग भरावां, कहो तो छिटकावा केस ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सुणज्यो बिडद नरेस ।

—देखने लायक बात है कि मिलन की तैयारी के लिए नाथमती और वैष्णव मती लोकतत्वो का विकल्पात्मक प्रयोग हुआ है। प्रिय के स्वरूप मे भी वैसा ही विकल्प होगा जोकि ध्वनित हो रहा है। ऐसी स्वायत्त अभिव्यक्ति की स्थिति तभी हो सकती है जब मत विशेष से प्रतिबद्धता न हो और लोकमत मे सब रलमिल कर एक हो गए हो। उसी तरह—

अरे मैं तो ठाढी जपू रे राम माला रे ।
मैं तो जपती नाम मेरे सायब का, आण मिलो नद लाला रे ।
हाथ सुमरणी काख कूबडी, ओढ रही मृगछाला रे ।
मोर मुकुट पीताम्बर सो है, ओढे लाल दुसाला रे ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भगतन के प्रतिपाला रे ।

9 (312 93)

इतना ही नही नाथपथी जोगियो के नाम स्मरण भी मीरा के पदो मे मिलते हैं—

ज्यारा चित चरणा से लागा, वे ही सवेरे जागा।
पहले भूप भरथरी जागा, शहर उजीणी लागा।
सुण सुण वचना साहब सतगुरु का गोपीचद उठ भागा।
साहब सेन बलखा रा राजा, बाण विरह रा लागा।
आठो पहर कबीरा जागा, मरण जीवण भय भागा।
राणा रूस्यां भव मोरे नांही, चित साहब से लागा।
मीरा बाई तो सरणें आया, लोक लाज भय त्यागा॥

9 (313 94)

मारवाड के लोकमत पर नाथपथी प्रभाव दीघकालीन और बहुत गहराई तक रहा है। उसकी झलक इस पद म मिल सकती है—

चलो अगम के देस, काल देखत डरै।
वहाँ भरा प्रेम का हौज, हसा कल्यो करै।
ओढण लज्जा चीर, धीरज को घाघरो।
छिमता कांकण हाथ, सुमति की मून्दडो।
दिल दुलडो दरियाव, सोच को दीवडो।
उबटन गुरु को ज्ञान, ध्यान को धोवणो।
कान अखोटा ज्ञान, जुगत को जूठनो।
बेसर हरि को नाम, चूडोचित ऊजलो।
जोहर सील सतोख निरत को घूघरो।
बिदली गज अरु हार, तिलक गुरु ग्यान को।
साज सोलह सिणगार, पहिर सुबरन की राखडी।
सांवलिया सू प्रीति और सू आकडी।
पतिबरता की सेज, प्रभुजी पधारिया।
गावे मीरा बाई दासी कर राखीया॥

9 (317-18-109)

—इसम नाथपथी मान्यताओ को शृ गार रूपक दिया गया है। ऐस रूपक लोकगीतो मे भी मिलते हैं—यथा—

लगनिरा लैंगो पहरि सुहागण बीती जाये बिव्हार।
धन जोबण दन च्यार का रे जात न लागे बार॥

(श्रुत परपरा)

मीरा की अभिव्यक्ति प्रारभिक प्रभाव नाथपथी शैली का ही रहा होगा क्याकि वह परिवेशगत था और उसके प्रारभिक पदो मे अथवा वैधव्य के बाद के पदो म वह प्रभाव अधिक प्रखर रहा होगा। उसकी चौतरफा प्रसि द्धि मे अ ैर

साधु सतो के बीच प्रचार पसार मे ऐसे पद ही प्रधान तथा प्रभावकारी रहे होंगे—

अपणै प्रीतम के कारणै, मीरा वैरागण भई रे।
जब तें सीस पै जटा रखाई, नैणा नीद गई रे।
दड कमडल और गूदडी, सिर पर धार लई रे।
छापा तिलक बनाये छवि सा, माला हात लई रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, गोविन्द सरण लई रे।।

9 (321-117)

—वैसे ही,

राख कमडल गूदडी रे बाला, कियो नवेलो भेष।
प्रीतम ओज्यू नै आइया, यो है बडो अनेस।
गुरु को सबद कान मैं पीहरू अग विभूति लगाय।
जा कारण मैं जगत तज्यो है, भौरे लागी आय।
पाँच पचीसा बस करूँ, पलो न पकडे कोय।
मीरा व्याकुल विरहणी, हरि मिलिया सुख होय। 9 (322 118)

—'पाँच पचीसा' नाथ पथियो का अभिप्राय है जिसमे पाँच इद्रियो और उनके साथ मन, छह दशन, छह चक्र, छह दलकमल और स्वाधिष्ठान चक्र—यो पचीस साधन घटक होते हैं।

'जोगी', 'जोगीडा' छाप वाले पद नाथपथी प्रभाव वाले हैं और उनकी भावनात्मक व्याप्ति स्वरूप वणन तक, साधना परक, विरह और मिलन परक अभिव्यक्ति तक है। यथा—

म्हारे घर तू रमतो ही आई रे जोगिया।
काना बिच कुडल, गले बिच सेली अग भभूत रमाई रे।
तुम देख्या बिन कल न परत है, ग्रिह आगणो न सुहाई रे।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यो मोकू आई रे।।

9(422 66)

जोगिया आव मैं नेरी।
मनसा वाचा करमणा प्रभु पुरवो आसा मेरी।
मैं पतिवरता पीव की हो, मोल लई चेरी।
तुम बिन कोऊ दूजो देवा सुपने हूँ ना हरी।
मात पिता सुत बधू दारा ये पाँव मैं बरी।
तुम बिना कोउ नाही मेरो पुकार कहूँ टेरी।

एक बीरियाँ मेरे नगर दे जावो फेरी।
मीरा के प्रभु गिरधर, मैं चरनाँ सू नरी॥ 11(92 59)
मुगत रौ ऐ गहणौ वैरीयो।
पैरियौ पैरियौ ऐ सतगुर, परताप।
म्हारे खिम्यारी चूदड बाण रही, रामइयौ ऐ सालूडा री कोर।
म्हारे करणी रौ काजल सारियौ, रामइयौ ऐ मारे तिलक लिलाड।
म्हारे सील सनोख चूप वणी, म्हारे नथ बेसर गुर ग्यान।
म्हारे तत नाम तिमणियो, रामइया ऐ हिवडा रौ हार।
म्हारे चित चेतन चुडलो वण्यौ, रोमइयौ ऐ चुडला री मजीठ।
म्हारे ग्यान बाजूबन्द बहुरग, रामइयौ ऐ बाजूबन्द री लूम्ब।
हू तो इतनौ ए पहिर निसरी, चाली चाली ऐ रामइया री सेज।
बाई मीरा नै गिरधर मिल्या, पूरी पूरी ऐ मनडा री हूस।
11(116 144)

—मुक्ति के इस आभूषण रूपक मे नाथपथ के स्वरूप और लक्षणो का प्रयोग लोक धरातल का वाचक है। इसी तरह नाथपथ के परिवार प्रतीको का प्रयोग इस पद मे खोजा जा सकता है—

म्हारा पियरिया री वाता सतगुरु केता जाज्यो।
सतगुरु आया सब रस लाया प्रेम पियाला पाया।
सतगुरु साचा सूरमा, म्हानै सेजा राम मिलाया।
सासरिया मे दुक्ख घणो रे, सासू नणद सतावै।
कैजो म्हारा बाबो सा नै, बेगा लेवा आवै।
देवर जेठ म्हारो कुटम कबीलो नित उठ राड चलाव।
इण घरघधे री वाता मानै एकई दाय न आवै।
म्हारा पिहरिया रो लोक भलेरो बाँधै कठी माला।
तिलक छापा रूडा सोहै, नै अमरापुर वाला।
अमरापुर मइ सासरो पीहर सेता पास।
भले न इण जुग आवसा, गावै मीरा दासी॥
11(119 153)

इस पद मे मीरा के जीवन की पारिवारिक स्थिति और नाथपथ के परिवार रूपक मे आश्चयजनक समानता आ गई है। परिवार, सास, नणद, जेठ, देवर, ससुराल—ये सब माया जगत, प्रपच के प्रतीक हैं, (42) और पीहर, बाबोसा, सतगुरु—ये परम तत्व के प्रतीक हैं। उधर मीरा के पीहर—मेडता मे भक्ति का वातायरण था और मेवाड—ससुराल मे जागतिक मर्यादा और प्रपचा का। दोनो

ही पक्षो मे यह प्रतीक विधान अधवान बनता है।

वैसा ही एक नाथपथी प्रभाव—

म्हारै मिंदरिये पधारो, जोऊ थारी वाट।
धरण गगन बिच झरी लागी, उगंत परभात।
रसना मेरी राम रटत है, सतगुरु जी कै परताप॥
दोई चौकी मैं सहजै छेको, नाम कमल कै घाट।
बक नाल पर मुरली बाजै, सतगुर मारया घाट।
काया नगर मे रास रच्यौ है सुरत सुहागण नार।
जनम जनम का टोटा भाग्या, मिलिया दातार।
इगला पिंगला सुखमण नारी सहैज रच्यौ घर वास।
मीरा नैं गुरु गरवा मिलिया, जब पायो बिसवास॥

11(120-156)

—इसमे नाथपथ के पारिभाषिक अर्थो के प्रतीको का प्रयोग हुआ है।

मीरा के पदो मे—भावपक्ष मे भी और अभिव्यक्ति पक्ष म भी यदि नाथपथी विचारणाओ, मान्यताओ और प्रतीको का सहज प्रयोग मिलता है और वह भी सगुण निगुण जैसी छाप से पूवग्रहीत न होकर तो वह स्वाभाविक ही कहा जाएगा। क्योकि मारवाड क्षेत्र के लोकमानस पर नाथपथ के शील, सदाचार, एकनिष्ठता, तप, त्याग आदि की इतनी गहरी छाप रही है कि वे सब वहा के भाषा मुहावरो, कहावतो, लोकगाथाओ और गीतो मे भी उसी तरह से मुखर हुए हैं। यथा— अमर नाव परमेसर को 43(15), अलख पुरुष की माया, कठे धूप कठे छाया वही (16) अलख भरोसै अकर्कै, ऑदण ईसरदास, वही (16), अलख राजी तो खलक राजी वही (17), आई मौज फकीर की देई झूपडी बाल, वही (26), आत्मा सो परमात्मा, वही (34) आसोजा का तावडया, जोगी होग्या जाट वही (51), ऊपर भरै नीचै झरै, जैको गुरु गोरखनाथ कै करै? वही (63), कठी लीनी खोल, अबै पूरे गांम ईडोल, वही (75), कनफडा दोनू दीन बिगाडया, वही (81) करता गुरू न करता चेला वही (86) का गोरख, का भरथरी, का गोपीचद गोड। सिद्ध गयाई पूजिये सिद्धरह्या री ठोड वही (94), काची काया को कै गारबो? वही (99), काना मैं मुन्दरा होया, आपै ईआ आदेशकरसी वही (104), कै जागे जोगी, कै जागे भोगी वही (124) कै सोवै राजा का पूत कै जोगी अवधूत (128) कोई कवै रामदेजी काई केवै पब्बा। दो दो राटी बाँट लेइ आप आपके ढब्बां (129) घायल की गत घायल जाणै (184) जाग मछदर गोरख आयो (214) देखा देखी साध जोग छीजै काया बाढै रोग (276), राजा से जोगी भयो, जोगी से भयो कुम्हार। दोनू खोई बुवन्न, आदेसा जुहार (281), पाणी

पीवै छाण जीव मारै जाण (310), हसा जेहा ऊजला, पापर जेहा चित्त। कांप्रे घाली मेखली, जोगी किसका मित्त (409), जोगी जोगी सहे तो थप्परां री हांण, ऐसा जहाँ नाथपथ का लोकमत पर गहरा प्रभाव रहा हो, वहाँ अगर मीरा के पदो मे उनके प्रतीक और अभिप्राय आ गए हो तो वह सहज स्वाभाविक है।

मीरा की भावानुभूतियो को पुष्ट करने वाले और अभिव्यक्ति देने वाले लोक-तत्व निगु णिया सतो और लोक व्यापी नाथ पथियो के अभिप्राय तथा प्रतीक रहे हैं। उसके परिवेश मे उन्ही का प्रचलन था और ऐसा लगता है कि उनका अजन मीरा ने कुछ तो लोक जीवन की परिपाटियो से किया था और कुछ साधु सतो की सगति स कमाया था।

(ii) सगुण भक्ति तत्व तथापि मीरा न सत थी न नाथपथी साध्वी या जोगण थी। वह एक गुरुकुल की राजकन्या थी जिसकी एक पारिवारिक मर्यादा थी ही थी, एक शीलाचार और जीवन प्रणाली थी। चाहे मेडता के राजघराने की कन्या होने के नात उसे पर्दे मे रहने, असूयम्पश्या बने रहने और हर किसी से लाज करन की जरूरत नही थी तब भी साधु सगति मे भजन कीतन मे, हेलमेल मे कुछ न-कुछ मर्यादा रेखाएँ तो रही ही होगी। दूदाजी, वीरमद आदि को परम वैष्णव कहा गया है, उनके राजकुल मे विष्णु के चार भुजा स्वरूप की वैष्णवी पूजा होती थी। मीरा के लिए भी कहा जाता है कि उसी चार भुजा स्वरूप के सामने वह ध्यानावस्था मे बैठी रहती थी वही उसका एक आसन था और उसके दीक्षा गुरु गजाधर वहीं पूजा पाठ और पुराण कथा आदि उसे सुनाया करत थे।

वैष्णव भक्ति का इतिहास बहुत पुराना है और वह एक ऐसा प्रवाह रहा है जिसमे सूर्य, गणेश शक्ति, शैव बौद्ध, जैन सभी परवर्ती और परवर्ती विचार-धाराओ का सगम और समन्वय हो चुका है। मीरा के समय तक उसकी कई धाराएँ बाढ की तरह उमड रही थी। वल्लभ, निम्बार्क, चैतन्य, हरिदासी, राधा स्वामी आदि के साथ साथ रामानदी, रामानुजी और अनक छोटे माटे सम्प्रदाय अस्तित्व म थे। 11 (180) लोक मे सब रलमिलकर कर ऐसे एकाकार हो गए थे कि मूर्ति पूजा, निराकार उपासना ब्रह्म ज्ञान, कृष्ण, राम, नसिह, वराह, विष्णु, चतुर्भुज शिव, सबका अन्तर्भाव भक्ति' मे हो गया था। लोकतात्विक धरातल पर जो भक्त—सम्प्रदाय मुक्त होकर भक्ति करते थे उनम सबका सश्लिष्ट स्वरूप देखन को मिलता है। ऐसा समन्वय का क्रम कबीर क समय भी था और परवर्ती सत एव भक्त कवियो मे भी था। उसी समन्वय को शास्त्रीय रूप देन का प्रयत्न तुलसी न भी किया था। अध्येताओ ने मीरा की भक्ति मे सम्प्रदायो की छाप ढूढन का प्रयत्न तो किया है मगर तत्कालीन लोकमत का अध्ययन यदि वे करते तो मीरा के पदो मे उसके प्रमाण मिल सकत थे।

वस्तुत लोकमत अभेद की ओर जाता है अखडता और एकता की ओर जाता

है। आज भी वैष्णव सिर्फ वैष्णव होते हैं और भिन्न-भिन्न मतमतान्तरों का समन्वय अन्तर्मंथन तथा अन्तर्भाव उनकी मान्यता में मिलता है, वैसी ही स्थिति मीरा के समय में भी थी। स्वयं मेड़तिये ठाकुर शक्ति के उपासक थे, 44(127) दूदाजी परम वैष्णव भी माने जाते थे, हरभूजी का उन्हें वरद हस्त प्राप्त था, पाबूजी आदि लोक देवताओं के थानक भी पूजे जाते थे, मंदिर चार भुजा के थे और वैष्णव नवधा भक्ति तथा पूजा पाठ वहां चलते रहते थे। संत और साधुओं का आवागमन बना रहता था और ज्ञानार्जन का वही एकमात्र साधन होता था। राजपूती युग में इसी कारण अध्यात्म और भक्ति का सम्मेलन भी मिलता है कि जीवन दो ध्रुवों के बीच जिया जाता था—एक तो रणक्षेत्र में या फिर दो युद्धों के बीच विराम में, जो कुछ तो शृंगार में बीतता था और कुछ साधु संगति में। मीरा से पूर्वकाल के वीरगाथा साहित्य में उसके प्रमाण मिल जाते हैं।

इसलिए यदि मीरा के पदों में हमें कहीं पंचरात्र, कहीं रामानुजी, कहीं वल्लभ-मतीय, कहीं चैतन्य मतीय, कहीं रुद्र सम्प्रदायी, कहीं सूफी प्रभाव मिलते हैं तो वे इसलिए नहीं हैं कि मीरा का उनसे सम्बन्ध था या वह उनमें दीक्षित हुई थी, बल्कि इसलिए हैं कि वे सब लोकमत में जाकर एकाकार हो गए थे। 44(129) भक्ति का जो लौकिक स्वरूप मारवाड़ क्षेत्र में 15वीं-16वीं सदी में रहा, उसके कुछ लक्षण इस प्रकार से कहे जा सकते हैं—(1) भागवत के अनुसार ईश्वर के विराट स्वरूप को मान्यता—उसकी निर्गुणिया धारणा से निकटता होने के कारण संतों के प्रतीक विधान और ब्रह्म निरूपण के अभिप्रायों को स्वीकृति। (2) ईश्वर के विष्णु स्वरूप में—जो कि सृष्टि का पालक माना जाता है—शिव शक्ति सूर्य वराह नृसिंह राम, कृष्ण आदि अवतारों के अन्तर्वेश की मान्यता। (3) ईश्वर के लीलामयी स्वरूपों का आवश्यकतानुसार उपयोग, यथा—स्वामी रूप का, त्राता रूप का, सहायक रूप का, अधम उद्धारक रूप का, दानी रूप का, बाल रूप का, शत्रु संहारक रूप का, भक्त की मर्यादा के रक्षक रूप का, प्रेम रूप का। (4) ईश्वर सम्बन्धी जिन भिन्न भिन्न धारणाओं, सिद्धान्तों, मान्यताओं, विश्वासों का प्रचार भिन्न भिन्न दार्शनिक मत-मतान्तरों ने किया, उनका साधु-संतों द्वारा साधारणीकरण और सरलीकरण ताकि वे सहज मानव की सामाजिक आवश्यकताओं के अनुकूल हो सकें और उनका विस्तार हो सके। इसीलिए हम पाते हैं कि भक्ति के दायरे में कृष्ण, राम, दाशरथि सिद्धार्थ मुरलीधर गोपी वल्लभ, कंस नाशक, योगी, नरसिंह, दानी, मुरलीधर आदि नाम अलग-अलग मांगों और आवश्यकताओं के पूरक बन गए हैं। ध्यान देने योग्य है कि मीरा की भक्ति में प्रेम एवं भक्ति की प्रधानता है 11(214) और उसमें भी लोकनायक की उपासना कान्ताभाव 11(215) की अधिकता है। ऐसा कान्ताभाव सम्भवतः राजपूती संस्कृति के अनुरूप बन गया है जहां मृत्यु और शृंगार के *

प्रेमभक्ति कही कही गूथी जा चुकी है और जिसके साहित्यिक प्रमाण वीसल द रासो जैसे ग्रन्थो मे मिल जात हैं 13(277 310)। मौखिक परम्परा वाले लोक काव्या और लोक गीतो मे भी इस भक्ति प्रेम और शृ गार के रलेमिले प्रतीक विधान मिल जाते हैं—

जे जीवण तिहाँ-तणा तन ही माँहि वसत।
धारइ दूध पयो हर, बालक किम काढत।। 45(142)

तुं ही सज्जता नित्त तू प्रीतम तू परिवाण।
हियडइ भीतर तू वसई, भावइ जाण म जाँण।। 45 (114)

हु बलिहारी सज्जणा, सज्जणमो बलिहार।
हूँ सज्जण पग पानही, सज्जण मो गल हार।। 45(145)

सज्जण गुणे समुद्द तू, तर तर थक्की तेण।
अवगुण एक न साँभर इ रहूँ विलबी जेण।। 45(151)

अहर फरक्कइ तन फुरइ, तनफुर नयँण फुरत।
नाभी मडल सहु फुरइ, साँझइ नाह मिलत।। 44(160)

—इसी प्रकार 'सँकरी गली मे प्रियतम का मिलना', 'दिन गिनते गिनते उगलियो की रेखाओ का घिस जाना, याद मे दुबला जाना कि हाथ की अँगूठी बाह मे आने लग जाए' 'पपीहा', 'चकारे' आदि के अभिप्राय लोकतत्वो की बहुत पुरानी शृखला है और इनका उपयोग जसे प्रेम काव्यों मे हुआ है वैसे ही भक्ति साहित्य मे भी।

कहा जाता है कि मेडता म राव दूदा के जमाने मे चार भुजा की पूजा और भक्ति का जार था। राजपरिवार की महिलाएँ भी धार्मिक थी। नितनेम, भजन, पूजन, कीतन, साधु-सगत आम जनता मे बहुलता के साथ प्रचलित थे। भक्ति भरे वातावरण की छटा निराली ही रहती थी। मथुरा वृ दावन, पुष्कर, द्वारिका, डाकोर आदि की ओर से आने जाने वाली साधु मडलियाँ भक्तजन और सत-महात्माओ के डेरे मेडता मे पडे ही रहते थे। 11(219) मेडता के पडोस मे नागोर, पाली आदि स्थान भी सतो, नाथो और सिद्ध महात्माओ के अखाडे थे। उनका आवागमन भी बना रहता था। राजनीतिक दष्टि से मेडता का महत्व इस तरह का था कि वह जोधपुर, जयपुर, अजमेर, मालवा, दिल्ली-आगरा बीकानेर, चुरू, जालोर, मेवाड और गुजरात के बीच केन्द्रीय स्थान था। वहाँ सेनाओ और राज-नीतिक जनो तथा बनजारो, व्यापारियो का जमघट बना ही रहता था। उसके कारण वहाँ के लोकमानस मे अपेक्षाकृत उदारता और खुलेपन की मात्रा अधिक ही थी। उसी राजनीतिक स्थिति को ध्यान मे रखकर राणा साँगा ने मेडता के

साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए थे। 44(130 31)

एक तो वहाँ का भक्ति पूण वातावरण, दूसरे व्यापक वृत्ति वाले लोकमानस और तीसरे बचपन से उस वातावरण मे पली पोसी होने से मीरा के सस्कार भक्ति भावना प्रधान बने थे। 11(219) मीरा के पदो से ही सकेत मिलता है कि—

सात बरस की मैं श्री रग सेविया, जद पायो सुख सुहाग।

—ये सस्कार ही उसकी माधुय भक्ति के रूप मे प्रकट हुए। वैष्णव भक्ति के वातावरण के कारण उस पर चार भुजा के सगुण स्वरूप का प्रभाव निश्चय ही प्रधान था। यद्यपि लोकमत के अनुसार उस भक्ति भाव मे लोकतत्वो की प्रखरता थी।

तभी मीरा के पदो मे अपने इष्ट के लिए विविध नामो और स्वरूपो का प्रयोग हुआ मिलता है यथा—13(154)

गिरिधर नागर राम गोकल का बिहारी हरी गोविंद, मनमोहन, ब्रजराज, सावरो, सावरिया चतरभुज नाथ, दीनानाथ प्रभुजी श्याम सुन्दर भरतार मोहन, बाँके बिहारी, नदलाल गोपाल यदुनाथ काहा नागर नट महाराज, ठाकुर, रावल, जोगी, जोगीडा, सामी, स्वामी अविनासी, सतगुरु खसम, प्रियतम, प्रिया, प्रिय, प्रान अधार।

—इनमे लोक प्रचलित प्रयोगो की झलक मिलती है। जहाँ तक मीरा के पदो मे इष्ट के सगुण स्वरूप के वणन का प्रश्न है, हमे उसके कई भावना परक प्रकाशन देखने को मिलते हैं।

बरजी मैं काहूकी नहिं रहू, म्हारो श्याम सुन्दर भरतार। 9 (405)
नैना लोभी रे बहुरि सके नहिं आय।
रोम रोम नख लिख सब निरखत, ललकि रहे ललचाय।
मैं ठाढी गिह आपणै री, मोहन निकसै आय।
बदन चन्द परकासत हेली, मद मद मुसकाय। 9(405 2)
हमरो प्रणाम बाके बिहारी को।
मोर मुगट माथे तिलक बिराजै, कुडल अलक अकारी को।
अधर मधुर पर बशी बजावै, रीझ रिझावै राधा प्यारी को।
यह छवि देख मगन भई मीरा, मोहन गिरवर धारी को॥
33(95-2)

बसो मोरे नैनन मे नदलाल।
मोहन मूरति, सांवरि सूरति, नना बन बिसाल।
अधर सुधा रस मुरली राजति, उर बैजंती माल।
छुद्र घटिका कटि तट सोहति, नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु सतन सुख दाई भगत बछल गोपाल। 33(96 3)

मेरो मन बहिगो गिरधरलाल सो।
मोर मुकट पीताम्बर हो, गल बैजन्ती माल।
गउवन के सग डोलत, हो जमुमति के लाल।
कालिदी के तीर हो, काहा गउवां चराय।
सीतल कदम की छाहियां हो मुरली बजाय।
वृदावन क्रीडा करै, गोपिन के साथ।
सुर नर मुनि मोहे हो, ठाकुर जादुनाथ।
इद्र कोप घन बरसो, मूसल जल धार।
बूडत ब्रज को सखेऊ मोरे प्रान अधार।
मीरा के प्रभु गिरधर हो, सुनिये चित लाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सोहाय। 33(97 6)

—इसमे मधुर भाव के साथ-साथ लीला स्वरूप भी है। दरअसल मीरा के गिरधर तीन स्वरूपो मे भावित हुए हैं 44(307)—

(1) अवतारी कृष्ण के रूप मे—जिस रूप मे मीरा ने उन्हे नर रूप माना है और सयोग-वियोग का आलम्बन बनाया है।

(2) विष्णु रूप मे—जिस रूप मे वे भिन्न भिन्न अवतारो के मूल, देवत्वमय प्रभु स्वरूप वर्णित हुए हैं और

(3) अविनाशी रूप मे—जिसम वे असीम, निराकार, परमतत्व के रूप मे अनुभूत हुए हैं। ये तीनो स्वरूप तथापि बहुत विभेद के साथ पृथक् नहीं हो पाए हैं क्योंकि लोकमत मे वैसा विभेद या विभाजन था नही। प्रधानता की दृष्टि से देखें तो मीरा को कृष्ण का बाँकेबिहारी वाला स्वरूप ही अधिक इष्ट था—

निपट बकट छवि अटकै।
मेरे नयन निपट बकट छवि अटकै।
देखत रूप मदन मोहन को, पियत पियूख न मटकै।
बारिज भवाँ अलक टेढी मनो अति सुगध रस अटकै।
टेढो कटि टेढी करि मुरली टेढी पाग लर लटकै।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी गिरधर नागर नट के। 33(97-7)

—ऐसे ही अन्य पदो म मीरा के गिरधर का स्वरूप वैसा ही है—'सुन्दर

वदन', 'कमल दल लोचन', 'बाँकी चितवन', 'मद मुसकान', 'धेनुचराता बसी बजाता, 33(98 8) सीस मुकुट पर मोर चन्द्रिका', कभी 'भाल पर केसर का तिलक', 'कानो मे लहराते कुंडल', 'कुटिल भकुटि', 'चितवन में टोना', 'अति सुन्दर नासिका', 'ग्रीवा तीन रेखा युक्त' 33(98 9) ऐसे स्वरूप वाले गिरधर के 'अग-अग पर मीरा बलिहारी' है। गिरधर के इन स्वरूपो मे कुछ तो पारम्परिक हैं, 'वैजतीमाला' वाला रूप विष्णु स्वरूप के साथ जुडा हुआ—चार भुजा की छाप प्रमाणित करता है" 'टेढी पाग और उस पर लटकती मोतियो की लड' राजपूती बाँके वीरो की छाप बताते हैं। ऐसे ही स्वरूप मे मीरा के 'लोभी नैन अटक गए हैं और बहुरते नही' 33(98-10), वे वही 'ललक कर रह गए हैं और नख से सिख तक उनका रोम रोम देख रहे हैं।' (वही) ऐसी 'माधुरी मूरत' मीरा के 'उर बिच आन अडी है, उसके बिना वह 'प्रान कैस रखे' कि वही 'उसके लिए जीवन मूर जडी है वही (99 11)। ऐसे ही गिरधर के रूप के लिए उसने वह भाव भूमि पाई कि—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुगुट मेरो पति सोई।

और उस भाव बेल को उसने—"असुवन जल सीचि बोया है" क्योकि 'कुल की कानि' व 'जगती तत्व' बाधक रहे थे। वही (100 15)

—इस सगुण, साकार और नर स्वरूप के अलावा मीरा ने कृष्ण के चार भुजाधारी विष्णु स्वरूप की वदना भी की है—

मन रे परसि हरि के चरन।
सुभग सीतल कवल कोमल त्रिविध ज्वाला हरन।
जिस चरण प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल की हैं, राखि अपनी सरण।
जिन चरण ब्रह्माड भेंटयो, नखसिखा की धरण।
जिस चरण गोवरधन धारयो, इन्द्र को गर्व हरण।
जिण चरण कालीनाग नाथ्यो, गोप लीला करण।
दासी मीरा लाल गिरधर, अगम तारण तरण॥ 33(95-1)

इसमे विष्णु तथा उनके नृसिंह, वामन व कृष्णावतार के प्रसग आए हैं। कुछ अन्य पदो मे "कृष्णावतार की द्रौपदी की लज्जा बचाने वाली" झाँकी नृसिंह अवतार और गजमोक्ष वाले विष्णु का स्मरण है 33(119 63)। यह ध्यान देने योग्य है कि जोधपुर-बीकानेर-चुरू की ओर आज भी होला के आसपास नृसिंह धारण किया जाता है और स्वाँगधारी रस्सी का चाबुक लेकर दुष्ट जनो को मारने का नाटक करता है। उस क्षेत्र मे नृसिंह की मान्यता पौराणिक काल से चली

आती है। मीरा ने यदि उसी अवतार को बार बार याद किया है तो वह लोक-तत्वानुसारी है। उसके अनुसार वह ऐसे 'हरी' से विनती करती है जिसने 'जुग-जुग भीर हरी भगतन की, दीनी मोक्ष समाज" वही (119 64)। तथापि ऐसे पदों मे भी मीरा अपनी दाम्पत्य भावना नहीं छोड सकी है। यानी इसका मूल स्वर मधुरा भक्ति का है और कृष्ण के 'तरण-तारण' वाले सर्वव्यापक स्वरूप का वणन करते हुए भी वह 'विरहिणी की भावना उसके साथ जोड देती है—

हरी बिन कुण गति मेरी।
तुम मेरे प्रतिपाल कहिए, मैं रावरी चेरी।
आदि अन्त निज नाम तेरो, हीया मे फेरी।
बेरि बेरि पुकार कहौं, प्रभु आरति है तेरी।
यो ससार बिकार सागर, बीच मे घेरी।
नाव फाटी प्रभु पाल बाँधो, बूडत है बेरी।
विरहिणी पिव की बाट जोवे, राखि तयौ नेरी।
दासी मीरा राम रटत है, मैं सरण हूँ तेरी। 33(119 65)

मीरा के 'गिरधर' चाहे 'बाँके बिहारी' हैं, चाहे 'नन्दलाल' हैं, चाहे 'अविनास' हैं, चाहे 'भुवनपति (वही 130 96)हैं, चाहे 'मन मोहना'(वही 131-99) हैं, चाहे केवल 'तुम' हैं (वही 131-104) चाहे 'जनम मरण के साथी हैं (वही 132-106), चाहे 'सजन' हैं, चाह 'राम' (वही 133), चाहे 'राज' हैं— उसी मधुरा भाव से सम्पृक्त किए गए हैं।

लगता है कि विष्णु सम्बन्धी मधुरा और तरणतारण वाले मीरा के पद अलग-अलग समय के हैं। मधुरा भावी पद तो सभवत किशोरावस्था के होंगे और दीनता और आतुरता वाल विनय के पद उस अवस्था के होंगे जब चारो ओर के दबावो और पारिस्थितिक सकटो के बीच मीरा ने अपने को निराधार निराश्रित अनुभव किया होगा। वैसे समय मे उसने विष्णु के तरणतारण स्वरूप का ही स्मरण किया है और उनमे मधुरा भावा का अभाव है, यथा—

तुम सुणो दयाल म्हारी अरजी।
भव सागर म बही जात हौं, काढ़ो तो थाँरी मरजी।
यो ससार सगो नहि कोई, साँचा सगा रघुबर जी।
मात पिता और कुटुम कबीलो सब मतलब के गरजी।
मीरा की प्रभु अरजी सुण लो, चरण लगावो थाँरी मरजी॥
वही (141-130)

इसी तरह से—

मैं तो तेरी सरण पडी रे रामा, ज्यू जाणो त्यू तार।
अडसठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नहिं मानी हार।
या जग में कोई नहिं अपणा सुनियो श्रवण मुरार।
मीरा दासी राम भरोसे, जम का फदा निवार।"

वही (141-131)

वैसे ही—

अब मैं सरण तिहारी जी, माहिं राखा कृपा निधान।
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढी विमान।
और अधम तारे बहुतेरे, भाखत सत सुजान।
कुबजा नीच भीलनी तारी, जानै सकल जहान।
कहें लागे कहूं गिणत न आवै, थकि रहे वेद पुरान।
मीरा कहें मैं सरण रावल, सुणि यो नेनो कान। वहीं (141-132)

इसमे विष्णु के स्वरूप का तथा राम और कृष्ण अवतार का ही स्मरण है। कुछ और पदो म उसी प्रकार 'गजराज के तारण का' (वही 147-135) 'द्रौपदी की रक्षा का' (वही 135) 'प्रहलाद की रक्षा का', 'अहल्या उद्धार का', 'सुदामा की विपत्ति के निवारण का' (वही 135)। प्रसग देकर कहा गया है—'मीरा के प्रभु मो बदी पर, एसी अबेर भई किन कारण।'

अविनाशी, परमतत्व और निराकार स्वरूप वाले पद वे हैं जिनकी चर्चा निगुनिया प्रभाव के अन्तर्गत हो चुकी है। और वे सभवत मीरा के एकात चिंतन के उन क्षणो के पद हैं जब वे तात्त्विक विमर्श की अवस्था मे रहती होगी और सघर्षपूण जीवन जी रही होगी।

वस्तुत हम मीरा की रचनाओ को उनके जीवनवृत के मोडो और सघर्षों से जोडकर देखना चाहिए। एक तो उनका प्रारभिक जीवन था—किशोरावस्था से लेकर विवाह के समय तक दूसरा विवाहित जीवन का समय, तीसरा वधव्य और उसके बाद राणा सागा की मृत्यु तक, चौथा रत्नसिंह के राज्यकाल का राजनीतिक कलह का समय और अतिम राणा विक्रमाजीत का समय जबकि कष्टो का अन्त और आरभ चित्तौड त्याग के साथ हुआ था। अतिम समय रणछोड की शरण मे रहने का हो सकता है जिस समय के पदमुक्त कीर्तन और आध्यात्मिक धरातल के हो सकत हैं।

मीरा के पद—वे चाहे विष्णु के कृष्णावतार से जुडे हो अवतारमूल स जुडे हा या निराकार स्वरूप से जुडे हो—तीनों मे यदि प्रयत्न किया जाए तो मीरा

का जीवन वृत्त और पारिस्थितिक साक्ष्यगत विकास पृथक से खोजा जा सकता है। तथापि इतना ध्यातव्य है कि मीरा के सामने सगुण, निर्गुण, लीलाधारी, प्रेमल आदि स्वरूपो मे कोई विभेदक रेखा नही थी। हमे यह मानकर चलना चाहिए कि मीरा केवल भावना थी और उस भावना की बाढ़ मे जहां जो आ गया सो आ गया। वह न दार्शनिक थी, न शास्त्रवेत्ता थी, न आचार्य थी, न भक्त थी। वह भक्ति की साकार भावना थी जिसके सामने किसी तक की, किसी सम्प्रदायी छाप की कोई अस्मिता नही थी, 44(302) इसी कारण वह धार्मिक आंदोलनो के अपने युग मे भी सम्प्रदायवाद से निरपेक्ष रही। वैसा न होता तो अष्टछापी भक्तो की तरह वह भी एक छाप बन कर रह जाती। वह केवल भावना थी, इसीलिए अमूर्त होकर लोक के मन मे उतर गई और अनचाहे अनजाने देश-काल की सीमा मे फैल गई।

(iii) सगुण निर्गुण मे अभेद यही कारण है कि उसके पदो मे हमे सगुण मे निर्गुण और निर्गुण मे सगुण, परम मे अहम् और अहम मे परम का सम्मिश्रण मिलता है। यथा—'गिरधर नागर' के साथ ही यह व्यक्त करना कि 'सतगुरु शरण गहू' (404-1)। 'स्याम सुन्दर भरतार' की बात करते हुए उसके साथ मीरा के प्रभु अविनासी पूण ब्रह्म अपार', (405 3) कहना। एक ओर 'देखो साईया कहना और उसके साथ ही 'हरिमन काठ किया (416 40) कहकर 'गिरधर नागर' की छाप से पद पूरा करना। उसी तरह पद की अर्धाली से मोर मुकुट पीताम्बर सोहे स्याम वरण वड भागी' कहना और उसी के साथ निगुनिया शैली मे—

'जनम जनम को साहिब मेरो, वाही से लौ लागी।
अपने पिया सग हिल मिल खेलू, अधर सुधारस पागी।।" का सम्पुट देना।

सगुण, निर्गुण, लीलामय और परम तत्व के सब स्वरूपो का विचित्र-सा मेल भी कुछ पदो मे मिलता है—

म्हान चाकर राखो जी गिरधारी लाल, चाकर राखो जी।
चाकर रहसू बाग लगा सू, नित उठि दरसन पासू।
व दावन की कूज गलिन म गोविंद लीला गा सू।
चाकरी मे दरसन पाऊँ सुमिरन पाऊँ खरची।
भाव भगत जागीरी पाऊँ तीनों बाता सरसी।।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल वैजन्ती माला।
वृदावन म धेनु चराव, मोहन मुरली वाला।।
ऊँचे-ऊँचे महल बनाऊँ बिच बिच राखू बारी।
सावरिया के दरसन पाऊँ, पहिन कुसुम्भी सारी।।

जोगी आया जोग करन को तप करने सन्यासी।
हरी भजन को साधू आया, वृ दावन के वासी ॥
मीरा के प्रभु गहिर गभीरा, हृदै रहो जो धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दी जो, प्रेम नदी के तीरा ॥ 9(418-48)

वैसे ही एक पद मे 9(419-53) लौकिक धरातल पर लौकिक काव्य रुढियो का प्रयोग करते हुए 'पपीहे को पी पी करने पर चोच मरोडने की धमकी है, चेतावनी है कि पी-पी करने का अधिकार तो विरहिणी का है, तू पी-पी करने वाला कौन ?' उससे दूर हटकर कौए की बानी को स्वागत की नजर से देखा गया है, उसकी चोच सोने से मढाने की बात है, उसके जरिये पाती भेजने की इच्छा भी कि जाकर 'पी से कहना कि तेरी प्रेमिका धान नही खाती' और अन्तत 'प्रिय' के लिए 'अन्तर-जामी' का प्रयोग जोकि परमतत्व का वाचक है। ऐसा लगता है कि निर्गुनिया शैली की व्यथा को लौकिक सगुनिया और कायिक अभिप्रायो से व्यक्त किया गया है।

एक पद मे 9(420 56) तुलसी की तरह केवल 'नाम महिमा' के प्रमाण मे पौराणिक 'पत्थर तैरने', 'गणिका', 'गजग्राह' की कथाए कहकर अत मे 'नाम महातम गुरु दियो परतीत पिछाणी हो' कहा गया है। पद 9(429 60) म 'अविनाशी के चरण कमलो की वदना' करके अत मे 'स्याम तुम्हारी दासी' कहा गया है। 'जोगिया' के नाम पर 'अलख जगाने, जोग जगाने की' बात कहकर मीरा अपने 'गिरधर नागर से मिलकर तपन बुझाना चाहती है 9(423 70)। उसी तरह जिन आखो मे साहब बसता है, उन्ह मीरा बद भी नही करना चाहती, त्रिकुटी महल म झरोखे से झाकी लगाए बैठी है' और ऐसी जाग साधना मे 'गिरधर नागर को पाना चाहती है। 9(425 81)

मीरा की भाव भगति म किसी मत विशेष की छाप नही है। सब मतमतातरो के प्रतीक, अभिप्राय और सार तत्त्व लोकमानस मे जाकर एकमेक हो जाते हैं। मीरा जैसी भक्त की भावनाए जब उमड उठती हैं तब चाहे जो उसके वेग को सह सके वह सहज भाव मे सामने आ जाता है—तभी

'वगनी का लहगा पहन कर वह सुहागण, राम नाम का चुडला पहनना चाहती है', 'हरि नाम की नथ बेसर धारण करके 'सावरिया वर को वरना' चाहती है बल्कि 'कृष्ण नाम की झनकार करते हुए सुरत मे रमना चाहती है।' 43(162-201) और ऐसी 'पुकार' वह 'अविनासी की पोल पर' कर रही है।

मीरा के पदो मे (33) कुछ उपदेशपरक हैं, कुछ सासारिक माया मोह की असारता बताने वाले, लोक रूढियो से सने हुए चरित्रोपदेशक पद भी हैं—जो सब सामान्य वाछा के अभिव्यजक कहे जा सकते हैं—

जग मे जीवण थोडा, राम कुण कहरे जजार।
मात पिता जो जनम दियो है, करम दियो करतार।
कई र खाइयो कइ रे खरचियो, कइ रे कियो उपगार।
दिया लिया तेरे सग चलेगा, और नसी तेरे लार।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भज उतरे भव पार॥
33(161 196)

मनखा जनम पदारथ पायो, ऐसी बहुर न आती।
अबके मोसर ज्ञान बिचारो, राम नाम मुख गाती।
सतगुरु मिलिया सुज पिछाणी, ऐसा ब्रह्म मैं पाती।
सगुरा सदा अमरित पीवै, निगुरा प्यासा जाती।
मगन भया मेरा मन सुख मे, गोविद का गुन गाती।
साहब पाया आदि अनादि, ना तर भव म जाती।
मीरा कह इक आस आपरी, औरो सू सकुचाती॥ 33(161-197)

—ध्यान योग्य बात है कि मारवाड के लोकमत मे 'गुरु' कहना एक व्यापक विश्वास रहा है। आज भी सवण और अवर्ण बिना कान फुकाए भी किसी को 'गुरु' बनाते मानते हैं। विश्वास है कि गुरु' बिना 'जनम अकारथ' जाता है।

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
का जानू का पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार।
बढत छिन छिन घटत पल पल, जात न लाग बार।
विरछ के ज्यू पात टूटे, बहुरि न लागे डार।
भो सागर अति जोर कहिए अनत उडी धार।
राम नाम का बांध बेडा, उतर परले पार।
ज्ञान चौसर मडी चौहटे सुरत पासा सार।
या दुनिया म रची बाजी जीत आवै हार।
साधु सत महत ज्ञानी, चलत करत पुकार।
दासी मीरा लाल, जीणा दन च्यार॥ 33(160 195)—ऐसे

पदो मे लोकतत्वो का सार-ही-सार है। उनमे सब दर्शनो का सार, सब मत मतांतरो का निचोड और सब साधनाओ का तत्त्व लोकमत मे समाया हुआ है। दार्शनिक वेदांत कहें तो बौद्ध वाद कहें तो, मायावाद कहें तो कर्मवाद कहें तो, नवधा भक्ति, निराकार उपासना, वैराग, जोग, भोग सबके सब लोकमानस के मच पर रलमिलकर किस तरह से साधारणीकरण मे ढलते हैं—इसका पता मीरा के पदों से चल जाता है—

भज मन चरण कँवल अविनासी।
जेताई दीसे धरण-गगन बिच, तेताइ सब उठ जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिए करवत कासी।
इण देही का गरव न करणा, माटी मे मिल जासी।
यो ससार चहर की बाजी, साझ पड्या उठ जासी।
कहा भया जो भगवाँ पहर्याँ, घर तज भये सन्यासी।
जोगी होय जुगति नहिं जाणी उलटि जनम फिरि आसी।
अरज करूँ अबला कर जारे, स्याम तुम्हारी दासी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी।
33(160-194)

और कमगति की अटलता, भाग्य का भोग लोकमत मे कितना अटल है, यह भी मीरा के पदो मे उतरा है—

करम गति टारे नाहिं टरी।
सतवादी हरिचद से राजा, सो तो नीच घट नीर भरे।
पाँच पांडु अरु सती द्रोपदी, हाड हिमाल गरे।
जग्ग कियो बलि लैण इद्रासन, पाताल धरे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, विप स अमत करे।
33(158-190)

एक तरफ तो 'सहज बैराग' की आवश्यकता का उपदेश—

यहि विधि भगति कैसे होय।
मन की मैल हिये तें न छूटी, दियो तिलक सिर धाय।
काम कूकर लोभ डोरी, बाँधि मोह चडाल।
क्रोध कसाई रहत घट मे, कैसे मिलें गोपाल।
बिलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन ह्वै क्षुधा रत से, राम नाम न लेत।

इस तरह से अत मे—

हरि हितु से हेत कर, ससार आसा त्याग।
दासी मीरा लाल गिरधर, सहज कर बैराग॥ 33(150 162)

और दूसरी तरफ "रमैया के बिना जीव दुख पाता है" ऐसी अभिव्यक्ति मे रसीमिली दुनिया की अज्ञानता पर खेद—

रमइया बिनि यौं जिवडौ दुख पावै।
कहो कुण धीर बँधावै।
वो ससार कुबधि को भाडो, साध सगत नहिं भावे।
राम नाम की निंद्या ठाणे, करम ही कुगत कुमावै।
राम नाम बिन मुकुति न पावै, फिरि चौरासी आवै।
साध सगत मे कबहुँ न जावै, मूरखि जनम गुमावै।
जन मीरा सतगुरु के सरणै, जीव परम पद पावै।

33(150 160)

मीरा के इष्ट का स्वरूप आलम्बन रूप मे चाहे "मोर मुकुट वाले, बाकी चितवन वाले, गोपी लीला वाले कृष्ण का था" तथापि उसकी भक्ति भावना बहु मुखी, लोकोन्मुखी और लोकमतानुसारी थी।

(2) साधना उसी तरह उनकी साधना पद्धति मे भी हमें उसी तरह की भिन्न भिन्न पद्धतियो और लौकिक समग्रता के प्रमाण मिल जाते हैं। मीरा के मन मे भक्ति का उद्रेक सात वप की उमर से हुआ था और तबसे निरतर भजन कीतन, उपदेश, कथा, अतर्मुखी चितन तथा साधु सतो की सगति मे पुष्ट होकर उसने जो अनोखा और सुदढ रूप धारण किया वह कुछ इस तरह का था कि जो टूट सकता था, मगर नम नही सकता था।

जैसा कि मेडता का धार्मिक और नैतिक परिवेश था, उसमे किसी सम्प्रदाय विशेष को प्रश्रय नही था। दूदाजी स्वय जगदबा के भक्त थे, परम वैष्णव थे, विष्णु का चार भुजा स्वरूप उनके कुल का इष्ट था, हरभूजी का उनका वरदहस्त और स्नेह था, पाबूजी उनके वश गौरव थे, जाम्भोजी जनमत के जाग्रत महात्मा थ। इन सबके साथ पौराणिक और नाथ पथी प्रभाव लोकगत हो चुके थे। साधु-मतो का निरतर आवागमन, भजन, कीतन और सतसग लोक जीवन और राज घराने के लिए ज्ञान और प्रकाश का राजपथ बना हुआ था। ऐसे वातावरण मे सात बरस की मीरा ने जो सस्कार ग्रहण किए वे भावना प्रवण होकर इस कदर पनपे कि मीरा न व्यक्ति रही न कन्या रही, न राजवधू रही, न भक्त रही, न सत रही बल्कि 'लोक' हो गई और अमर हो गई।

कहा जाता है कि उसने सगुण रूप श्री कृष्ण की पत्नी भाव स भक्ति की, कृष्ण को अपना पति माना और उसके लिए किसी की परवाह न की। कोई उसमे नाथपथी जोग साधना, निर्गुनिया ज्ञान साधना की बात भी करते हैं। उसके व्यक्तित्व निर्माण की चर्चा म पहले यह कहा जा चुका है कि परिस्थितिजन्य विशिष्टताओ न मीरा का विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया था। बचपन स उसने अपने को "आभैंगैरयो घरता होल्यो' जैसा अनुभव किया था। अन्तर्मुखता उसकी विशिष्टता थी और धार्मिक वातावरण ने उसके खाली मन को परम तत्व की

अनुभूति से भरने का काम किया।

उसका भौतिक जीवन भी विषादपूण सघर्षों और विषमताओ की कटु कहानी रहा था 44(149)—बचपन की निराश्रित भावना, किशोरावस्था मे वजनाओ का अम्बार, ठाकुर कन्या को राजवधू के रूप मे देखने की परिवारवालो की कामना और आकांक्षाओ के साथ उसके रिक्त मन की भूख का सघष जोकि उसे अधिक शक्ति पूर्वक कृष्ण शरण की ओर ले जाने वाला सिद्ध हुआ। वह मान चुकी थी कि "माता पिता उस कुटुम कबीलो, सब मतलब के गरजी" और इसीलिए शायद सकल्प कर चुकी थी। कि "बरजी मैं अब काह की न रहौं।"

उसके व्यक्तित्व की प्राणशक्ति बडी प्रबल थी, इसी कारण उसने अपने मन के खालीपन को भरने वाली भावना भक्ति और साधु सगत को नही छोडने की टेक, छिन्न भिन्न होने तक निभाई। पीहर मे भी उसकी टेक थी कि—

"तू मत बरजे माइडी म्हनै साधा दरसण जाता" और ससुराल मे भी उसकी टेक रही कि—

"राज किये ज्याना करणै दीजो, मैं भगता री दास।
सेवा साधु जनन की, म्हारे राम मिलन की आस॥"

—यदि उसने अपनी भावना भक्ति जारी रखी होती और साधु सगत की टेक छोड दी होती तो मीरा मीरा नही बनती, मेवाड के राजघराने की एक घटना-विहीन राजवधू होकर रह जाती। उसकी सारी साधना के मेरुदड ये दो ही हैं—एक तो अपनी विशिष्ट शैली मे भावनाशक्ति मे डूबे रहना और दूसरा साधु सगत से विमुख न होना। भावना परकता भी इतनी एकातिक और इतनी तीव्र और अभेद्य कि राज वैभव, ऐश्वय, लोभ, वजना, प्रताडना मृत्यु, घात कुछ भी उसे भेदने मे सक्षम नही रहा।

(ı) निर्गुण मताधारित—जागतिक सघर्षों का झेलते हुए भी उसने अपनी भाव भगति की साधना शायद चारभुजा स्वरूप की स्तुति, विनती और निगु निया सतो की बानी के प्रभाव से आरम्भ की। हो सकता है कि उसके आरभिक पद साधु सतो से सुने हुए या उनके अनुकरण स्वरूप हो। उनमे सामान्य हरि स्मरण के, पुराण आधारित, स्वरूप वणनात्मक तथा सत वानी प्रभावित पद हो सकते हैं—

ओलू थांरी आवै हो महाराज अविनासी।
हो म्हान कबटे दरस दिखासी।
विरह वियोग बन-बन डोलू करवत लूगी कासी।
निसदिन ऊभी पथ निहारूं, कब मोहे धीर बधासी।
कृपा करो म्हारे भवन पधारो नहिं ये जिवडो जासी। 9(409-

आत्मा के विरहिणी अभिप्राय के नमूने कबीर, रैदास और अन्य सतो की बानी मे भी मिलते हैं। आत्मा की परमात्म चेतना की आकुलता, वियोग की व्याकुलता, अन्न पानी मे अरुचि, काया सिंगार से विमुखता—जैसे सतो की बानी मे लक्षण मिलते हैं, वैसे ही मीरा के कई पदो म मिलते हैं। ऐसी अन्तर्मुखी साधना मीरा की मधुरा भक्ति की अपनी विशेषता है जिसमे वह नारी के उन्माद, विषाद अकुलाहट आदि को विशिष्ट रगरूप देकर अभिव्यक्त करती है। कबीर आदि सत तो आध्यात्म के धरातल को छोड नहीं पाए, मगर मीरा ने अपन अबिनासी को 'पति' बनाकर उसमे सगुण तत्त्व भी डाल दिए। बल्कि इस आलम्बन के लिए ससारी पति, कुल, परिवार, मर्यादा सबकी बलि चढ़ा दी। उसकी साधना में अनुभूतियो की अन्तर्मुखता अतुलनीय है—

अरी हौं तो याही उमा है लागी रही री।
कबऊ न पिय मो सो प्रेम जतायौ,
कबऊ न हसि मोरि बहियाँ गही री।
अब कैसे जीवन बनै मोरी आली,
कबऊ न पिय मो सो जिय की कही री॥ 11(76 6)

—अमूत भावना मे लौकिक अभिप्रायो और क्रियाओ का सहज आरोपण मीरा की साधना की ऐसी सम्प्राप्ति है जिसकी सचाई से कोई इनकार नहीं कर सकता फिर भी जिसकी शास्त्रीयता पर प्रश्नवाचक बना रहता है।

वैसे तो कबीर भी 'राम की बहुरिया' बनते हैं और मीरा भी उस छाप पर "प्रेम की चूनर ओढकर भरतार गिरधर" को मानती है फिर भी नारी हृदय की जो कसक, व्यथा और पीडा मीरा की साधना मे है वह कबीर से कोसो दूर है—कबीर भी अपने "राम से मिलने कै ताइ सिंगार करके" बैठते हैं, मगर उसी छाप पर मीरा की साधना कुछ अलग ही है—

आज रगीली रैण प्रीतम पाँवणा हो राज।
तन सनगारूँ सेज सवारु अजन सार धन वारु।
स्याम सुदर तन धारू लेसूँ भावना माराज।
फले मनोहर मन-मन फूले सदा सुहाग पटस तख डुले।
सब दुख भूले फूले करसु वदावना हो राज। 11(78-13)

देखने लायक है अनुभूति की वह तल्लीनता जिसमे राजपूत नारी की पाँवणा पधारण और वदावन के लौकिक तत्त्व सहज अभिव्यक्ति मे उतर आए हैं।

मीरा एक ओर "भगति देख राजी होती है' और "जगती देख रोती है" तो दूसरी ओर "अन्त लोक की अन्त अनुभूति मे किसी अगम लोक में सुख भी पाती है।"

चालाँ अगम वा देस काल देख्याँ डराँ।
भरा प्रेम रा होज, हसाँ केल्या करा॥ 44(365)

और ऐसी अन्तर्मुखता इतनी प्रबल सधी कि माता, पिता, पीहर, सासरा, दड, भय, लोभ सब नाकारा होकर रह गए—

नैण लगे तो घूघट कैसो, लोक लाज तिनका ज्यो तोर्‌यो।
नेकी बदी है सिर पै धारी, मन हाथी आंकुस दै मार्‌यो।
प्रगट निसान बजाय चली, राणा राव सकल जग छोर्‌यो।
मीरा सबल धणी के सरणे, का भयो भूपति मुख मोर्‌यो।

—देखने की बात है कि राजपूत रमणी जो 'सबल धणी' के 'सरणे' हो और 'निसान' के घोष पर चल पडी हो, उसे कौन छेड सकता है। मीरा ने अमूर्त पति को जो लोकतात्त्विक अर्थ दिया है, वह अनन्य है।

माई मेरा पिय बिन अलूणो देस।
राग रग सिणगार न भावै, खुलि रहे सिर के केस।
सावण आयो साहिब दूरे, जाइ रहे पर देस।
सेज अलूणी भवन अकेली, रैण भयकर भेस।
आव सलूणो प्रीतम प्यारे, बीते जोवन वेस। 9(400 8)

—इस टेक मे व्यथा का अनोखापन तो है ही, निगु निया छाप मे लौकिक अभिप्राय और व्यजना—"अलूणो", 'खुलि रहे सिर के केस", "जाइ रहे परदेस", "सेज अलूणी", "सलूणे प्रीतम' —मीरा की विशिष्टता के द्योतक भी हैं।

मीरा की साधना अव्यक्त के प्रति, अमूर्त के प्रति, अभूत की शैली मे भी है और भूत की शैली मे भी है। सभव तो यह है कि साधु-सतो के समागम से उसने आत्मा-परमात्मा के अभूत ज्ञान के तत्त्व और पारिभाषिक अभिप्राय ग्रहण किए थे। वे मेडता के लोक मानस में भी रूढ थे। वे ही उसकी एकातिक अनुभूतियों में सहज उद्‌गार बनकर फूट पडे हैं—'रमैया बिन मो सू रह्यो न जाइ।' और जब 'उस अविनासी महाराज की ओलू आती है तब तो उसकी अन्तर्व्यथा कितने-कितने रूपों में फूटी पडती है कि—

बिरह वियोगिन बन बन डोलू करवत लूंगी कासी।' 'नहिं वे जिवडो जासी' और मैं भेद अभागण काहे को सरजी, पिया मा सूं रहत उदासी' 9(409-13)

जो सिरजन हार है, उसी के वियोग की यह व्यथा मीरा ही उससे कह सकती थी। अपने 'भुवन पति' की वियोग व्यथा में 'भूख मिट जाना', 'नींद का नसाना', 'रैण बिहाणी होना' तो सामान्य लौकिक अभिव्यक्तियाँ हैं, मगर 'बालपनो की प्रीत' वाले 'रमैया का कदे तोल न आने पर' मीरा की जो कष्ट-साधना है, उसे

पहचान पाना कठिन ही है—

आवो मनमोहना जी मीठा थारा बोल।
बालपना की प्रीत रमइयाजी, कदे नहिं पायी थारो तोल।
दरसण बिन मोहि जकन परत है, चित मेरो डांवाडोल।
मीरा कहे मैं भई रावरी, कहो तो बजाऊँ ढोल। 9(410 19)

जो 'आत' भाव मीरा के मन मे है उसके कारण 'तलपत-तलपत कलना परत है,' 'रात दिन पथ देखते' बीतते हैं और 'पलक न पल भर लागी रे', 'रात दिन पिव पिव रटते रटते', 'दूजी सब सुध-बुध भाग गई है।' इसी कारण शायद मीरा ने लोक लाज, कुल मर्यादा किसी की परवाह नही की क्योकि—

मीरा व्याकुल अकुलाणी, पिया की उमग अति लागी री।
9(401-24)

उसकी साधना का लोकानुसारी स्वरूप यह था कि—

अग छीन व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो।
अन्तर वेदन विरह की, वह पीर न जानी हो।
ज्यो चातक घन को रटै, मछली जिमि पानी हो।
मीरा व्याकुल बिरहणी, सुध बुध बिसरानी हो। 9(414 35)

साधना की वेदना मे कष्टो के बयान मे मीरा के पास आलकारिक या कलात्मक अभिव्यक्ति नही है। लोक जीवन की सपाट अनुभूति—जागते रहना, बिकल रहना, आरति सहना, प्रतीक्षा करना खानपान न भाना, अनसिगारे रहना —यही सब बार बार सहज बानी म उभरती गई है। पपैये को बुरा भला कहना, कौए को सदेशवाहक बनाना, उसकी कांव-काव को प्रिय आगमन का सूचक मानना, चातक, मोर, सावण को लाहक मानना—ये सब राजस्थानी लोककाव्यो के बहुत पुराने अभिप्राय या प्रतीक हैं—यथा—

बावहियउ नइ विरहणी दुहुवा एक सहाव।
जबही बरसइ घण घणउ, तबहि कहइ प्रिय आव॥ (ढोलामारू 27)
बावहिया निल पखि था बाढत दइ वइ लूण।
पिउ मेरा मइ प्रीउ की तू प्रिउ कहइ सकूण। (वही 33)
सावण डूभर है सखी किहां मुज पाण आधार। (वही 49)
कउआ दिऊँ बधाइयां, प्रीतम मेलई मुज्झ।
काढि कलेजउ उप्पवउ भोजन दिउली तुज्झ। (वही 75)
हूँ बलिहारी सज्जणां सज्जण मो बलिहार।
हूँ सज्जण पग पानहों, सज्जण मो गलहार। (वही 176)
चाल सखी निण मदिर रहूँ, सज्जन रहियउँ जेण। (वही,359)

और, उन सबका अपने ढग से उपयोग करते हुए मीरा ने अपनी साधना को वाणी दी है—

"ज्यो चातक घन को रहै, मछली जिमि पानी हो।"
"भूख गई निदरा गई, पापी जीव न जावे हो।" 9(410-13)
"रे पपैया प्यारे कबको बैर चितार्‌यो।
दाहया ऊपर लूण लगायो, हिवडो करवत सार्‌यो॥" 9(408-11)

"पपइया रे पिव की वाणी न बोल।
सूणि पवेली बिरहणी रे, थारी राखेली पांख मरोड।
चाच कटाऊँ पपइया रे, ऊपरि कालर लूण।
पिव मेरा मैं पिव की रे, तू पिव कहे सकूण।" 9(419-53)

प्रीतम कू पतिया लिखूं कउआ तू ले जाइ।
प्रीतम जी सू यू कहै रे, थांरी बिरहणि धान न खाइ॥ 9(419 53)

निरतर सालती पीडा का अनुभव ही मीरा की साधना का सार है—वह भी अमूत के साथ सुरति की पीडा—

मीरा मनमानी सुरत सैल असमानी।
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी।
ज्यो हिये पीट तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी।
रात दिवस मोहि नीद न आवत भावै अन्न न पानी॥ 9(425 78)

और वह पीडा भी ऐसी कि उसके लिए मीरा—

'भाता पिता सुत बधू दारा, ये पांव मे बेरी' 11(93-59)

मानकर उन्हे तोडने का सकल्प रखती है। सकल्प भी बहुत पुराना है—

"सात बरस री मैं श्रीरग सेविया, जद पायो सुख सुहाग,
मीरा नै प्रभु मिल्याजी भव भवरा भरतार।" 11(93 64)

और वह भरतार भी ऐसा कि—

बलि जाऊँ चरणा की दासी।
यां ही मेरे गगा, यां ही मेरे जमणा, यो ही है तीरथ कासी।
हरिजी मेरा म्हें हरिजी की, जगत करा किन हासी।
मीरा के सिर उपरि बिराजै एक सखेड अविनासी।
11(107-115)

एक पल भी इस अविनासी के बिना प्राण दूभर हो जाते हैं—

प्रभूजी तुम दरसण बिन दोरी।
मेरी लगन लगी है राम सूं और सकल सूं तोरी।

और

पीया मोसू मुख न बोले, मैं किणसू विध जीऊँ।
मैं तो प्राण तजत हूँ अब ही, भर बटकी विख पीऊँ। 11(106 111)

उस दूभरता मे वह—

फारूंगी चीर करूं गलकथा, रहूँगी बैरागण होयरी।
चूरियां फोरूँ, मांग बिखेरूँ, कजरा मैं डारूँ धोयरी।
33(114 48)

—ऐसा करके 'जोगन बन कर' 'बन-बन भटकने' को भी तैयार है, मगर 'कुल मरजाद' 'पीहर-सासरे की लाज' निभाने को तैयार नही है। ऐसी अटलता, अविचलता और एकात निष्ठा मीरा की साधना के निर्गुनिया रूप मे उभरती है।

(ii) सगुण मताधारित—दूसरी ओर सगुण वैष्णव मत से प्रभावित उसकी साधना म साधु सगति, भजन, कीर्तन, नितनेम, दरसण, कीर्ति स्मरण, गुणवर्णन, लीला गान—की बातें दो रूपो मे मिलती हैं। एक तो प्रेम भावना की अनन्यता के साथ और दूसरे दासी भावना के साथ। साधु-सगति मीरा के साधना-पथ का कटकाकीर्ण क्षेत्र था। यदि वह अपनी भक्ति कायम रखती और साधु सग की टेक छोड देती तो उसके जीवन का सघष मिट जाता। मगर उसकी वह टेक बहुत अडिग थी—

पीहर मे भी वह—

'तू मत बरजे माइडी म्हनै साधो दरसन जाती
राम नाम हिरदै बसै, माहिले मदमाती।" 33(106-20)

कहकर उस टेक को पूरा करती थी, और सासरे मे भी उसने वही टेक पकड रखी थी—

"राज किये ज्याना करणे दीज्यो, म्हें भगतां री दास।
सेवा साधू जनन की, म्हारे राम मिलण की आस।"
33(106 29)

उसके लिए साधुजन ही आत्म कल्याण के माध्यम थे और वह उनकी सगति किसी भी कीमत पर छोडने को तैयारी नही थी।

उसकी नजर मे—

"साध माता पिता कुल मेरे, सजन सनेही ग्यानी।
संत चरण की सरण रैनदिन, सत कहत हू बानी।" 33(107 30)

—ऐसी लगन थी—साधु सगत के प्रति। निश्चित रूप से उसके बचपन की भावात्मक रिक्तता को साधु-सगत मे आश्रय मिला था और वह उस आश्रय को

आजीवन नहीं छोड सकी, चाहे उसकी वह टेक निंदा, वर्जना, प्रताडना, अपमान आदि का कारण बनी।

लीला गुण-गान में उसने विष्णु के पौराणिक स्वरूप का, अवतारो का, कल्याण-कारी और पोषक भावना का वैष्णव शैली मे स्मरण किया है जहाँ वे भक्तवत्सल हैं, दया निधान, कृपाल, स्वामी, भुवनपति, विपदविदारण, राम आदि हैं। विनय और प्रार्थना साधन बने हैं—कही दास भावना उभरती है तो कही भक्त का समपण और श्रद्धा ही व्यक्त होती है। हो सकता है मेडता के चारभुजा मदिर मे ऐसे प्राथना के पद उसके सुने सुनाए हो या रणछोड के मदिर मे हताश मीरा के वे उच्छवास भी हो। यथा—

'मन रे परसि हरि के चरण जो कि 'सुभग शीतल कँवल कोमल त्रिविध ज्वाला हरण' हैं। 33(95 1) ऐसे विष्णु के स्मरण के साथ नृसिंह अवतार, ध्रुव वाले विष्णु वामन अवतार, राम अवतार और कृष्ण अवतार का स्मरण है। 33(95 1) ऐसे पदो में मीरा के साथ 'दासी' का सम्पुट लगा हुआ है। कही कुछ भी नहीं है—'यह छवि देख मगन भइ मीरा मोहन गिरधारी को।' कही वे 'सतन सुखदाई प्रभु भक्त वत्सल' हैं 33(96 3) मगर, प्रमुख स्वर यहाँ भी 'निराश्रित के आश्रय', 'स्वामी' और 'प्रियतम' का है—

हरि मोरे जीवन प्रान अधार।
और आसिरो नाहिं तुम बिन, तीनूं लोक मँझार।
आप बिना मोहिं कुछ न सुहावै, निरखो सब ससार।
मीरा कहै मैं दास रावरी, दीज्यौ मती बिसार। 33(96 4)

—जहाँ 'दशन की भूखी' या प्यासी' वाली भावना है वहाँ आलम्बन 'गिरधर' का है—

'मेरो मन बासिगो गिरधरन लाल सो' और उसके साथ लीला स्मरण और तब 'मीरा के प्रभु गिरधर हो, सुनिए चित लाय।

तुम्हारे दरस की भूखी हो मोहिं कछु न सुहाय। वही (97-6)

—यह 'प्रभु' भावना और 'दशन की भूख' उत्तरोत्तर विकसित होकर 'दाम्पत्य भावना मे खिल उठती है जो मीरा की विशिष्टता है।

ऐसा कहा जा सकता है कि 'प्रभु' भावना वाले पद या तो आरभिक अवस्था के हैं और कुछ अतिम अवस्था वाले भी हो सकते हैं—खास करके वे जिनमे निराशा, हताश और गिडगिडाहट झलकती है। 'दाम्पत्य भावना' वाले पदों का समय हम 'किशोरावस्था से लेकर भोजराज की मृत्यु-पूर्व' तक का मान सकते हैं—यानी लगभग 11 वर्ष की अवधि के (विक्रमी 1579 तक) और वे पद ही मीरा की मुख्य साधना के स्वर माने जाते हैं जिनमे वैष्णव भजन, कीतन, गुणगान आदि से

भिन्न अनुभूतियों की तीव्रता, एकनिष्ठता, ध्यान मग्नता और अद्वितीयता कही जाती है—उनकी शुरूआत कुछ ऐसे होती है—

निपट बंकट छबि अटके, मेरे नैन।
देखत रूप मदन मोहन को, पियत पियूष न मटके।
बारिज भवाँ अलक टेढी मनो, अति सुगंध रस अटके।
टेढ़ी कटि, टेढो करि मुरली, टेढो पाग लट लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी, गिरधर नागर नट के। 33(97 7)

और अपने कृष्ण के रूप पर लुभाने की वह सीमा इस कदर बढती चली गई कि 'या मोहन के मैं रूप लुभानी' से होकर 'तन मन धन गिरधर पर वारूँ, केवल लपटानी' (वही 8) से भी उसकी बाढ़ रुकी नही बल्कि उत्तरोत्तर बढती गयी—

"जब से मोहि नदनदन दृष्टि पर्‌यो माई।
तब से परलोक लोक, कछू न सुहाई।' (वही 9)

और

"गिरधर के अग-अग मीरा बलि जाई।" (वही)

—यह बलिहारी ऐसी सीमा तक होती रही कि 'रोम रोम आँखें बनकर उसमे अटक गए और वापस नही आए सो नहीं ही आए। (वही 10) 'लोक कुटुम गरज्जि बरजहीं बतिया कहत बनाइ' मगर मीरा क वे नन' 'चचल निपट अटक नहि मानत, परहथ गये बिकाई। (वही) ऐसी सीमा आन पर मीरा राजकन्या नहीं-नही लडकी नही रही, राजवधू नहीं रही सिर्फ कृष्णमयी हो गई। ऐसा भावनात्मक विकास 'भली कहो कोई बुरी मैं सब लई सीस चढाई' म झलकता है।

ऐसी 'कृष्णमय' अवस्था मे मीरा की जो भक्ति साधना पनपी वही उसका अमूल्य धन है। फिर तो—

आली री मेरे नैणा बान पडी।
चित चढी वह माधुरी मूरत, उर बिच आन अडी। (वही 11)

उसके बिना—

कसे प्राण पियाबिन राख, जीवन मूर अही।
मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगडी। (वही)

ऐसी भावना प्रवणता में—जहाँ मीरा को लोकलाज, कुल मर्यादा आदि की सुध भी नही थी, तो उसे आचार्यों और शास्त्रियो के सम्प्रदायवाद का ध्यान कैसे रह सकता था? वह तो सिर्फ प्रवहमान भावना बन गई थी जिसमे व्यथा, वेदना, बाधाएँ, सांसारिक रोडे सब आतुरता, व्याकुलता और अभिलाषा मे आप्लावित हो गए, बहते चले गए। तभी मीरा की भक्ति साधना निर्गुणिया—सगुणिया शलियो

की परवाह नहीं करती। लोक मे प्रचलित और साधु-सतो से गृहीत जो कुछ भी मीरा सेंजो पाई वही उसकी अभिव्यक्ति का साधन बन गया। तभी वह यह भी कहती है कि—

'असा पिया जाण न दीजै हो।
तन मन धन करि वारणै, हिरदे धरि लीजै हो।
आव सखी मिलि देखिए, नैणां रस पीजै हो।
जिह-जिह विधि रीझै हरी, सोई विधि कीजे हो।
सुंदर स्याम सुहावणा, मुख देख्या जीजे हो। 33(99-13)

और "सुन्न महल मे समाधि लगाकर अपने प्रिय का अमृत अकेली भी पीना चाहती है"—

नैनन बनज बसाऊ री, जो मैं सहिब पाऊँ री।
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न लऊँ री।
त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहाँ से झाकी लगाऊँ री।
सुन्न महल मे सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊँ री। (वही 12)

एक तरफ वह चैतन्य मतियो की तरह अपने गिरधर के आगे नाचती भी है, मगर वेशभूषा निगुनियो को लेकर—

गिरधर आगे नाचूगी।
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊ, प्रेमीजन को जाचूगी।
प्रेम प्रीत की बाँधि घुघरू, सुरत की कछनी काछूगी।
लोक लाज की कुल मरयादा, यामे एक न राखूगी।
पिव के पलग जायौ ढूगी, मीरा हरि सग राचूगी।

(iii) सगुण निर्गुण में अभेद मीरा के पास सगुण निर्गुण का भेद नहीं है। वहाँ सिफ मन का उमडता दरियाव है, जिसकी लपेट मे घर, ससार, मरजाद सब डूबकर रह गए हैं और ऐसी अवस्था आ गई है कि—

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई। 33(100-5)

—यही अवस्था

"ऐसे वर को क्यू वरूँ, जो परणे अर मर जाय।" के विरोध मे
"वर परणीजै सावरो म्हारो चूडलो अमर हो जाय।"
—से व्यक्त होती है।

और उस 'पति भाव की बेल को' मीरा ने 'आँसुओं से सींच-सींचकर बड़ा किया' था क्योंकि उस 'भाव को परिपक्व करने के लिए' उसे बहुत संघर्ष झेलना पड़ा था—

"लोग कुटुम्बी गरजि बरजहिं, मानत परहथ गई बिकाय।"
9(405 2)

"सखियन मिलि कै सीख दई, मन एक न मानी हो।"
(वही 414-35)

"कुल कुटुम्बी आन बैठे, मानहुँ मधुमाखी।
दासी मीरा लाल गिरधर, मिटी जग हासी। 33(103-22)

"लागैं पीहर सासरोजी, माइ तणो मो साल।
सब ही लाजै मेडतियाजी, थासू बुरो कहे ससार। 33(105-29)

मगर, अन्तत मीरा का अटल निश्चय रहा कि—

तेरो कोइ नहिं रोकणहार, मगन होउ मीरा चली।
लाज सरम कुल की मरजादा, सिर सैं दूरि करी। वही (108-33)

और

राणाजी म्हे तो गोबिंद का गुण गास्या।
चरणाम्रित का नेम हमारो, नित उठ दरसण जास्यां।
हरि मंदिर मे निरत करस्या, घुघरिया घमकास्यां।
राम नाम का झाझ चलास्या, भव सागर तट जास्यां।
(वही 109-34)

सीसोद्या रूठो तो म्हारो काई करसी।
म्हैं तो गोबिंद का गुण गास्यां हो माइ। (वही 110 38)

—ऐसी टेक के परिणामस्वरूप मीरा ने अपमान, प्रताड़ना और प्राणघात भी सहे—

"राणाजी थें जहर दियो मैं जाणी।"

जैसे—कचन दहत अगिन मे निकसत बारा बाणी। मगर,

—वसे ही मीरा खरी उतरी और साधना के संघर्ष का एक निश्चित दिशा मिली—

लोक लाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी।
अपणे घर का परदा कर ले, मैं अबला बौराणी। 33(111-41)

फिर ले उस 'बौराई' ने भी खुला विद्रोह कर दिया—

बरजो मैं काहू की नाहीं रहौं। और
तन मन धन मेरो सबही जावो, भल मेरो सीस लहौ। 9(404-1)

मगर, उस बौराएपन से जीवन का सघष, मन की व्यथा, प्रतिष्ठा की आतुरता, आत्मा की व्याकुलता न मिटी, न कम हुई। विरह निवेदन के, मर्मभेदी व्यथा के, पद सभवत उसी अवधि के हैं जब मीरा ने चित्तौड की कुल मर्यादा सिर से उतार फेंकी और द्वारिकावास कर लिया। बीच मे मेडता का पतन और वीरमदे के दर बदर होने की परिस्थितियो ने एक बार और उसकी साधना को जबदस्त धक्का पहुँचाया होगा। और उसकी दीनता भरी गिडगिडाहट फूट पडी होगी—

हरि बिण कूण गति मेरी।
तुम मेरे प्रतिपाल कहिए, मैं रावरी चेरी।
आदि अत निज नाम तेरो, हिया मे फेरी।
बेरि बेरि पुकारि कहूँ, प्रभु आरती है तेरी।
यो ससार विकार सागर, बीच में घेरी।
नाव फूटी प्रभु पाल बाँधो, बूडत है बेरी। 9(281 9)

या कि

अब मैं सरण तिहारी जी, मोहि राखो कृपा निधान।
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढी बिमान।
और अधम तारे बहुतेरे, माखन सत सुजान।
कुबजा नीच भीलनी तारी, जाने सकल जहान।
कहें लगि कहौं गिणत नहिं आवै, थकि रहे वेद पुरान।
मीरा कहे म्हे सरण रावरी, सुनियो दोनू कान। 9(306-78)

और भी

हम सुणी छै हरि अधम उधारण।
अधम उधारण सब जग तारण।
गज की अरजि गरजि उठि ध्यायो, सकट पर्‌यो तब निवारण।
द्रोपदी सुता को चीर बढायो, दुसासन को मान पद मारण।
प्रह्लाद की प्रतिज्ञा राखी, हरनाकुस नख इन्द्र विदारण।
रिख पत्नी पर किरपा कीन्ही, विप्र सुदामा की विपति विदारण।
मीरा के प्रभु मो बदी पर, एती अबेर भई किण कारण।
9(307-82)

अन्तत द्वारिका वास ही मीरा की साधना का अन्त रहा—

राय श्री रण छोड दीज्यो दुवारिका को बास।
सख चक्र गदा पद्म तें मिटे जग के त्रास।

सकल तीरथ गोमती में करत रहत निवास।
सख झालरि झाँझ बाजैं, सदा सुख की रास।
तजियो देस, बेस, पति ग्रह तज्यो सम्पत्ति राजि।
दासी मीरा सरन आई, तुम्हे अब सब लाजि। 9(479 3)

और नागरीदास के प्रमाण पर जब रणछोडजी का मंदिर छोडकर वापस मेवाड या मेडता आने की परिस्थिति बनी तब उसकी अंतिम अरदास ऐसी रही कि—

हरि, काटि हो जान की पीर।
द्रापदी की लाज राखी, तुम बढ़ायो चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि, धर्‌या आप शरीर।
हरिण कस्यप मारि लीनैं, धर्‌यो नाहिन धीर।
बूडते गज ग्राह तारयो, कियो बाहर नीर।
दास मीरा लाल गिरधर, दुक्ख जहाँ तहाँ पीर। 9(479 4)

उसके साथ ही जिस अंतिम पद के साथ शरीरपात हुआ—

सजन, सुधि ज्यौं जाने त्यो लीजे।
तुम बिन मेरे और न कोई, कृपा रावरी कीजै।
दयोस न भूख रैन नहिं निदरा, यह तन पल पल छीजै,
मीरा प्रभु गिरधर नागर, अब, मिलि बिछुरन नहिं कीज।
9(480 4)

और वस्तुत "मिला का बिछुरन नहीं हुआ' और एक भावना जीवन्त होकर लोकव्यापी हो गई, युग जीवी हो गई।

इस तरह मीरा की आत्मसाधना को परमात्मा से तादात्म्य पाने मे पूरा जीवन काल लगा। मोटे रूप से कुल 48-49 वर्ष की आयु में से 41 बरस उसने साधना मे बिताए— यही इस बात का अनुमान करने का काफी है कि वह हाड मांस की ससारी उपज नही थी। कुछ विशिष्ट ही थी कि जिसका कलेवर भावना-ही भावना का बना था। वह केवल अन्तमनवासिनी थी, इसीलिए बाहरी दुनिया की कोई बात उसे छू नही पाती थी। जान-बूझकर उसने कोई विद्रोह नहीं किया बल्कि जो कुछ घटा और जो कुछ हुआ वह केवल बाहरी दुनिया मे ही घटा मीरा तो केवल निमित्त रही, इसलिए कि वह कायिक रूप से उन घटनाओ के प्रति सवेदनशील थी ही नही। पीहर मे माई बाप बरजते रहे कि सहेलियाँ सिखाती रही कि ससुराल मे मर्यादाजीवी लोक सीख देते रहे, पर सीख लेने वाला काया मे स्थित था ही नहीं तो कौन सुनता और कौन अपने को सुधारता!

वह भावनाजीवी मीरा उत्तरोत्तर अति भावमयी होती गई जैसे-जैसे परि-

स्थितियाँ उसे सघर्ष और व्यथा देती गईं कि अ तत रण छोड की शरण मे वह जगत् व्यापी हो गई।

(3) ईश्वरीय अनुभूति के तत्त्व—"शृगार की मधुर कामना का आलम्बन जब लौकिक पुरुष न होकर अलौकिक पुरुष सत्ता का अपार्थिव देवता होता है तब वह दिव्य शृ गार भावना कहलाती है।" 23(113) मीरा की मधुरा भक्ति कही रिमझिम प्रेम वृष्टि, कही आवेगमयी लहर और कही खिन्नता और विषाद भरी उतराई के साथ उत्कट हठ और उमडता ज्वार लेकर इस कदर आवेशन करती है कि वहा भावना-ही भावना प्रखर रहती है और शब्द सौंदर्य या उक्ति चमत्कार जैसी बात ध्यान मे ही नहीं आती। यानी कि मीरा की वाणी कही दूर अन्त स्थल की गहराई से अपनी वेदना, व्यथा, खिन्नता, आशा, प्रतीक्षा, खीझ, रोष, हताशा आदि के साथ सहज स्वाभाविक उद्रेक पाती है और जैसे वह उसके अन्तस्थल से फूटती है, वैसे ही श्रोता या पाठक के मम मे उतर जाती है।

मीरा की दिव्य अनुभूति के कुछ आयाम स्पष्टतया उनके पदो मे परिलक्षित हो जाते हैं और वे उनकी साधना के स्वायत्त विकास के सोपानो का परिचय देत हैं। सामान्य लोकजीवन मे जैसे हम अपने किसी स्नेही-जन का परिचय पाते हैं, गुण बोध करते हैं, नाम स्मरण करते हैं, और घनिष्ठ होते-होते एकाकार हो जाते हैं। मीरा की प्रभु भक्ति में भी ऐसे ही लोकतात्त्विक विकास के आयाम हैं जिनमे प्रमुख हैं—

(i) दशन परसन—परिचय, गुणगान, नाम स्मरण, आशा, आकाक्षा आदि के साथ हर्ष आदि।

(ii) प्रतीक्षा विरह—साधना, गुण स्मरण, व्यथा, आतुरता आदि।

(iii) टेक और हठ—अटल निष्ठा, एकागी प्रेम, खोज अनुसरण, पीडा आदि।

(iv) विनय और दासता—प्रार्थना, खिन्नता, निराश्रयता कृपाकाक्षा आदि।

(v) पुनर्जन्म का कौल—अटूट अनत नाता, अमर सम्बन्ध आदि।

(i) दरसन परसन—मीरा की अनुभूतियाँ मानवीय सवेदनाओ के आस्वादन वाले धरातल की हैं द्वैत दर्शी या तटस्थ अवलोकनकर्ता की वे नहीं लगती। उनके लिए जो इष्ट है—चाहे वह अविनासी, अलख, प्रभु, गिरधर, जोगी जो कुछ भी है, वह परोक्ष बनकर 'वर्णित नही हुआ है, वह 'अनुभूत' होकर 'बिम्बित' हुआ है। तभी प्रिय के दशन, परिचय रूप निरूपण के उनके पदो मे भी पूरी भाव प्रवलता मिलती है, यथा—

सखि मेरो कानूडो कलेजा री कोर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुडल की झकझोर।

बिंदावन की कुंज गलिन मे, नाचत नंद किसोर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल चितचोर।

ऐसे पदो मे आरभिक परिचय की अवस्था खोजी जा सकती है कि यहाँ 'चितचोर' 'चरण कँवल' हैं फिर भी 'वह कानूडो' 'कलेजे की कोर' बना हुआ है। परिचय से आगे 'मोहित होने' 'लुभाए जाने' की अवस्था भी उतनी ही भाव प्रवण मिलती है—

निपट बंकट छवि अटके, मेरे नैन।
देखत रूप मदन मोहन को पियत पियूख न मटके।
बारिज भवाँ अलक टेढी मनो, अति सुगध रस अटके।
टेढी कटि, टेढी करि मुरली, टेढी पाग लर लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी, गिरधर नागर नट के। 33(97 6)

ऐसे जिस लुभावने रूप से परिचय प्रगाढ होता चला गया है, उसमे 'कमल-दल लोचन हैं, 'बाकी चितवन' है 'मद मुसकानि' है, 'मीठी मुरली की बानी है" और मीरा उस रूप के "चरण कमलो से लिपटानी' है 33(98 8)।

परिचय के साथ प्रति परिचय की उत्कठा भी है—

पिया तेरे नाम लुभाणी हो। 9(420 56)

और इसके साथ 'पत्थर तैराने', 'गणिका को तारने', 'गज की पशु योनि छुडवाने' की बात कहकर 'नाम महातम गुरु दियो, परतीत पिछाणी हो' से 'अमूर्त प्रियतम' से कामना की गई है कि 'मीरा दासी रावकी, अपणी कर जाणो हो।" (वही)

परिचय प्रति परिचय के बीच कई तरह की आशाओ आकांक्षाओ, शकाओं की सभावना रहती है। मीरा के पदो में वे सब यत्र-तत्र बिखरी भावनाएँ व्यक्त हुई मिलती हैं—जैसे साधना का नतीजा न मिलने पर व्यग्रता—

जावा दे, जावा दे, जोगी किण का मीत।
सदा उदासी रहे मोरी सजनी, निपट अटपटी रीत।
बोलत बचन मधुर से मानूं जोरत नाहीं प्रीत।
मैं जाणूं वा पार निभेगी, छाडि चले अध बीच।
मीरा के प्रभु स्याम मनोहर, प्रेम पियारा मीत। वही (411 61)

कुछ ध्यानावस्था के बाद जब साधना में प्रत्यान्तर आता है, तब की दशा है यह, जो व्यग्रता उत्पन्न करती है। अवस्था निरूपण में भावना प्रवणता ही प्रधान है और अभिव्यक्ति माध्यम मे नाथपथी 'जोगी' और 'स्याम मनोहर' सगुण दोनो ही वाहक बन रहे हैं। मीरा की यही विशिष्टता थी कि वह भावना का आस्वा-

दन कर रही होती थी, अन्य बातो की उसे परवाह नही होती थी, क्योकि जैसा कहा जा चुका है, वह कवयित्री नही थी, आचार्य नही थी, एक प्रेमल भावना थी।

परिचय प्रति परिचय के बीच नाना रगी भावनाओ के उतार-चढाव के साथ मीरा की अन्त साधना प्रगाढ होती चली गई है। उसे प्रियतम की हर चीज लुभावनी और आकपक लगती है। उस आकर्षण का उत्साह और उससे सलग्न रहने का भाव भी प्रखर होता जाता है, यथा—

नैणा लोभी रे बहुरि सकै नहिं आइ। 33(98-10)

"रोम रोम नख सिख ललक ललक कर ललचाते रहते हैं" और इस दशा तक पहुँचा देते हैं कि "प्रभु गिरधर के बिन, पल भर रह्यो न जाए" प्रेम को निरतर देखते रहने की उत्कठा और अभिलाषा इस सीमा तक बढती है कि—

मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहें बिगडी। वही (11)

दूसरे शब्दो में दरसन परसन अभिलाषा के लिए मीरा 'एकटक ध्यान लगा कर बैठी' रहती है।

नैनन बनज बसाऊँ री, जो मैं साहब पाऊँ। वही (12)

किस सम्प्रदाय के किस अभिप्राय के जरिये भावना उजागर होती है, यह मुख्य बात नहीं है, मुख्य बात है कि प्रियतम के दरस-परस की ललक प्रकाशित होती है या नहीं। मीरा ध्यानावस्था मे 'पलक भी नही झपकती' कि नैनो मे बसे प्रेम की छवि मिट न जाए! और,

त्रिकुटी महल मे बना है झरोखा तहाँ से झाँकी लगाऊँ री।
सुन्न महल मे सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊँ री
33(99 12)

अपने प्रिय को हर हालत मे रिझाए रखने और पास बनाए रखने की ललक कितनी सहज अनुभूति के साथ उभरी है कि—

असा पिया जाण न दीजै हो।
तन मन धन करि वारणै, हिरदे धरि लीजै हो। वही (13)

और

जिहि जिहि विधि रीझै हरी सोई विधि कीजै हो।
मीरा के प्रभु रामजी, बड भागड रीझै हो। वही

और भक्ति की वह भावना इस सीमा तक गहरा जाती है कि 'मगन भई

मीरा दुनियावी चेतना से एकदम परे हो जाती है—

मैं तो सावरे के रग राची ।
साजि सिंगार बाँधि पग घुघरू, लोक लाज तजि नाची ।

वही (100-16)

और ऐसी अवस्था आने पर ससार और सासारिक वर्जनाओ के साथ सघर्ष की शुरुआत हो जाती है। ससारी सघर्ष और आतरिक ऊहापोह के बीच मीरा की अन्तर्मुखता, प्रेम की विकलता, प्रिय दरसन की आकुलता, प्रतीक्षा भी बढ़ती चली जाती है—

(ii) प्रतीक्षा और विरह

मैं तो म्हारा रमैया नै देखबो करूँ री।
तेरे ही उमरण, तेरो ही सुमरण, तेरो ही ध्यान धरूँ री।
जहाँ जहाँ पाव धरणी पर, तहाँ तहाँ निरत करूँ री।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरणाँ लिपट परूँ री।

वही (101)

स्मरण, ध्यान और उसके साथ चैतन्य मतीय नत्य प्रतीक्षातुरता और मग्नता की अनोखी भाव व्यजना कर रहे हैं। वैसे ही 'गिरधर के आगे नाचना', और 'उसको रिझाने' की तैयारी जिसमे 'प्रेम प्रीत के घुंघरूँ' और 'सुरत की कहानी' वही (100) मिलकर एकाकार हो गए हैं, यह बताते है कि मीरा के परिवेश मे वैष्णव या सत-नाथ मतों की धारणाए समन्वित होकर एक लोकमत मे गल ढल चुकी थी।

अपने प्रिय के लिए समपण की निष्ठा मे मीरा तत्कालीन नारी मर्यादा का इस तरह से निरूपण करती है—

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।
रैण पड़े तब दी उठि जाऊँ। भोरि भये उठि आऊँ।
रैण दिना वाके सग खेलू ज्यू त्यू वाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै सो ही पहरूँ जो दे सो ही खाऊ।
मेरी उनकी प्रीत पुरानी, उण बिन पल न रहाऊँ।
जहाँ बिठावे तित ही बैठू बेचे तो बिक जाऊँ।

ऐसे सर्वांग समर्पण के साथ ही मधुरा भावना पक्की हो जाती है। बल्कि 'चाकर रहबर बेवल दरसण पान' तक की सीमा तक भी वह समपण चला गया है 33 (147 154)। प्रिय के पास चाकर के रूप में रहकर, केवल बाग की सीमा तक अपने को सीमित रखकर गुणगान

के साथ उनको रिझाए रखने से ही वह सतोष नही पा गयी अपितु 'कुसुभी सारी' पहनकर 'दरसण पाने की अभिलाषा' की सीमा तक उसका समपण भाव जाता है। उसमे भी उसकी विवशता ही है कि—

राणा जी म्हारी प्रीत पुरबली, मैं कांई करूं।
राम नाम बिन घडी न सुहावे, राम मिले म्हारा हियराय ठराय।
33(111-42)

यह उसकी विवशता ही है कि ससारी बातो का प्रवेश उसके मन मे होता ही नही। वहां तो केवल प्रिय का स्मरण ही छाया हुआ रहता है—

मैं गिरधर रग राती सैया।
पचरंग चोला पहर सखी मैं, झिरमिट खेलन जाती।
ओहि झिरमिट मे मिल्यो सावरो, खोल मिली तन गति।
वही (103-22)

उसकी निष्ठा कितनी सच्ची है कि—

मैं अपणे सैया सग साची।
अब काहे की लाज सजनी परगट ह्वै नाची।
कुल कुटुम्बी आन बैठे मनहुं मधुमाखी। वही (103-22)

ऐसी एकात निष्ठा के सामने वह अनुभव करती है कि "मीरा लागो रग हरि, औरन रग अटक परी।" और वे 'औरन रग' ससार, वैभव, पत्नी धम, पुत्री धम, जगत व्यवहार सब थे जो 'अटक मे पड गए।' अब तो 'कोई कुछ कहै, मन लागा,' सोने मे सुहागा जैसे मन-भावना से एकाकार हो ही गया, सतगुरु शब्द सुनकर सोया मनवा जाग गया, तागे की तरह नाते रिश्ते, कुटुम, कबीले के बधन टूट गए और तुलसी की तरह सकल्प हो गया कि—

अब लौं नसानी अब ना नसै हौं।
राम कृपा भवनिसा सिरानी, जागे फिर न डसै हौं।

—मीरा जाग गई तो जाग ही गई। कृष्ण को, परमात्मा को पति के रूप मे पाकर कभी मिलन की आशा, कभी आगमन की प्रतीक्षा, कभी आकाक्षा के झकोरो मे लहराते रहने म ही उसकी इयत्ता बध जाती है—कभी तो—

'दरस बिन दूखण लागे नैण', वही (132 103) कभी "म्हारा जनम-जनम रा साथी, थांने नहिं बिसरू दिन-राती" वही (106), कभी "राग मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोवू बाटडियां' वही (108) तो कभी 'म्हारे घर होता जाज्यो महाराज" के साथ 'अब के जिन टाला देजा वो, सिर पर राखू विराज" वही (109) और फिर भी साक्षात्कार न होने पर, 'थे, तो पलक उघाडो दीना

नाथ, हाजिर नाजिर कब की खडी वही (137-119) वाले मुकाम मीरा अनुभव करती है और कभी पल-दो-पल का साक्षात्कार होने पर उमगो और आशाओ से हिलोर लेने लगती है—"सुनी हो मैं हरि आवन की" बात सुनकर 'महल चढना, प्रतीक्षा करना' वही (144-141) और अनुभव करना कि 'जैसे धरती मेघ का स्वागत करने को उदयत हो—नये नये रूप धारण करके, विविध प्रकार की किलकारियो के साथ वैस ही मीरा का रोम रोम आगत की प्रतीक्षा मे उत्सुक है। मिलन की वह घडी उमगो और सुखो की घडी बन गई है कि—

"आज आनद उमागें भयो है, जीव लहै सुखधाम।
पाँच सखी मिलि पीव परसि कै, आनद ठामूठाम।
बिसिर गई दुख निरखि पिया को सुफल मनोरथ काम।
वही (142)

—वैसी अनुभूति के क्षण बहुत कम और बडी मुश्किल से आते हैं कि—बदरिया जल भर लाती है, छोटी छोटी बूदो से मन काया भीग जाती है। पवन, कोयल सब आनद मगल गाने लगते हैं और—सेज सवारी पिय घर आए, हिल मिल मगल गायो वही (145-147)। और 'रग रगीली होली भी मच जाती है।' वही (146) प्रियतम के हाथो मीरा रग मे भर दी जाती है। चोवा, चदन अरगजा, केसर की गागरें की गागरें उस पर उलट जाती हैं।[1](वही) रतन न्यौछावर किए जाते हैं बधावणा होता है, आरती होती है—सब कुछ जो ऐसे मगल अवसर पर राजघरानो म परम्परित रूप से होता रहा है। मगर, सूरदास के अनुसार 'ऐसा पल का जीना ही काफी था'—धन्य सूर एको पल या सुख, का सत कल्प जिये।

मगर, मीरा को उसके बाद भी जीना पडा। बाहरी सघर्ष भी सहना पडा और भीतरी द्वन्द्व भी सहना पडा। पल भर का 'जोगिया' का दरसण सहेज कर नहीं रखा जा सका—

मैं जाण्यो नहिं प्रभु को मिलण कैसे होइ री।
आए मेरे सजना फिरि गए अगना, मैं अभागण रहि सोइ री।
फारूँगी चीर करूँगी गल कथा, रहूँगी बैरागण होइ री।
चुरियाँ फोरूँ माँग बिखेरूँ, कजरा मैं डारूँगी धोइ री।
वही (114 48)

एक तरफ ऐसी खिन्नता, ऐसी व्यथा और दूसरी तरफ माइतो की तरफ से यजना—

माई कहे सुत धीयडी, काहे गुण फूली।
सोक सोवे सुख नींदडी, थूं बयूं रैणज घूली। वही (106-28)

दूसरी तरफ से सांसारियो के वजन, तजन और सीख सदेस की—

बाल सनेही गोबिंदो, या तो साध सता को काम।
थें बेटी राठोड की, था ने राज दिया भगवान। वही (29)

और,

था ने बरज बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी।
राणे कोप कियो था ऊपर, साधां मे मत जा री। वही (30)

यहाँ तक कि "राणा जी ये क्यानें राखो म्हा सू बैर" की और "राणा जी थें जहर दियो मैं जाणी" वही (37-41) के बीच मीरा की शेष सारी अनुभूतियाँ या तो वियोग जनित पीडा की है या फिर अपनी टेक, अपना हठीलापन बनाए रखने की हैं या अत मे टूट कर बिखरने वाली हताशा और दीनता की हैं।

इन मिलीजुली खीझ, पीडा, अकेलेपन की टीस, दरसन रहित एकागी निष्ठा की खिन्नता, आकुलता, उन्माद आदि की भाव सम्पदा ही मीरा को मीरा बनाने वाली अनोखी सम्पदा है—चाहे उसने गहना गाठी त्यागा, हाथ का चुडला त्यागा, काजल टीकी त्यागी" वही (109 34) 'माला-दोवडी धारण कर ली' वही (140 23) 'भाव भगति के भूषण' और 'प्रेम की चूनड' धारण की वही (107-30) 'भगवी चादर पहन ली' वही (110-37) 'भूइ सोना और भूखे मरना शुरू किया' तथापि—

'जोगिया कू जोवत बहू दिन बीत्या, अज हू आयो नाहिं। वही (115-49)

उस जोगी के लिए ललक इतनी विकट है कि—

"अगर चन्नण की चिता बनाऊँ, अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भसम की ढेरी, आपणे अग लगाजा। वही (115-50)

यहाँ तक मीरा की तैयारी है। मगर, न जोगी आया, न गिरधर के दरसन हुए और मीरा इस दुविधा मे दुख भोगती रही कि—

"रावली होय के किण रे जाऊँ, तुम ही हियडा रो साज।
मीरा के प्रभु और न कोई, राखो अबके लाज।"
वही (115-51)

दुविधा, दुख, चिन्ता, निराश्रयता, आकुलता आदि के कई स्तर मीरा के पदों मे साधना के चरणों के रूप मे मिल जाते हैं—व्याकुल विरहिणी के 'प्राण तडपते रहते हैं' वही 115 (49) 'भोजनिया नहिं भावै', नींदडली नहिं आवै', 'तडफ तडफ जिय जायी' जैसी व्यथाएँ तो आम हैं, मगर मीरा उनसे आगे अपने 'जोगी मे कारण', 'जोगण होने' और वैसा भी न हो सकने पर 'कासी करवत लेने, (वही) (115 52) की तैयारी मे है। उपालम्भ उलाहनों की बात तो ठीक है, मगर

'कासी करवत लेने पर' भी जब दरसन-परसन नही होता तो हताश भावना को शरणागत ही होना पडता है। सब उपाय आजमा लेने के बाद भी अनुभूति सार्थक नही होती—

माई म्हारी हरि हू न बूझी बात।
पिंड मे सू प्राण पति, निकसि यूँ नहिं जात।
पट नहिं खोल्या मुख न बोल्या, सांझ भई परभात
अबालणा जुग बीतण लाग्यो, काहे की कुसलात। वही (120 68)
अत
लेइ कटारी कंठ सहूँ, मरूँगी विष खाइ।

मीरा दासी राम रती, ललच रही ललचाइ। (वही) या फिर अपने जोगी की खोज मे—

या तन ऊपर भसम रमाऊँ, खोर करूँ सिर केस।
भगवा भेस धरूँ तुम कारण, ढूँढत ब्यारूँ देस।
मीरा के प्रभु राम मिलण कूँ जीवनि जनस अनेस। वही (121-70)

क्योकि—"नातो नाम को मोसू तनक न तोडयो जाय।" वही (122 74) उसे पाने के लिए 'छाणे लगण मैं किया रे' (वही) जैसे कि लौकिक जीवन मे स्त्रियाँ करती आई हैं और करती रही हैं। उसके कारण—

मास गले गल छीजिया रे, करक रह्या गल आई।
ओगालियाँ रो मूदडो, म्हारे आवण लागी बाहि॥ (वही)

—ऐसी काव्य रूढि राजस्थानी प्रेमकाव्यो की—लोक काव्य की बहुत पुरानी रूढि रही है। मीरा के लोकानुसारी मन मे वह सहज होकर फूट पडी है। इतना ही नही, उसे पपैया की बानी भी असहनीय लगती है—

रहो रहो पापी पपीहा रे पिव को नाम न लेइ।
जो कोई विरहिनि सांभलै पिव कारण जिव देइ। (वही)

अपने प्रिय को सदेसा भेजने का तरीका भी अनोखा है—

काढि कलेजो मैं धरूँ रे, कौआ तू ले जाइ।
ज्यां देसां म्हारो पिव बसै, वा देखै तू खाइ। (वही)

और मीरा का यह 'नाता' सिफ नाम का था और 'किसी स्तर का' नही था। मगर न जोत जगी, न दरसन परसन हुआ न जोगी आया!

(iii) विनय और दासता तब तक सांसारिक घटनाओं ने करवट बदल ली। चित्तौड छूटा, मेडता टूटा और सब ओर से निराश्रित, हताश, भग्नाश मीरा को भावना भक्ति मे दीनता भरी करुणा घोलनी पडी—

तुम सुणो दयाल म्हारी अरजी।
भव सागर में बही जात हूँ, काढ़ो तो थांरी मरजी।
या ससार सगो नहिं कोई, साँचा सगा रघवर जी।
मात पिता अर कुटुम कबीलो, सब मतलब के गरजी।
मीरा की प्रभु अरज सुणलो, चरण लगावो थांरी मरजी।

—यह 'थांरी मरजी' वाली बात मीरा की अंतिम पराजय और हताशा वाली स्थिति बताती है।

"मैं तो तेरी सरण पडी रे रामा, ज्यू जाणे त्यूं तार।
अडसठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आया, मन नहिं मानी हार।
या जग मे कोई नहिं अपणा, सुणियो श्रवण मुरार।
मीरा दासी राम भरोसे, गम का फदा निवार।
वही (141-131)

—यहाँ वह स्थिति आ गई है कि मीरा बाहरी भीतरी सघर्षों से थक चुकी है या कि टूट चुकी है—

"अब मैं सरण तिहारी जी, मोहि राखो कृपा निधान।
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी विमान।
और अधम तारे बहुतेरे, भाखत संत सुजान।
मीरा कहे मैं सरण रावरी, सुनियो दीनू कान।
वही (141-132)

स्पष्ट है कि शरणागत होने की यह स्थिति घोर सकट की है जैसी कि गजराज की थी, जिसकी तुलना में अजामील और गणिका का तारण तो आकस्मिक ही था। यहाँ हम डूबते गजराज' के साथ 'डूबती मीरा' की समानता कर सकते हैं। क्योंकि मीरा ने इस स्थिति तक आते-आते—

"या भव मे मैं बहु दुख पायो, मसा सोग निवार। वही (133)
और
सगो सनेही मेरो न कोई, बरी सकल जहान। (वही)

—निराश्रय स्थिति की अपनी तुलना मीरा ने गजराज से', 'द्रौपदी से', 'प्रहलाद से' और 'ऋषि पत्नी अहिल्या से की है वही (142-135)। निश्चित रूप से ऐसे दीनता मिश्रित पद मीरा के निराश्रय-काल के हैं।

क्योंकि विनय और दास्य भावना वाले ऐसे ही अन्य पदों में अंतर मिलता है। साधारण स्तुति, गुणगान, विनय, असारता, उपदेश के अन्य पदों मे वह मर्म भरी

चेदना नहीं है जो इसम है । उनमे—"अविनासी के चरण कवलो की वदना" है, वही (160-194) मानुस जनम की दुष्प्राप्यता' के साथ 'दुनिया मे ज्ञान चौसर की बाजी' का उल्लेख है, चाहे तो 'जीतो' चाहे तो 'हारो' वही (195), 'थोडे दिन के जीवन मे 'सत्सम' का उपदेश है, (196) 'बदगी न भूलने' की चेतावनी है, 'भजन भाव से जन्म जन्मांतर के खत फटने का विश्वास है', वही (162 200) मगर, वैसी असहायता और आकुल शरणागति नही है ।

और अन्तत द्वारिका वास के साथ सभवत इस दीनता का एक बार अवसान होता है, नई आशा और उमग भावनाओ मे भरती है—

राय श्री रणछोड दीज्यो द्वारिका का वास ।
सख चक्र गदा पद्म दरसै, मिट जग को त्रास ।
सकल तीरथ गोमती के, रहत नित पास ।
झालर झझा बाजै सदा सुख की रास ।
तज्यो देस अरु वेस हूतजि, तज्यो राना राज ।
दास मीरा गिरधर सरनै आवत, तुम्हें अब सब लाज । 9 (479 3)

और निश्चित है कि टूटी मीरा के उस समय के भजनो मे समपण, दया निधान से शरण माँगने उपदेशात्मक और वैराग्य मूलक पद ही बने होंगे। वह समय सिंगार का, मिलन का प्रतीक्षा का, अनुनय का नही था । अन्तत एक विधवा राजवधू अपने सस्कारो मे इतनी मर्यादित तो रही होगी कि 'विधवा होकर अपने सिंगार के पद नही गाए होंगे' क्योकि वह लोकतत्वो की गढन्त थी और लोक मर्यादा से बाहर होने का ऐसा काम वह कर ही नही सकती थी ।

(iv) टेक और हठीलापन चाहे उसकी भावना भक्ति की टेक अनोखी थी और उसके लिए लोक लाज, कुल मर्यादा, राज मर्यादा आदि को न पालने का उसका हठीलापन भी उत्तर से परे था, मगर नारी भाव की मर्यादा मे, लोक-प्रतिष्ठित नारीत्व की मर्यादा मे वह सच्ची थी, वैसे ही जैसे, 'मैं अपने सैंया सग साची' थी ।

जहाँ तक भावना भक्ति की टेक का सवाल है, मीरा उसके लिए विवश थी। जो एक बार आत्म तत्व को पहचान लेता है, जगत उसके सामने कूडा हो जाता है उसके सबूत हमे नामदेव, कबीर गोरख, नानक और बीसियो सतो के जीवन चरित्र से मिलते हैं। मीरा के साथ भी यही था कि उसने सात बरस की उमर से राम की आराधना शुरू की थी । मुश्किल नही कि साधु सत्सग और अपनी विशिष्ट परिस्थितियो के कारण उसने आत्मतत्व को पहचान लिया हो । यदि ऐसा न होता तो अपने पीहर मे ही वह यह नही कहती कि—

"तू मत बरजे माइडी म्हनें साधाँ दरसण जाती।
राम नाम हिरदे बसे, माहिले मद माती। 33 (106-28)

चारभुजा जोधाणो के इष्ट थे और उनके प्रति विशेष आग्रह होना सहज स्वाभाविक था। आत्म तत्व को पहचान कर मीरा ने कृष्ण मे या चारभुजा मे परमतत्व का आधान किया हो तो यह भी स्वाभाविक था। और सत्सग तथा वातावरण से नाथपथी अलख तत्व का आधान किया था तो वह भी सगत था।

उसकी भावना भक्ति की टेक, आचार-व्यवहार की टेक इन दोनो स्वरूपो को लेकर मिलती है—'मीरा लाओ रग हरी, औरन रग अटक परी' कहकर यह अपनी टेक का परिचय देती है तो 'चूडो म्हारो तिलक अरू माला' वही (140-23) 'सील बरत सिंगारा' कह कर अपनी विराग भावना का परिचय देती है।

ऐसी टेक के लिए, 'सात बरस की मैं श्रीरग भजिया तप पाया करतार' वाला कथन महत्वपूण है। बचपन के पडे सस्कार स्थायी हो सकते हैं और जहाँ तक आत्मबोध का प्रश्न है, वह एक बार हो पडे तो आजीवन उसकी स्मृति बनी रहती है। तभी मीरा ने कहा है—

"मैं तो चरण लगी गोपाल।
जब लागी तब कोऊ न जायी, अब जाणी ससार। 9 (414 33)

बचपन की पडी उस 'बान' के कारण ही उसका रूझान साधु सगत, सील, बरत, गौन, माला, चिन्तन आदि की ओर अधिक था और ससार व्यवहार की ओर अत्यल्प था। तभी कहती है—

"आवो सखी रली करां हे, पर घर गवण निवारि।
झूठा माणक मोतियाँ री झूठी जगमन जोति
झूठा सब आभूषणो री, साँचा पियाजी री पोति।
झूठा पाट पटम्बरा री, झूठा दणीय चोर।
साँची पियाजी री गूदडी, जामे निरमल रहे सरीर।
33 (105-25)

—उसकी अपनी टेक थी कि 'मीरा कू प्रभू मिलिया हे' तो उसे किसी भी हालत मे छोडेगी नहीं—'कोई कछू कहे, मन लागा।' वही (26) 'ज्यू सोन मे सुहागा', तो वह अलग होने से तो रहा। 'जनम जनम का सोया मनवाँ जागा'—तब उसके वापस सो जाने का सवाल तो था ही नही। तभी उसने पीहर वालो के सामने भी अपनी टेक बनाए रखी कि—घूमत बरजै माइडी म्हन साधाँ दरसण जातां' क्योकि—

"मैं तो लिया गोविन्दो मोल।" वही (101 19)

—वह भी 'तराजू तोल कर और 'बजता ढोल' के साथ कि 'आँखें खोल' कर। उसका विश्वास भी था कि वह सब 'पूरब जनम का कोल' था। और 'कोल' था तो राजपूत कन्या को उसे निभाना ही था। और जब वह 'अपने सैया सग साँची थी', 'परगट होकर नाचने लगी थी', 'अब काहे की लाज'—वही (103-22) ऐसा अनुभव कर चुकी थी, तब अपनी भावना भगति पर अड़े रहना, उसे छोड़कर ससार-चेतना के धरातल पर न आना उसकी सहज नियति ही बन गई थी। वह तो उस स्थिति तक पहुँच गई थी कि—'म्हाँरा मनरी उणरथ भागी री वही (21)

छीलरिये सू काँम नही रे, डाबरिये कुण जाव।
गग जमुन सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाय मिलू दरियाव।
हाल्याँ मोल्याँ सू काम नही रे, सीख नही सिरदार।
कामदारों सू काम नहीं रे, मैं तो जाय करूँ दरबार। (वही)

—जो परमतत्व का अनुभव कर ले, उसे तब छोटे मोटे भैरव, भवानी, गारक, देवर, भोप आदि से क्या लगाव हो सकता है। इसलिए पीहर की तरह सासरे मे भी उसकी टेक थी या कि उसका हठ था कि—

कोई निन्दो कोई बिन्दो, म्हैं तो गोविंद का गुण गास्याँ।
चोरी न करस्याँ, जिव न सतास्याँ, काइ करसी कोइ म्हारो।
गज सू उतरि कै खर नहिं चढसाँ, या तो बात न हाई।
वही (104 23)

अपनी टेक निभाने के लिए उसने 'राजकुल की लाज गमाई', साँधो के सग भटकी', 'नित उठ मदिर जाती रही', जेठी बहू होने की कानि की परवाह नहीं की', 'घूघट'—जो कि मेवाडी राजपूता मे हर जठी स्त्री के लिए भी होता था—भी 'पटकी' वही (24) गुरु गोविद की आन देकर' सकल्प व्यक्त किया कि गोरल नही पूजेगी' वही (106 29)। न केवल गोरल बल्कि कोई भी 'अनदेव' न पूजने की 'आन' थी। (वही) वह तो 'अपने गिरधर के हाथ बिकानी' थी क्योकि 'राणा जी म्हारी प्रीत पुरबली मैं कोइ करू' वही (111-42) उस 'पुरबली प्रीत' के कारण वह स्वय सचेत नही थी, चेतन ससार में नही थी तो उसके निणय लेन या मार्ग बदलने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

चेतन जगत मे तो उसकी टेक इतनी सी थी कि—

राणजी म्हैं तो गोविंद का गुण गास्याँ।
चरणाम्रित को नेम हमारो, नित उठ दरसण जास्याँ।

मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, निरख परख गुण गास्या ।
हरि मंदिर मे निरत करास्यां, घुंघरिया घमकास्यां ।
वही (109-34)

—और, इस टेक के लिए, उसका हठ भी इतना विकट रहा कि वजनाएँ, तर्जनाएँ, कोप, कपट, छल, घात, बात कुछ भी उसे अपनी टेक से डिगा नही सके। "लोग कहैं मीरा भई बावरी न्यात कहे कुल कुल नासी" "ननद आदि बरजि बरजि हारी" मगर उसका तो कहना था—

राणाजी म्हाँन या बदनामी लागे मीठी ।
कोई निंदो कोई बिंदो मैं तो चलूगी चाल अपूठी ।" वही (36)

'पीठ दिखाना' यो भी राजपूत महिला के लिए अपमानजनक था । फिर मीरा के लिए तो वैसा करना सभव ही नही था ।

चाहे उससे अनुभव किया कि—

"राणाजी थे क्या ने राखो म्हा सू बैर ?
थें ता म्हा न इसडा लागो ज्यू बिच्छन मे कैर ।" वही (110-37)

यह भी कि—'राणा जी थें जहर दियो, हम जाणी' मगर,

जैसे कचन दहत अगन मे, निकसत बारावाणी वही (111 41)

अब तो, "आपने घर का परदा कर ले मैं अबला बौराणी ।"

—जिसको 'साकडी गली में सतगुरु' मिल गए जो ज्योतिष्मान हो चुकी, वह पुन तममोगमय कैसे हो सकती थी । उसने—

"महल अटारी हम सब त्यागा, त्यागा थारो बसनो सहर ।
काजल टीको राणा हम सब त्यागा, भगवी चादर पहर ।" वही(37)

अत अपनी टेक की रक्षा मे उसन स्पष्टत घोषणा कर दी कि—

नहिं भावे थांरो देसडलो रग रूडो ।
थांरा देस मे राणा भगति नहिं छे, लोक बसै सब कूडो ।
वही (109-36)

चाहे राणा कोप करे चाहे लोक निंदा करे, चाहे पीहर लाजे, चाहे सासारिया लाजे, मीरा की टेक तो अनन्य थी—

"सीसोदयो रूठयो तो म्हाँरो कइ कर लेसी ।
राणा जी रुठै वारो देस रखासी ।
हरि रूठयो कठै जास्यां हो भाइ ।" वही (110 38)

—न राज भय, न लाज भय, न मर्यादा भय, न लोक भय—ऐसी निभय हो

चूकी मीरा हठीली और टेक वाली बनी तो यो बनी कि—

'या तो रग घत्ता लग्या ए माइ !
पिया पियाला अमर रस का, चढ गई घूम घुमाव।
यो तो अमल म्हारो कब हु न उतरे कोइ करो न उपाव।

वही (112 44)

वह तो, "भजन भाव म मस्त डोलती, गिरधर पे बलि जाय," की सुरत म रमी रहती थी। उसे बाहरी जगत की चेतना व्यापती ही नही थी। उसे तो अपने 'सबल धणी का साथ', (वही 113 47) था, ससारी राजा राणा का भय उसे कसे व्यापता। उसकी तो बढे घर तालो लागी रे, 'समद सू सीट' हो गया था, तब क्या चित्तौड और क्या मेडता—कोई उसे अपनी टेक से नहीं डिगा सका।

टेक की आन और ऐसा हठीलापन अन्तत रोजकोप का कारण बना। इतना कि उस 'परम तत्व चेती मीरा' को भी—चाहे पार्थिव कहिए या अपार्थिव कहिए, अपने 'बाबो सा' से कहना पडा कि—

"म्हारे बाबो सा ने कहियो म्हाँनें वेगा लेवा आवे।"

भावना भक्ति के दायरे म भी मीरा की टेक और हठीलापन वैसे ही चलकता है जैम परिवार जनो या ससुराल वालो क प्रसग मे था।

'प्रिय के दरसन' की ललक में उसन केवल पूजा या भजन कीतन को पर्याप्त नहीं माना था। उसकी टक तो अपन पिया को रिझाने की थी।

अमा पिया जाण न दीजै हो।
तन मन धन करि वारणै, हिरदै धरि लीजै हो।
आव सखी मिलि देखिये, नणो रस पीजे हो।
जिह जिह विध रीझे हरी, सोई विधि कीजे हो। 33(99 13)

और उन विधियो मे 'एकटक दरसन', गिरधर आगे नाचना और पिव रसिक को ही रिझाना,' 'सतो के साथ बठकर स्मरण करना' 'रमैया ने देख वो करूँ करना, 'पचरग चोला पहिन कर झिरमिट खेलने जाना,' 'सुरतनिरत का दिवला सजोकर रात दिन जलाए रखना', भूख सहना' 'नीदा सहना,' 'सुन महल मे सेज बिछाकर'जोगिया की प्रतीक्षा करना,' 'खीय और खिन्नता पूवक जोगिया की बाट जोहना,' 'चन्दण की चिता बनाकर अपने को भस्म करना और भस्म जोगी के अग लगवाना,'—परसन के लिए ऐसा हठ, 'जोगन बनकर बन बन अपन जोगिया को ढूढना—यानी जिस विधि से सभव हो हरि दरसन की टेक निभाती मिलती है।' 'वास्तव मैं बैरागिनी हूँगा हो।' 33(147-152)

(४) पुरव जनम को कौल मीरा की भावना भक्ति के मूल मे उसका पुनर् जनम का कोल एक प्रभावकारी अभिकारक प्रतीत होता है। चाहे तार्किक

और वैज्ञानिक कसौटी पर इसमें तथ्य न हो, मगर भावना लोक किसी विश्वास पर टिका होता है। वह विश्वास ईश्वर के साकार रूप का हो, तरणतारण स्वरूप का हो, निराकार सत्ता का हो, अवतारवाद का हो, भक्तो और सतो का चिंतन उन्हीं आधारो पर टिका हुआ है। भक्ति स्वय भी भावना ही होती है।

मीरा कई पदो मे अपनी 'पुरबली प्रीत' की बात दोहराती है और इसी बल पर उसकी मधुरा भक्ति की टेक और उसका हठीलापन टिका हुआ भी है—

"मेरी उसकी प्रीत पुरानी, उण बिन पल न रहाऊँ। 33(101-17)
राणा जी म्हांरी प्रीत पुरबली मैं कांई करूँ! 33(111-42)
हेली म्हांसूं हरि बिन रह्योइ न जाय।
सास लडे म्हारी ननद खिजावै, राणा रह्या खिझाय।
पहरो भी राख्यो चौकी बिठारयो, ताला दियो जडाय।
पूरब जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यू छोडी जाय। 33 (113 46)
रियाँ बैल जुताय कै, ऊँटा कसियो भार।
कैसे तोड़ू रामा सू, म्हारो भो भो रो भरतार। वही (114 47)
थाँने कइ कइ कहि समझा वू, म्हारा वाला गिरधारी।
पूरब जनक की प्रीत हमारी अब नहिं जात निवारी। वही(116-54)
सदके करूँ जी सरीर जुगे जुग बारणै।
छोडी छोडी कुल की लाज, साहिब तेरे करणै। वही (55)
म्हारो जनम मरण को साथो, थान नाहिं बिसरूँ दिन राती!
वही (132-106)
म्ह तो जनम जनम की दासी, थें म्हांरा सिरताज।
वही (133-109)
जनम जनम का सोया मनवाँ, सतगुरु सबद सुण जागा। 9(424 76)
जोगी होय जुगति नहिं जाणी, उलटि जनम फिर आसी।
वही (421 60
जनम जनम की पूजी पाई, जग मे सबै खोवायो। वही (417-45)

जिस मीरा की बचपन की अनुभूति थी कि—"नहिं म्हारे माय र बाप, अम्मर डारयो, धरती झेलीयो 9(203 10) उसके लिए यदि यह विश्वास दृढ हो गया हो कि वह 'उसी की' है जिसने उसे धरती पर फेंका है,' तो यह असगत बात नही होगी। उसका पुनर्जन्म का विश्वास उतना ही मजबूत था जितनी कि उसकी भक्ति की टेक हठीली थी। तभी उसका यह भी निर्विकल्प विश्वास था कि—

"रमापति आवे म्हांरी भीर, अरज करूँ छूं थां सू विनती।" (वही)

उसी विश्वास के बल पर वह कह सकी थी कि—

"म्हें तो गाबिन्द का गुण गास्या, राणा जी म्हारा काई करसी ।" या कि 'बाई ऊदा थे राणा ने रावले मेल्हि,'

कुल रो ही नाती म्हारे कोई नहिं ।

—इस तरह से मीरा की अनुभूतियो के तत्व अनेकधा होते हुए भी, मधुरा भक्ति को केन्द्र मे रखकर गुम्फित कहे जा सकते हैं। अभिव्यक्ति के साधना का कोई आग्रह मीरा के सामने नहीं था। अनुभूति की सहजता, तीव्रता और सच्चाई जिस तरह से उभर सकी, वही उसके पदो मे सहज स्वाभाविक रूप से फूट पडी है।

2 सामाजिक तत्त्व

और, उस सहजता मे उसका सामाजिक सास्कृतिक परिवेश चरिताथ हो उठा है। उस परिवेश की झाकियाँ हम निम्नाकित रूपो मे देख सकत हैं

मीरा के सम्बन्ध मे हमे एक बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि "वह एक राज परिवार मे जन्म लेकर भी लोकजीवन के साथ एकरस हो गई और राज-परिवारो की पूरी उपेक्षा और विस्मरण कर देने की चेष्टाओ के बाद भी लोक व्यापी हो गई'—यह बहुत बडी बात है।

यद्यपि उसके लिए परिस्थितिया ऐसी थी कि वह सामान्य राजपूत महिला बन सकती थी। उस समय का मेडता, युद्ध और राजनीति के लिए अत्यन्त महत्व-पूण केन्द्र था। चित्तौड के राणा देश के एकमात्र नेता थे और वीरता वभव और प्रभाव मे अनन्य थे। इन दोनो का लाभ उठाकर वह देश की सवश्रेष्ठ शक्ति की राजवधू के रूप मे इतिहास मे स्मरण की जा सकती थी जैसी कि रानी करमती की जाती है किन्तु वैसा नही हुआ। क्योकि उसका व्यक्तित्व जिस विशिष्ट तरीके से निर्मित हुआ था वह राजकन्या का नही था, राजवधू का नही था, वह भावना लोक का एक अनन्त गामी सूक्ष्म व्यक्तित्व था जो वस्तुत जगत व्यापी हो गया, युगजीवी हो गया, सनातन हो गया। तभी उसने कहा था—' ले जाती बकुठ कू म्हारी नक न मानो बात।" 33 (112-42)

उसकी भावना भक्ति सामाजिक उपज थी जैसे कि उसका व्यक्तित्व तत्का-लीन परिवेश के अनुकूल और पारिवारिक सीमाओ के उल्लघन से बना था। उसके आत्मतत्व की पहचान वस्तुत समष्टि की पहचान थी और उस पहचान की अभिव्यक्ति ऐसे साधनों से और ऐसे धरातल पर हुई थी जो लोकानुसारी था बल्कि जो लोकतात्विक था। यत्र-तत्र उसके पदो में हमे ऐसे प्रमाण मिल जाते हैं।

(1) पव उत्सव आदि के हवालों मे—जोधपुर-मेडता बीकानेर क्षेत्र मे, परम्परा से कुछ खास पर्वों उत्सवो का लोकव्यापी महत्व है—यथा—सावणी तीज, होली, गणगोर, अक्षय ततीया। यो रक्षाबधन, विजया दशमी, दीवाली, करवा चौथ, बसत पचमी, शिवरात्रि 13 (251) ऋषिपचमी, अनन्त चतुर्दशी, नवरात्रि, भाई दूज मकर सक्राति, शीतला पूजन 23 (196) अनेक पव और उत्सव राजस्थानी जन-जीवन मे प्रचालित थे और हैं, मगर मीरा के पदो मे उन्ही का सकेतात्मक या अभिव्यक्ति मूलक उल्लेख आया है जो उसकी अनुभूतियो के वाहक बन सके हैं। एक पद मे, जो कि 'बारहमासा' की शैली मे है, तत्कालीन ऋतु माहात्म्य और उत्सवों का हवाला मिलता है—

पिया मोहि दरसण दीजे हो।
बेर बेर म्ह टेर हूँ, अहै किरपा कीजे हो।
जेठ महीना जल बिना, पछी दुख होई हो।
मोर असाढा कुरल हे, घन चाचग सोई हो।
सावण मे झड लागियो सखि तीजा खेलै हो।
भादरवै नदियो बहैं, दूरी जिन मेलै हो।
सीप स्वाति ही झेलती, आसोजा सोई हो।
देव काती मे पूज हे, मेरे तुम होई हो।
मगसर ठड बहोती पडे, मोहि वेगि सम्हालो हो।
पोस नही पाला घणा, अबही तुम हालो हो।
महा महीं बसत पचमी, फागाँ सब गावै हो।
फागुण फागा खेल हैं, वणराइ जलावै हो।
चैत चित्त मे ऊपजी, दरसण तुम दीजै हो।
बैसाख बणराइ फूलवै, कोइल कुरलीजै हो।
काग उडावत दन गया बूझू पिडत जोसी हो।
मीरा विरहिणी व्याकुली, दरसण कब हासी हो।

तीज वसे मारवाड देश मे तीज, दीवाली और होली का महात्म्य सावलौकिक है। अन्य प्रदेशो मे अन्य-अन्य पर्वों का महत्व है, यथा—

तीजा पूगल देसरी गवरल उदिया दीप,
दिली दसेरी देखिए मोती समदा दीप 45(328)

और इनमे से भी तीज वह त्यौहार है जो स्त्रियो के सुख सुहाग का माना जाता है—मोरां बिन डूगर किसा मेह बिन किसी मलार।
तिरियाँ बिन तीजा किसो, पिव बिन किसा तिवार। 45 (328)
राजस्थानी लोक जीवन मे तीज जीवन्त त्यौहार है और वह जैसे लोक-

जीवन मे वैसे ही काव्य रूढ़ियो मे भी बहुत गहराई के साथ उतरा हुआ है। वह पति मिलन का, सुख का या सुहाग का प्रतीक बन गया है।

जइ तू ढोला नावियउ, काजलिया री तीज।
चमक मरेसी मारवी, देख खिवता बीज ।45 (328)

वैसे भी काव्य रूढिया मे 'सावण' पिय मिलन का और वियोग मे दाह का प्रबल अभिप्राय रहा है। उमडते मेघ, कडकते बादल, चमकती बिजली, नाचते मोर, पिव पिव करते पपीहा, टरटराते मेढक—सब मिलन मे सुखदायी और विरह मे दग्धकारी माने जाते रहे हैं। लोक काव्यो मे भी उनकी बहुलता मिलती है। वैसे ही मीरा के पदो मे—

कहीं 'सावण' प्रतीक्षा की अवधि सीमा के रूप म साधन बना है—
"श्रावण कह गए अज हुँ न आये, जिवडो अति अकुलावै।"
33 (121 69)

"सावण आवण कह गया वाल्हा कर कौल अनेक" वही(137-118)
रावल कुण बिलमाइ राखो, विरहिन है बेहाल॥ वही (136 117)

"आया सावण मास सजनी, भरे जल थल ताल।
"सावण दे रह्या जोरा रे, घर आज्यो जी स्याम मोरा रे।
उमड घुमड चहुँ दिसि से आया, गरजत है घन घोरा रे।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही सोरा रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ज्यो वारूँ सो ही थोरा रे।
वही (145-145)

तो कहीं वह विरह की तपन का मापक बना है—

"दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुनावै।
घुमड घटा ऊलर होई आई, दामिने दरक डरावै।
वही (123 76)

नैंन झर लावै।
सावन भादों, ऊमडो, बरखा रितु आई है।
भौंह घटा घन घोरि के नैनन झर लाई रे। वही (140 129)
कहीं वह तीज मनाने की खुशियों का पैमाना है—
सावण मे झड लागियो सखि तीजां खेलै हो। वही (135 116)
तो कहीं वह भय और त्रास का प्रतीक है और ताप बुझाने का साधन भी—

बादल देख डरी हो स्याम, मैं बादल देख डरी।
काली पीली घट ऊमडी, बरस्यो एक घडी।

जित जाऊँ तित पाणी पाणी, हुई हुई भोम हरी।
जाका पिय परदेस बसत है, भीजू खडी खडी।
मीरा के प्रभु हरि अबिनासी, कीज्यो प्रीत खरी। वही (126 82)

कैसी रुत आई मेरो हियो लरजे हे माय।
निस अँधियारी कारी, बिजरी चमकै, सेज चढता जिया डरपे हे माय।
नहीं कदन मेहा वरसे, ऊपर से सुरपति गरजे हे माय।
सूनी सेज स्याम बिन लागत, कुक उठी पिया पिया करिके हे माय।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मोय विधाता क्यू सरजी हे माय।
9(412 27)

मनवारे बादर आए रे, हरि को सनेसो कछु न लाये रे।
दादर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुनाये रे।
कारी आधियारी बिजरी चमकै बिरहणि अति डरपाये रे।
गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड लाये रे।
कारी नाग बिरह अति जारी, मीरा मन हरि भायै रे।
वही (128-81)

कहीं वह मिलन की आतुरता का उद्दीपक है—

भीजै म्हारो दावण चीर, सावणियो लूम रह्यो रे।
आप तो जाय बिदेस छाये, जिवडो धरत न धीर।
लिख लिख पतियाँ सदेसा भेजू कब घर आवै म्हारो पीव।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, दरसन द्यो बलवीर।
वही (138-123)

नद नदन बिलमाई, बदरा ने घेरी माई।
इत घन गरजे, उत घन लरजे, चमकत बिज्जु सवाई।
उमड घुमड चहुँ दिस से आया, पवन चलै पुरवाई।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणाई।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चितलाई। वही(143-140)

तो, कहीं वह मिलन की उमगो और आशाओ का साक्ष्यीभूत भी है—

सुनी हो म्हैं हरि आवन की आवाज।
म्हैल चढ़ै चढि जोऊँ मेरी सजनी, अब आवै महराज।
दादर मोर पपीहा बोलै, कोइल मधुरे साज।
उमग्यो इन्द्र चहुँ दिसि बरसै, दामिणि छोडी लाज।
धरती रूप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलण कै काज।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, वेग मिलो महाराज। वही (144-141)

वसे ही—

झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन मे उमग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड घुमड चहुँदिसि सें आयो, दामण दमक झट सावण की,
न ही नन्हीं बूदन मेहा बरसै, सीतल पवन सुहावन की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आणद मगल गावण की।
वही (145-144)

बदली रे तू जल भर लाई।
नन्ही नन्ही बूदन बरसन लागी, काइल सवद सुणाई।
गाजै बाजै पवन मधुरिया, अम्बर बदरा छायो।
सेज सँवारी पिय घर आये, हिलमिल मगला गायो।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, भाग चलो जिन पायो। वही(145 147)

और, कहीं वह रामखुमारी का उद्‌घाटक और चैतन्य प्रदायक अभिघटक भी है—

लगी मोहि रामखुमारी हो।
रमझम बरसै मेहडा, भीजै तन सारी हो।
चहुँदिस चमकै दामणी, गरजै घन भारी हो।
सतगुरु भेद बताइया, खोली भरम किवारी हो।
सब घट दीसै आतमा सबही सू न्यारी हो।
दीपक जाऊँ ग्यान का, चढू अगम अटारी हो।
मीरा दासी राम की, इमरत बलिहारी हो। वही (149 158)

राजस्थानी लोक-जीवन मे सावण और सावणिये की तीज का अवसर विशेष स्वागत, उछाह और प्रतीक्षा का मानक रहा आया है। लोकगीतो मे, लोक कथाओ मे और लोक काव्यो मे वह उतना ही मान्य रहता आया है जितना कि खेती किसानी मे जीवन का मुख्य आधार बना रहा है। लोककाव्यो म भी सावण और पिया' अनिवार्य सम्बन्धी रहते आए हैं कि—

उनमो आई वद्‌ली ढोलउ आयउ चित्त।
यो बरसइ रितु आपणी, नहण हमारे नित्त। 45(142) या कि

गिरह पलाखण, सर भरण, नदी हिंडोलण हारि।
सूती सेजइ एकली, हइ हइ दइव म मारि। (वही)
वैसे ही बिजली भी—

बिज्जुलियां निलज्जियां, जलहर तुं ही लाज्जे।
सूनी सेज विदेस प्रिय, महुरे महुरे गज्जि। (वही)

सावन तो प्रकृति जादूगरनी का क्रीडा केन्द्र है—अम्बर मे बदलियो की लीलाएँ, गरजते मेघ, लरजती बिजली, उमडती घटा, शीतल पवन, नन्ही बूदो की झडी, नाचते कूकते मोर, पपीहे की पुकार, उमँगती धरती—ऐसे मे भला पिया का योग या उसकी स्मृति आए बिना कैसे रहा जा सकता है—

सावण आयउ साहबा, पगइ विलबी गार।
बच्छ बिलबी बेलडयाँ, नरा विलबी नार। वही (149)

मीरा की लोकानुसारिता इसी से जाहिर होती है कि उसके पदो मे अन्य ऋतुओ की उपेक्षा सावन का उपयोग आलबन, उद्दीपन और अनुभूति प्रकाशन के लिए अधिक सख्या मे हुआ है और वह सब उसी रूप मे है जिस रूप मे वह लोकानुगत रहा है।

बसत और होली मारवाड मे बसन्त का वसा महत्व नही रहा जैसा कि मालवा गुजरात और पूर्वी राजस्थान मे रहा, तथापि बसत आगमन के साथ फाग गाने और होली की तैयारिया करने का सिलसिला आरभ हो जाता है। लोक-काव्यो मे भी बसत का उतना महत्वपूण उपयोग नही हुआ जितना कि वर्षा का हुआ है।

'पृथ्वीराज रासो' मे बसत पचमी के उत्सव के राजकीय आयोजन का वणन मिलता है 13 (255) उस दिन श्रीकृष्ण के फाग खेलन का आयोजन किया जाता था। अगरू, कपूर, केसर, कस्तूरी, पुष्प, अबीर, रोली मेवा, मिष्ठान आदि के साथ श्रीकृष्ण की पूजा की जाती थी। लीलाओ के अभिनय किए जाते थे और "घटे, शख, झालर, मृदग, वीणा, नफीरी, भेरी, शहनाई, ढोल, नगाडा बशी आदि वाद्यो के साथ नत्य भी होत थे।" यदि मीरा के मेडता मे ऐसा कोई आयोजन रहा हो तो वह स्थानिक रहा होगा, मगर इतना जरूर है कि आज भी बसत पचमी से डफ और फाग गाना जारी हो जाता है।

मीरा के एक पद मे बसत के आगमन और उस समय प्रिय के पास न रहने का दुख प्रकट हुआ है—

बाजत झाँझ मृदग मुरलिया, बाज रही इकतारी।
आयो बसत केत घर नाही, तन मे जर भया भारी।
स्याम मन कहा बिचारी। 33(124-78)

मगर, होली का मारवाड़ क्षेत्र मे सर्वाधिक महत्व है। कई अंचलो मे इस समय नृसिंह अवतार के स्वाग भर जाते हैं, हिरणाकश्यप को मारने की घटना का उस माध्यम से सार्वजनिक स्मरण किया जाता है। सब वर्ण और जातियाँ भेदभाव भूलकर इस पर्व मे समानता के धरातल पर रग, गुलाल, कीचड, कादा से एक दूसरे को सराबोर करते हैं, भक्ष्य-अभक्ष्य खाते खिलाते हैं, स्त्री-पुरुष सब

उन्मादित होकर नाचते गाते हैं, सामाजिक मर्यादाएँ, शिष्टाचार एक एक दिन के लिए भूल जाते हैं, ईलाजी की स्थापना करते हैं, स्त्रियाँ भी अश्लील गीतो-नृत्या मे सम्मिलित होती हैं। गधे की सवारी, अश्लील गालियाँ, हुडदग सब ओर मच जाती है। ऐसा लगता है जसे हजारो वर्षों की नैतिकता, शील आदि को छोडकर लोक आदिम हो जाना चाहता है। हल्लीसक नृत्य, गेर जैसे उन्माद भरे नत्य चारो ओर होते रहते हैं। और, यह सब बहुत पुरानी बात भी है। गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यो को हल्लीसक नृत्य मे भाग न लेने का निर्देश दिया था। कई तरह के वाद्यो और कई तरह के रगो अबीरो का उपयोग राजघरानो मे होता था जबकि लोक मे कीचड, राख धूल की होली खेली जाती थी।

स्त्रियों में कजली तीज की तरह होली की दूज का भी महत्व होता था। उस दिन परदेसी पिया के आए बिना होली नीरस हो जाती है। कई जगह स्त्रियाँ पति पत्नी को पुन विवाह करने पर भी विवश करती हैं तो कई जगह "जमरा खाडने" की प्रथा निभाई जाती है। पिछली होली के बाद जन्मे बच्चो की ढूढ भी की जाती है।

मीरा के पदो मे इस लोक त्यौहार के सदभ उसी रूप मे आए हैं जिस रूप मे सावन के आए हैं—

"होली पिया विण मोहि न भावै, घर आगण ना सुहावै।
दीपक जोय कहा करूँ हेली, पिय परदेस रहावै।
सूनी सेज जहर ज्यू लागे, सुसक सुसक जिय जावे।
नींद नहि आवे। 33 (124 79)

प्रीतम के बिना होली खेलन मे कोई रस नही। और किसके साथ होली खेली जा सकती है!

किण सग खेलू होली, पिया तज गये हैं अकेली।
माणिक मोती सब हम छोडे, गल मे पहनी सेली।
भोजन भवत भलो नहि लागे पिया कारण भई गोली।
म्हनै दूर क्यू मेली। वही (125 80)

और यदि प्रीतम पास मे हो तो वही होली रँग रँगीली, मदभरी मस्ती का आलम बन जाती है—

रग भरी रग भरी रग सू भरी री।
होली आई प्यारी रग सू भरी री।
उडत गुलाल लाल भये बादल, पिचकारिन की लागी झरी।
चोवा चन्दन और अरगजा, केसर गागर भरी धरी री।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, चेरी होय पायन में परी री।
वही (145)

और दृश्य वर्णन के रूप मे भी होली—

होरी खेलत हैं गिरधारी।
मुरली चग बजत डफ न्यारो, सग जुवति व्रज नारी।
चदन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल चहुँ देत सबन पै डारी।
छैल छबीले नवल काह सग, स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तहँ, दै दै कल करतारी।
फाग जु खेलत रसिक सावरो, बाढयो रस व्रज भारी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर मिलिया लाल बिहारी। वही (177)

और सतमत से प्रभावित आत्म साधना की होली भी मीरा के पद मे मिलती है—

फागुन के दिन च्यार रे होली खेल मना रे।
बिन करताल पखावज बाजै, अणहद की झणकार रे।
बिन सुर राग छत्तीसौं गावै, रोम रोम रग सार रे।
सील सतोख की केसर घोली, प्रेम प्रीत पिचकारी रे।
उडत गुलाल लाल भयो अम्बर, बरहत रग अपार रे।
घटके पट सब खोल दिये हैं, लोक लाज सब डार रे।
होरी खेलि पीव घर आये, सोइ प्यारी प्रिय प्यार रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर कवल बलिहार रे। वही (151)

होली लोक त्यौहार है। मीरा के समय मे भी था और इसी कारण उसके लोक मानस ने होली को वण्य विषय के रूप मे और आलम्बन-उद्दीपन के रूप मे अपनी मधुरा भक्ति मे स्थान दिया है।

गणगौर होली के साथ ही जुडा हुआ गणगौर का त्यौहार है जिसे कन्याएँ अच्छा वर पाने की कामना से मनाती हैं। ईसर और गौर के पूजन का यह त्यौहार किसी-न किसी सीमा तक पूरे मारवाड क्षेत्र मे प्रचलित है। जैसे बच्चे के जन्म मरण का लौकिक महत्व है, वैसे ही इच्छित भरतार की कामना भी सावलौकिक होती है।

मीरा के प्रसग मे गणगौर पूजन इसलिए महत्वपूण नहीं माना जा सकता कि उसकी आस्था पार्थिव भरतार मे थी ही नहीं। "ऐसे वर का क्या करै जो जनमे अर मरि जाय!" इसी कारण विवाह के बाद की चर्चित घटना मे ससुराल जाकर गौर पूजा से उसने इनकार किया होगा—

म्हाने गुरु गोविंद री आण, गोरल ना पूजां।
औरज पूजे गौरज्यो जी, थें क्यूं पूजो न गोर।

मन वछत फल पावस्यो जी, थें क्यू पूजे और।

नहिं हम पूज्या गोरज्या जी, नहिं पूजो अनदेव।
परम सनेही गोविंदो, थें काइ जानो म्हारो भेव। 33 (106-29)

गणगौर पूजन का यह विरोध सभवत मीरा की मधुरा भक्ति की टेक का वाचक ही अधिक है। इससे शायद यह बात अधिक उजागर होती है कि पार्थिव भरतार के साथ सुहाग-कामना मे उसकी आस्था नही थी क्योकि उसने तो परम तत्व को पति प्रमाण प्राप्त कर लिया था।

मगर, अपने अलौकिक प्रियतम के साथ गणगौर भी इसके लिए उतनी ही मान्य थी जितनी किसी ससारी स्त्री के लिए होती है—

रे सांवलिया म्हारे आज रगीली गणगौर छजी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरणा मे म्हारो जोर छै जी।
वही (145)

कुल मिलाकर मीरा के पदो मे लोकतत्व मूलक वर्षा, होली, बसत, गणगौर का उपयोग प्रकृत वणन के रूप मे और आलम्बन उद्दीपन के रूप मे हुआ है। वर्षा का उपयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है जो कि बहुत पुराना लोक मगल का आधार भी रहा है और मानवीय सवेदनाओं का जनक, प्रणेता और वाहक भी।

(ii) कीतन भजन साधना के आयोजनों मे मध्य युग धार्मिक वातावरण का युग था। हजारों वर्षों की दार्शनिक और धार्मिक मान्यताओ का लौकिक पयवसान तीथयात्रा, सत्सग देवदशन, भजन कीतन, साधना, मदिर निर्माण और दान-पुण्य में हुआ था। जो लोग मदिर आदि का निर्माण कर सकत थे, व वैसा करके और सामान्य लोक दर्शन, पूजा, सत्सग आदि कर के जीवन की आध्यात्मिक भूख शात किया करते थे।

साधु, सत, जोगी जती, महात्मा तपस्वी, नाथ, वटुक आदि के ऐसे अनेक समूह बने हुए थे जो निरन्तर भ्रमणशील रहकर लोक के लिए धम की व्याख्या किया करते थे। दर्शन, पुराण, ब्रह्म, ईश्वर तथा जगत् सम्बन्धी जितनी भी मान्यताएं विकसित हुई थी उन्हें लोक शिक्षा बनाने के साधन यही लोग थे और इनके सिवा कुछ भी नहीं था। यद्यपि इनके नाम पर कुटिल कपटी लोग भी अपना स्वाथ साधने का काम करते थे तथापि साधु-सतों का राज म और लोक म मान सम्मान था। भजन कीतन साधना, दीक्षा और तपस्या के साधना मे ये लोग लोक-शिक्षा का काम करते थे। जिन राज्यों म उन्हें तनिक भी आश्रय होता वहां उनके जमघट बने रहते थे और जहां वैसा नहीं होता था उधर साधु-संतों का आवागमन भी कम रहता था। मेड़ता और चित्तौड़ में यह अन्तर प्रखर था। तभी मीरा को

कहना पडा था कि—

नहिं भावे थांरो देसडलो रंग रूडो।
थांरे देए मे राणा साध नहिं छै, लोग वसै सब कूडा।"

और इसकी तुलना मे—

"म्हारे पीहरिया रा लोक भले रो, बाघे कठी माला।"

मेडता, जोधपुर, नागोर, शेखावाटी, जालोर, बीकानेर की तरफ नाथपथियो का गहरा प्रभाव रहा था और लोक मानस उनकी साधना प्रणाली से बहुत दूर तक प्रभावित था। वैष्णव भक्ति, लोक देवता, सिद्ध-पुरुष आदि का प्रभाव भी व्यापक था और वैष्णव चतुर्भुज, नरसिंघ, कृष्ण, शिव आदि मता का भी प्रभाव था। मेडता स्वत जगदम्बा, चारभुजा और नाथो का गढ था। वहाँ भजन कीतन के आयोजन और साधु समागम सदा चलते रहते थे।

मीरा पर उनका प्रभाव रहा था। उसके पदो मे भजन कीतन और साधना के कई स्वरूपा का मिला-जुला लौकिक प्रचलन व्यक्त हुआ है। वह अभिव्यक्ति वैष्णव रूप की भी है और नाथपथी साधना रूप की भी है। वह अभिव्यक्ति हमे बता सकती है कि उस समय भक्ति, भजन और साधना के किन रूपो की लोक म अवस्थिति थी।

मीरा के पदो मे से कम से कम 36 पद ऐसे मिलते हैं जिनमे भजन कीर्तन और इष्ट प्रीति की साधनाओ के सकेत हैं। सामान्य स्तुति प्रार्थना और विनय के पद इनसे अलग हैं जिनमे कभी इष्ट के परमतत्व की महिमा कही गई है और कभी अवतारो की महिमा बखानी गई है। अन्य तथा जो साधना रूप व्यक्त हुए हैं, उनमे गायन-नतन बहुत प्रखर भाव से व्यक्त हुआ है—

"मैं तो गिरधर आगे नाचूगी।" और अकेले ही नही बल्कि "नाच-नाच कर रसिक प्रिय को रिझाने और अन्य प्रेमी जनो को भी उस हेतु प्रेरित करने की बात भी है। 33(14) इस नतन म प्रेम प्रीत के घुघरू हैं, सुरत की कछनी है और उसके साथ लोक लाज की मर्यादा का उल्लघन हो तो भी चिंता नही है। ऐसी अभिव्यक्ति में वैष्णव भावना के साथ सत मत का प्रभाव परिलक्षित है। 'गिरधर के रग मे रची हुई मीरा के लिए" "सिगार साज कर, पग में घुघरू बाँध कर" नतन करना स्वाभाविक है, वही (16) बल्कि "धरती पर जहाँ जहाँ पैर पड़ें वहाँ नृत्य करना" वही (18) 'अपने प्रिय के प्रति इतनी सच्ची होना कि लाज शरम छोड कर भी यह काम करना वही (22) ' नित प्रति उठ कर मदिर जाना और चुटकी दे देकर नाचना", वही (24) राजवधू होकर भी "हरि मदिर में निरत कराना और घुघरूओं की धमक कराना", वही (34) चारो तरफ से विरोध होने "गोविन्द के गुण गाना", वही (38) ' पग घुघरू बाँध कर नाचना"

ससुराल वाले कुलनासी कहे या लोग बावरी कहें वही (39), केवल इष्ट के सामने ही नही बल्कि इष्ट साधक "साधुओ के सामने ताल परवावज मदंग के साथ नाचल" वही (40)। चाहे कोई बावरी कहे, चाहे मदमाती कहे, चाहे निब देकर मारना चाहे—ये सब मीरा की भक्ति साधना की अभिव्यक्ति के मापक हैं। ये बताते हैं कि इस प्रकार का गायन और नतन लोक मे और राज परिवारो म, किसी कुलीन महिला का या कन्या के, लिए सम्मानजनक तो नही था। मगर मारवाड क्षेत्र मे—खास करके जालोर, जैसलमेर, सिवाना की तरफ देवदासियो की प्रथा अनजानी नही थी और उस प्रथा की छाप यदि मीरा पर रही हो तो असभव नही कहा जा सकता। भजन और गुण गायन के लिए तो इतना आग्रह था कि "राणा रूठ जाए, शहर निकाला दे दे तो परवाह नही," "मैं तो गोविन्द के गुसु गाणा" वही (43) और गुण गायन' करन करते "मगन हो जाना" वही (45) "कीतन गा गाकर अपने राम रनिया को रिझाना" वही (92)—इसकी टेक मीरा ने बना रखी थी।

वस्तुत इस अभिव्यक्ति मे भजन, कीतन, गुणगान तो लोक सम्मत व्यवहार थे ही, नृत्य करना अवश्य ही सम्मानजनक नही था। चित्तौड के राजघराने मे राजवधुओ के लिए तो वह भयकर दुष्कम भी माना जाता रहा होगा क्योकि वहाँ तो महिला महिला से भी पर्दा करती थी, तब इतनी निलज्जता कैसे सहन हो सकती थी।

भजन कीतन और साधना की दूसरी प्रखर अभिव्यक्ति सतमत से प्रभावित ज्ञान, ध्यान और सुरत समाधी से सम्बधित कही जा सकती है। 'पचरग चोला पहिनकर झिरमिट खेलने जाना' और वहाँ 'स्याम से तन खोल कर मिलना' 33(102 20) मे सतमत की आत्मा परमात्मा का विचार अन्त निहित है। इसी तरह 'मोती माणक छोडकर माला दोवडी धारण करना वही (24) और परम गुरु के चरणो मे प्रणाम करना' भी उसी प्रभाव का सकेत करते हैं। 'अपने पिया की पोत को सच्ची मानना', बाकी 'आभूषणो को व्यथ मानना' और 'गुदडी' धारण करना वही (25) उस पर सतपथ के सन्यासी मत का प्रभाव बताता है। 'सतगुरु के सबद' से 'आतम ज्ञान' मिलने की बात अनेक पदो मे स्वीकार की गई है। 'पचरगी झालर, सुखमण सज और सुरत निरत' वही (32) की बात भी कई पदो मे आती है। बल्कि अपने 'परम प्रिय' के लिए सुहाग चिह्न छोडकर 'भगवा चादर पहनन' वही (37) को भी मीरा तैयार है। उतना ही नहीं 'चीर फाडकर कथा धारण करना, वैरागन होकर रहना चूडा, काजल टीकी सब त्याग कर जोगन हो जाना' भी वही (48) उसे कबूल है। लोक-काव्या का सत प्रभाव मीरा पर इतना प्रबल है कि 'अपने जोगी प्रियतम के अग पर भभूत बन कर लिपटना पडे तो वह वैसा भी करना चाहती है।' वही (50)

"अगर चदण की चिता बनाऊँ, अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भसम की ढेरी, अपणे अग लगा जा।"

वही (52)

"प्रिय के कारण जोगन होना, वन वन जोगी को ढूढ़ना तो राजस्थानी प्रेम कथाओ और काव्यो मे प्रचलित सदियो रही हैं मगर मीरा उनमें 'कासी करवत लेने' (52) और 'विष खाकर मरने' जैसे अतिसीम अभिप्राय भी भरती है जो कि उसकी अनुभूति की तीव्रता को व्यक्त करते हैं।

'तन-मन की सुरति मे सजोकर परम तत्व को समपण करना' वही (55) तो साधरण अभिव्यक्ति है, मगर मीरा इससे आगे जाकर भस्म रमाकर, जटा बाँध कर जोगण बनना और च्यारो खूट अपने जोगी को ढूढने वही (70) की साधना से नही चूकना चाहती। नाथ पथी रीति के अनुसार वह जोग सुरति और उसके साथ नतन की अनोखी साधना को अभिव्यक्ति देती है—

मन कू मार सजू सतगुरु, दुरसत दूर भगाऊँ।
डाको नाम सुरत की डोरी, कडियाँ प्रेम चढाऊँ।
ज्ञान को ढोल बाजो अति भारी, मगन हाय गुण गाऊँ।
तन करू ताल, मन करूँ मोरचग, सोती सुरत जमाऊँ।
निरत करूँ मैं प्रीतम आगे, तो अमरापुर पाऊँ। वही (92)

नाथपथियो की तरह 'जोग धारण करके, घर घर अलख जगाने' वही (40) मे भी वह अपनी आतम साधना मानती है, बल्कि 'माला, मुद्रा, मेखला, खप्पर धारण करके' पूरा 'जोगण वेश' ही धारण करना चाहती है। वही (118)

बाल्हा म्हैं बैरागण हूँगी हो।
जी जी भेष म्हारो साहब रीझै, सो सो भेष धरूँगी हो।
सील सतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड रहूँगी हो।
जाको नाम निरजण कहिये, ताको ध्यान धरूँगी हो।
गुरु ग्यान रगू तन कपडा, मन मुद्रा पहिरूँगी हो।
प्रेम प्रीत सू हरि गुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी हो।
या तन की म्हैं करूँ किंगरी, रसना राम रटूगी हो।

वही (152)

कभी उसकी अनुभूति शुद्ध ज्ञानात्मक धरातल पर उभरती है—

सतगुरु भेद बताइया, खोली भरम किवारी हो।
सब घट दीसै आतमा, सब ही सू न्यारी हो।
दीपक जोऊँ ग्यान का, चढ़ू अगम अटारी हो।
मीरा दासी राम की, इमरत बलिहारी हो। वही (158)

नाथपंथी और जोग रीति से परे रहकर कभी अनुभूतियों का प्रभाव सत-मतानुकूल शील-सदाचार को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है—जो कि मारवाड के लोक जीवन का गृहीत सार है, और भक्तजनों की सहज बानी भी है—

यहि विधि भक्ति कैसे होय ।
मन की मैल हिये तें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय ।
काम कूकर लोभ डोरी, बाँधि मोह चडाल ।
क्रोध कसाई रहत उर मे, कैसे मिले गोपाल ।
बिलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत ।
दीन हीन ह्वै छुधा रत से, राम नाम न लेत ।
आपहि आप पुजाय के रे फूले अग न समात ।
अभिमान टीला किये बहु, कहु जल कहाँ ठहरात ।
जो तेरे हिय अतर की जानै, तासो कपट न बने ।
हिरदै हरि को नाम न आवै, मुख में मनिया गनै ।
हरि हितु से हेत कर, ससार आसा त्याग ।
ऐसी मीरा लाल गिरधर, सहज कर बैराग । वही (162)

और मन को धो धाकर साफ करके तब—

चलो अगम के देस, काल देखत डरै ।
जहँ भरा प्रेम का हौज, हंस केल्या करै ।
औढण लज्जा चीर, धीरज को घाघरो ।
छिमता कांकण हाथ, सुमति को मूदडो ।
दिल दुलडी दरियाव, साँच को दोवडो ।
उबटन गुरु को ज्ञान, ध्यान को धोवणो ।
कान अखोटा ग्यान, जुगत को झूटणो ।
बेसर हरि को नाँम चूडो चित्त ऊजलो ।
जीहर सील सतोख, निरत को घूघरो ।
बिंदली गज अरहार, तिलक गुरु ग्यान को ।
सज सोलह सिंगार पहिर सोने राखडी ।
सांवालिया सूँ प्रीति और सूँ आखडी । वही (192)

—मीरा अपने प्रियतम से मिलन जाती है ।

अत मीरा के भजन-कीतन और प्रेम साधना की अभिव्यक्ति में हमे वैष्णव, सत, नाथ सभी मतो के लोक प्रचलित सस्कार एक साथ देखने को मिलते हैं । वस्तुत जहाँ मतमत और नाथपंथी प्रभाव हैं वहाँ अभिव्यक्ति में बाँकपन और स्पष्टता भी अधिक मिलती है । पूजा-अचना के बाहरी तत्वों की बात मीरा क

पदो में नहीं मिलती—आरती, छापा, माला, पूजा भोग आदि के अष्टकम या नवधा रूप मीरा के स्वभाव मे नहीं थे। दरशन और नित नेम का हवाला जरूर मिलता है—

चरणान्नित का नम हमारो, नित उठ दरसण जास्यां। वही (34)

और एक पद मे छापे तिलक का कमकाड भी आता है—

छापा तिलक बणाविया जी मन मई निस्चै धार।
रामजी काज सवारिया, म्हनै भावे गरदन मार।। वही (42)

वैसे ही एक पद मे चाकर भक्ति का हवाला मिलता है 33 (154) और 'दासी' छाप तो कई पदो म मिलती है।

(iii) साधु सगति की टेक मे मध्ययुग मे साधु-सन्त ही लोक शिक्षा के साधन थे। उनके भिन्न-भिन्न मतो के उपदेश, उनकी बानी और उनकी शिक्षाएँ लोक मे जाकर एक सार्वजनिक मान्यता का धरातल बनाती थी जिस पर विविध लोक विश्वासों, रीतियो और प्रथाओ का प्रचलन होता था।

मेडता मे साधु सतो का आवागमन और समागम अपेक्षाकृत अधिक था। यहाँ तक कि वल्लभ मत के पुष्टि मार्गी अधिकारी भी मेडता मे कई बार प्रवास कर चुके थे यद्यपि वे राज्याश्रय के भागीदार नही बने। मुक्त साधु सगति का मीरा पर इतना प्रभाव पडा था कि 'साधु सगति और साधु सेवा' को अपने जीवन का व्रत बना लिया था। वह उसकी प्रेम भक्ति मे एक ऐसी टेक बन गई थी जो हठ की सीमा तक पहुँच गई थी। यहाँ तक कि उसे मरना कबूल था, मगर साधु सेवा छोडना कबूल नही था।

साधु सगति करि हरि सुख लीजै जग सूँ दूरि रहूँ।
तन मन धन मेरे सब ही जावो, भलि मेरो सीस लहू। 33(31)

बचपन से ही साधु सगति की उपयोगिता मीरा ने इस रूप मे और इतनी अनिवार्यता से अनुभव कर ली थी कि परिवार वालो के मना करने पर भी वह नहीं मानती थी—

तू मत बरजे माइडी म्हनै साधो दरसण जाती।
राम नाम हिरदे बसे, माहिले मदमाती। वही (28)

तदुपरान्त उसके पदो मे अनेक बार साधु सगति की अनिवार्यता और साधना मे उसका सहायकपना कई तरह से उगाजर हुआ है—

यदि राजकुल की कन्या या महिला के लिए साधु सतो की सभा मे बैठना निलज्जता थी तो मीरा ने अपने लिए उसे भी स्वीकार किया था—

छाँडि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई।
सतन ढिग बैठि बठि, लोक लाज खोई। वही (15)

—कोई क्या कर लेगा, राजा हो तो अपना राज रख लेगा, धन ले लेगा मगर जिनसे हरि भक्ति का मार्ग मिलता है उन्हें छोड़ने से तो जनम ही अकारथ हो जाएगा। ऐसी उसकी मान्यता उसके पदों से उभरती है। इसलिए उसकी टेक थी कि—

कोई निन्दो कोई विन्दो, म्हें तो गोविंद का गुण गास्यां।
जिण मारण म्हारा साध पधारे, उण मारग म्हें जास्यां।

वही (23)

उसे परिवार निन्दा, कुटुम्ब निन्दा, लोक निन्दा की कोई परवाह नहीं थी। साधु संतों से प्रेरणा लेने या उसमें सुख पाने की उसकी इच्छा अटल थी, अडिग थी। इसीलिए उसने—

"राजकुल की लाज गमाई", और "साधां के संग भटकी" वही (24) उसके कारण—"भाग खुल्यो म्हारो साध संगत सू सांवरिया की वट की। (वही) इसीलिए चाहे 'मात पिता सब कुटुम कबीला, टूट गया ज्यू तागा।" वही (26) फिर भी 'उसका' भाग जाग गया और "जनम जनम का सोया मनवा जाग उठा।" (वही) तो 'मीरांदे' ने उसकी बात मानी नहीं वरना वह तो उस 'राज-कुल' को भी 'बैकुंठ ले जाती।' वही (42)

साधु संगति की टेक के लिए उस 'राजपाट, सुख सुविधा' किसी की परवाह नहीं थी। वह तो इस पर अडिग थी कि—

'राज किय ज्याना करणे दीजे, म्हं भगतां री दासी।"

सेवा साधू जनन की, म्हारे राम मिलन की आस।—उसकी नजर में तो "राम मिलन की आशा के केन्द्र—साधु संगत" का महत्व इतना अधिक था कि उसके माध्यम से ही—

"बड़े घर ताली लागी रे, म्हारे मन री उणरथ भागी री।" वही (2)

वह तो अपने ससुराल में भी साधु संगत की टेक पर अड़ी रही थी—

"राणा ने समझावो जावा, मैं तो बात न मानी।"

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सतां हाथ बिकानी। वही (30)

जब कभी साधु संगत का जाग जमता था, मीरा का अनोखी प्रसन्नता होती थी—

आज म्हारो साधु जनन नो संग राणा म्हारा भाग भल्या।
साधू जन नो संग जो करिये, चढ़े तो चौगुणो रंग रे। वही (33) वह तो "सब तरह के संतों पर तन मन वारती थी" वही (41)—इसका आशय यह भी था कि "ज्ञान के लिए वह मुक्त भाव पसंद करती थी। उसके लिए यदि राणा लज्जित होता था तो मीरा का कथन था—

"अपणे घर का परदा कर ले, मैं अबला बौराणी।"—(वही) उसकी टेक भी—"सेवा करस्या साध की, म्हारे और न दूजो काम। वही (47) उसने तो "साधु सगति ने ही सुगति पाई थी", वही (16) इसलिए—

साधु मात पिता कुल मेरे, सजन सनेही ग्यानी।

सत वरण की सरण रैन दिन, क्षत्त कहत हू बाणी। वही (30)—और जो माता पिता हो कुल-कुटुम्बी हो उनसे लज्जा कैसी, दुराव छिपाव कसे।

साधु-सगति की इतनी महिमा अन्य किसी भक्त या सत कवि की रचनाओ मे नही मिलती तो इसका कारण सभवत मीरा का राजघराने से जुडे रहने का तथ्य होगा। राजघराने चाहे भजन कीर्तन मडलियो का आयोजन करवा सकते थे, साधुओ की सेवा की व्यवस्था करवा सकते थे, मगर उनकी सगति मे बैठना और उनके साथ उठना बैठना मर्यादा मे नही अटता था। इसी प्रतिष्ठा का खडन मीरा ने किया था, उसी पर टीका टिप्पणी भी हुई थी और अतत मीरा के चित्तौड त्याग का कारण भी वही टेक बनी थी।

(iv) खानपान, वेशभूषा, आभूषण आदि के प्रासगिक उल्लेखो मे जोधपुर-मेडता मारवाड भारतीय सस्कृति मे अपने चटक रगो, वस्त्रो, आभूषणों और खानपान के लिए विख्यात रहा है। मीरा के पदो मे यद्यपि इन वणनो और प्रसगो के बारे मे समृद्ध और विविध सकेत नही मिलते, किन्तु अन्य लोक काव्यो और रासो साहित्य मे पर्याप्त सूचनाएँ मिल जाती हैं। मीरा के पदो मे खानपान, वेश-भूषा, आभूषण आदि के पर्याप्त सकेत न मिलने का एक कारण तो उसकी सहज वैराग भावना का हो सकता है, दूसरा उसकी अनुभूति प्रवणता का और तीसरा प्रेम भक्ति की केन्द्रीय वृत्ति का जिसमे इस तरह के सकेत कही प्रासगिक होकर आए हैं तो आए हैं अन्यथा वैसा कोई लक्ष्य रहा नही।

वसे मध्यकालीन सिगार भोजन की स्थिति आर्थिक सामाजिक स्तरो के अनुसार भिन्न भिन्न रही थी। दूध, दही, घी, छाछ, लूणी, बाजरा, मूग, तिल—सावजनिक खानपान के पदार्थ थे। रोटी छाछ, दूध रोटी का चलन लगभग हर परिवार मे था और आज भी वही चलन मिलता है। प्रात काल दही रोटी भी अधिकतर चलन मे है। वार त्यौहार और जिमणार म लपसी गात और घी श्रेय स्कर माने जाते थे। लोककाव्यो मे भी उनके उल्लेख आते हैं—

छटठे प्रहरै दिवस कै हुई न जीगणवार।
मन चावल, तन लापसी नैणज घी की धार।

अमल पाणी भी राजपूती घराना मे आम चलन की बात रही है जिसका हवाला मीरा के पदो मे भी मिलता है—"राम अमल माती रहे, धन मीरा राठौड।" 33(47) बिम्बा फल (9), दाडिम (9) और फलो (15) के उल्लेख

केवल उपमा मूलक अभिव्यक्ति में हुए हैं। मीरा की जैसी वैराग भावना थी और चित्तौड म जिस ढँग से उसने विद्रोहिणी टेक धारण कर रखी थी तथा राणा के कोप की शिकार बनी थी, उस कारण सभव है कि उसे आम मेडतियो का भोजन—छाछ और रोटी—की ही आपूर्ति की जाती रही हो—

खीर खाड को भोजन त्याग्यो ये बाई, त्याग्यो दधणीचीर।
राणा सो वर त्याग्यो ए बाई, सब सतन मे म्हारो सीर। 9(205 13)

बास्या खूस्या टुकडा ये भाभी और मिलसी खाटी छाय।
रो रो भूखा मरो ये भाभी, नहीं मिले हरि आय। (वही)

बास्या तो कूस्या टुकडा ये बाई, पीस्या खारी छाय।
म्ह रोवा, भूखां मरां ये बाई, जबरे मिलेगो हरि आय।
माया म्हें तो यू रे लजी। (वही)

दूध दही गोरस के सकेत व्रजवर्णन के कुछ पदा मे मिल जाते हैं—33(163, 168 व 178) म "भोजन दूध दही को", "गोपी दही मथत सुनियत है," 'दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी"—जैसे ही।

बाकी सम्पन्न परिवारो मे खानपान का स्तर काफी अच्छा और भली भाँति की मिठाइयो चटनियो, अचारो आदि से सम्पुटित होता था। राज परिवारो मे मेवा, मिष्टान्न, खाड, खीर कदु मधु, द्राक्षा, केसर, कपूर कस्तूरी, भाँति भाँति की मिठाइयो आदि से सम्पृक्त होता था। नशे के लिए अमल पाणी, ताम्बूल सेवन, मदिरा आदि का चलन भी लोक व्यापी था। मगर सावजनिक जीवन म मूग, बाजरा और गोरस की चीजो का चलन ही प्रधानतया था। भात का चलन बहुत विरल और वार-त्यौहार पर ही होता था, वह भी घी शक्कर के साथ। जब किसी प्रसिद्ध वीर की मत्यु होती थी या शोक होता था तो भात को वर्जित किया जाता था। वह शोक मनाने की प्रथा थी।

वस्त्राभूषण के बारे मे भी उसी तरह से प्रासगिक सकेत ही मीरा के पदा मे मिलते हैं। अन्य स्रोतो से प्राप्त सूचनाओ के अनुसार स्त्री-पुरुष, बालक-बूढे सब चटकदार रगो के भारी वस्त्राभूषण धारण करते थे। तथापि विधवाओं के लिए वस्त्राभूषण, सिगार आदि की बजनाएँ थीं। पुरुषो के लिए पाग और उस पर प्रतिष्ठा के अनुसार कलगी पेंच आदि इज्जत की चीज होती थी। नीमा, जामा, अगरखा, पीताबर, दोलगी धोती, कमर बद, कछनी, मोजडी—वेशभूषा में प्रचलित वस्त्राभूषण थ। धीर लोग पैरो मे लगर भी पहनते थे। स्त्रियां मे घाघरा, चुनडी, काचली चूडा, गले के हार, कान, नाक, सिर पैर के अनेक तरह क आभूषण आर्थिक-सामाजिक स्थिति के अनुसार प्रचलित थे। सबके लिए यही मगर स्तर भेद से राखे, पीतल, चाँदी, सोन क थे हुआ करत थे। मीरा क एक

प्राचीन चित्र मे 11 (आरभ मे) मीरा को घाघरा, चुनडी, काचली के साथ बताया गया है और बोरडी, कण फूल, नौसर हार, चूडले भी चित्रित हैं।

मीरा के पदो मे वस्त्राभूषण के जो प्रासगिक सकेत आए हैं वे या तो कृष्ण के स्वरूप वणन के रूप मे या जोगी के उल्लेखो मे या अन्यथा रूपो मे आए हुए हैं।

कृष्ण के प्रसग मे कृष्ण के प्रसग मे मीरा का वस्त्राभूषण का वणन परम्परित भी है और 'अपनी छाप वाला' भी है। अधिकतर वो 'मोर मुकुट, तिलक, कुडल,' 33 (2) कमर मे छोटी घटियो वाली करधनी, पैरो मे नूपुर, 33 (3) पीताम्बर, गल मे वैजयती माला 33 (6)—और ऐसे ही रूप मे 'कालिदी क तीर हो काहा, गउवां चराय' वही (6) और 'सीतल कदम की छहियां मुरली बजाय' कहकर चित्रण किया गया है। मगर, कही उनके 'बांके, छैल छबीले रूप' को उकेरते समय 'बक्ट छवि' उभारी गई है। उसम 'भौंह भी बांकी, अलकावलि भी बांकी, पाग भी बांकी और बाकी पाग पर लट भी बांकी' वही (7) है। उसके साथ 'कटि बांकी' और 'कर मे मुरली भी बांकी' हैं। कभी 'तिलक' केसर का कहा गया है, कभी 'चदन का'। इसका मतलब यह कि चदन मे केसर घिसकर तिलक करने की प्रथा जब भी थी। अधिकतर तो कृष्ण की वेशभूषा, 'मोर मुकुट पीताबर सोहे, गल वैजती माला" वही (154) वाला ही है, उसमे कभी 'केसर का तिलक' जुडता है तो कभी 'हरि के कुडल वही (164) झलकते हैं। एकाध स्थान पर मीरा के कृष्ण 'रतन सिंघासण पर बिराजते' हैं और 'तुलसी का मुकुट' वही (163) धारण करते हैं। जोधपुरी प्रभाव से एक पद मे मीरा के कृष्ण 'पीताबर फेटा बाँधे, अरगजा से अपने को सुवासित किए हुए' भी हैं। वही (166) वे 'ठाकुर' रूप मे मीरा को 'दरसन' देते हैं। वैसा ही पूरा मारवाडी पुरुष का रूप मीरा उकेरती है—

आवत मोरी गलियन मे गिरधारी।
मैं तो छिप गई लाज की मारी।
कुसुमल पाग केसरिया जामा, ऊपर फूल हजारी।
मुकुट ऊपर छत्र बिराजै, कुडल की छबि न्यारी।
केसरी चीर, दरयाई को लैंगो, ऊपर अगिया भारी।
आवत दखी किसन मुरारी, छिप गई राधा प्यारी।
मोर मुकुट मनोहर सोहै, नथनी की छवि न्यारी।
गल मोतिन की माल बिराजै, चरण कमल बलिहारी। वही (172)

—यह मीरा के कृष्ण का राज रूप है जो तत्कालीन पुरुष वेशभूषा का चित्र स्तुत करता है।

जोगी रूप के उल्लेखों में मारवाड क्षेत्र मे 'जोगी' नाथपथी योगियो के लिए

प्रचलित सम्बोधन है। उस संस्कृति में नाथ पंथ का प्रभाव इतनी गहराई तक था कि मीरा के पहले से ही लोकगाथों और कथाओं में प्रियतम के लिए जोगी का सम्बोधन और जोगसाधना से उसे पाने के अभिप्राय प्रचलित थे।

मीरा ने नाथपंथी योगी के शील, व्रत, सदाचार और उसकी वेषभूषा आदि को प्रियतम कृष्ण पर आरोपित किया है—

धूतारा जागी एक रसू हसि बोल।
जगत बदीत करी मनमोहन, कहा बजावत ढोल।
अंग भभूति, गले मृगछाला, तू जन गुड़ियां बोल।
सदन सरोज वदन की सोभा, अभी जोऊँ कपोल।
सेली नाद वभूत न बटवो, अजू मुनी मुख खाल।
चढती बैस नैण अणियाले, तू घरि घरि मति डोल। 33(62)

वैसे ही योगियों के परम्परित रूप और वेशभूषा को उकेरा गया है—

आसन मांडि गुफा मे बैठो, ध्यान हरी को लगायो।
गल बिच सेली, हाथ हाजरियो, अंग भभूत रमाय। वही (189)

—बस, जोगी रूप मे प्रियतम की वस्त्राभूषण सज्जा का इतना ही उल्लेख है। इस रूप के वर्णन मे मीरा की रुचि उतनी नहीं रही जितनी कि उस परम जोगी को पाने की साधना में 'जोगन' का रूप बनाने और खोजने के अभिप्राय मे थी।

"चूडो म्हारे तिलक अर माला, सील वरत सिणगारो।
और सिंगार म्हारे दाय न आवै, यो गुर ग्यानहमारो।
वही (23)

वह 'जोगन' बन कर 'पचरंग चोला पहर कर' 'झिरमिट खेलने' जाती है वही (20) और वहां अपने सांवरे से तन खोलकर मिलती है।' 'इमरित प्याला पीने की इच्छुक' मीरा—

"मोती माणक परत न पहरूँ, मैं तो कबकी नटगी।
गैणो तो म्हारे माला दावडो, अर चन्दण की कुटकी। वही (24)

—अपने प्रियतम से मिलने के लिए, वह जोगन—

या तन ऊहर भेस्म रगाऊँ, खोर करूँ सिर केस।
भगवां भेस धरूँ तुम कारण, ढूढत ज्याऊ देस। वही (70)

और—

तेरे कारण जोगण हूगी, दूगी नगर बिच फेरो।
अंग भभूत गले सिंग छाला योगन भस्म करूँ री।
अजहू न मिल्या राम अविनासी, बन बन बीच फिरू री। वही (94)

वह पूरी तरह जोगण बेस धारण करके अपने जोगी को ढूंढना चाहती है—

"माला मुदरा मेखला रे बाला, खप्पर लूगी हाथ।
जोगिण होय जग ढूंढ, सू रे, म्हारा रावलियारी साथ। वही (118)

इसके साथ ही जोगियों के 'कीकरी' के वाद्य का भी हवाला है। वही (151) य सब वेशभूषा जोगी पथियो की है जिनका चलन मीरा के समय मे अधिक था और जिनके अभिप्राय लोकमानस मे गहराई तक पैठ चुके थे।

अन्य प्रसगों मे ऐसे ही प्रसग, तत्कालीन वेशभूषा, सिंगार आदि के, बिखरे-बिखरे सकेत मिलते हैं। कही अभिसार मूलक 'पचरगी चोले' (20) का सकेत है, वही सौभाग्य चिह्न चूडे' का (23), कही 'मोती, माणिक जडे आभूषणो का' (24), कही सामान्य जनो की स्त्रियो के सुहाग चिह्न 'पोत' (25) का तो कही सम्पन्न वग के 'पाट पाटम्बर' और 'दिखणीचीर' (25) का हवाला है। 'हजारी हार' व 'रतन जडित आभूषण' (30) राजघरानो के आभूषण थे, तो 'बाजूबद, कडूला और माग मे सिंदूर' (32) सुहाग के चिह्न थे। 'काजल, टीकी' (35) सावजनिक उपयोग के सिंगार, तो 'नौसर हार' (44) राजमहलो मे ही सभव था। सामान्य जनो के 'चीर' 'चूडियां' और 'काजल' (48) भी सुहाग चिह्न होते थे जिन्हें प्रिय वियोग मे छोडने तोडने की प्रथा थी। वही 'माँग भरने' (48) या 'सजाने' की भी रीत थी 'दुहाग' मे माँग बिखेर कर केस खुले छोड दिए जाते थे। 'बालो मे पट्टी पाडना', और 'माँग सवारना' (129) सुहागिनो का काम था, जबकि बैरागन होने पर 'भगवा चादर' धारण की जाती थी। 'हार', 'चीन माल चतुरभुज चूडलो', 'झाँझरिवा', कठी, 'बिछुवा', 'घुघरू', 'अनवट', 'कमर पेटी', 'टीका (139)—ये सब विविध प्रकार के आभूषण थे।

मीरा ने इनके हवाले सयोग वियोग की अनुभूतियो के प्रसगत दिए हैं।

(v) सुहाग दुहाग की सांस्कृतिक चेतना के रूप में मीरा के पदो मे तत्कालीन सामाजिक रुढिया, रीतियो और मान्यताओ का दिग्दशन सुहाग दुहाग की चेतना के हवालो से भी होता है। सुहाग के चिह्न चूडा, टीकी, काजल, माग, सिंदूर, चुनडी चीर आदि को दुहाग के समय या तो स्थगित करने की रीति थी या फिर उन्हें मिटाने की। मीरा ने इष्ट के वियोग मे अनेक बार ऐसी अभिव्यक्ति की है कि—

चूडो म्हारे तिलक अरु माला, सील बरत सिंगारो।
और सिंगार म्हारे दाय न आवै। 33(23)

अपने 'दुहाग की बेला मे मीरा ने 'मामूली कँठी माला' धारण कर रखी थी। उससे कहा जाता है—

छापा तिलक गल हार उतारो, पहिरो हार हजारी।
रतनजडित आभूषण पहिरो, भोगो भोग अपारी। वही (30)

अपने प्रिय के वियोग मे मीरा 'दुहाग' की रीति का पालन करती है—

गहना गाँठी हम सब त्यागा, त्यागो कर रो चूडो।
काजल टीकी हम सब त्यागा, त्यागो छै वाधन जूडो। वही (35)

बल्कि,

"महल अटारी हम सब त्यागा, त्यागो थारो बसनो सहर।
काजल टीकी हम सब त्याग्या, भगवी चादर पहर। वही (37)

—भगवा चादर पहनकर वैरागन कहलाना 'दुहाग सूचक' था।
दुहाग का एक लक्षण था कि वैसी महिला रूखा सूखा खाती थी, भूमिशयन करती थी और अन्न पानी का त्याग करके अपने को तपस्या मे झोक देती थी—

"सीप भर्‌यो पाणी पिवे रे, टाक भरयो अन्न खाय।
"बास्यो तो कूस्यो टूकडा ये बाई, पीस्या खाटी छाय।
भुई हूवो, भूखा मरो ये बाई, जब रे मिलेगो हरि आय।
9(205 13)

इतना ही नहीं दुहाग की स्थिति मे—

"फारूंगी चीर करूं गल कथा, रहूगी वैरागण होय री।
चुरियो फोरू माँग बिखेरू, कजरा मैं डारू धोयरी। 33(48)

सुहाग की बेला मे सिगार करना, मोतियो के चौक पूरना, वही (54) मगल गाना बधाइया झेलना सास्कृतिक चेतना के तत्त्व थे तो दुहाग मे "घर मे दीप जलाना' भी वर्जित होता था—

बिन पिया जोत मदिर अँधियारो, दीपक दाय न आवे। वही (76)

और

"दीपक जोय कहा करू सजनी, पिय परदेस रहावे। वही (79)

सुहाग हो तो—

रतन करूं नेवछावरी, ले आरति सारूं हो।
पाँच सखी इकठी भई मगल गावे हो।
पिय का रसी बधावण, आणद अगिन मावे हो। वही (148)

इस तरह से सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति मीरा के पदों में मिलती है जो बताती है कि तत्कालीन लोकतत्वों की सहज प्रकाशिका मीरा थी।

(vi) राजरीतियों के प्रासगिक हवालों म एक ओर जहाँ लोकजीवन और लोक सस्कृति की चेतना मीरा के पदो मे व्यक्त हुई है, वहाँ प्रासगिक रूप से राजरीतियो के भी कुछ सकेत मिलते हैं। मेडता मे यद्यपि राजरीतियो मे और लोकरीतियो मे स्वरूपगत अतर नही था किन्तु चित्तौड मे था।

चित्तौड मे राजघराने को शासन प्रतिष्ठा का परम्परित दर्जा मिला हुआ था। वैभवपूण जीवन, विलासितापूण उपभाग और साधारण जनो से अलगाव वहाँ की राजरीतियो के आधार थे जबकि मेडता नवस्थापित राज था जहाँ राज घराने और जाट, सरदार और भाई बधु कठिन सघष मे साथ साथ रहते थे। मेवाड मे राणा अपने थाल मे से कुछ सामग्री दाने मे रखकर किसी सरदार को दे सकता था और उसे सौभाग्य समझकर अपनाया जा सकता था, मगर मेडता की ओर ठाकुर सरदार और अन्य उत्पादक जन एक थाल मे भोजन करते थे। घनिष्ठता, सम्पक और समानता की यह रीति आज भा मारवाड के कई क्षेत्रो मे लोकरीति के रूप मे देखी जा सकती है। मीरा वहाँ की उपज थी जिसे राजवधू बनकर एक विपरीत रीतियो वाले समाज मे जाना पडा था जहाँ स्त्री, स्त्री का घूघट निकालती थी, बोलना तो अपमान करने के बराबर माना जाता था।

नारी भावना के साथ 'हुजूरी', 'पाँय लिपटान' जैसी रीति रही थी। मीरा के पदो मे इसीलिए 'दासी मीरा' और चरण लिपट परूँरी' जैसे सहज प्रयोग हुए हैं।— 'ऊभी ढाडी अरज करत हूँ", 33(5) "मीरा कहे मैं दास रावरी" (4), "तन मन धन गिरधर पे वारूँ, चरण कवल मीरा लपटानी" (8)—मे नारी की समर्पण रीति और पुरुष के मुकाबले उसकी व्यवहार रीति के सकेत हैं।

साधारण लोक जीवन मे तो पत्नी परिवार के भरोसे रह करदुहाग की अवधि भोग सकती थी, किन्तु राजनीति मे राजवधू को प्रिय की प्रतीक्षा, दुख भोग और मौन विलाप निभाना होता था। मीरा के कई पद ऐसा सकेत करते हैं—

"लोक कुटुम्बी गरजि बरजहिं बतियाँ कहत बनाई" (10), यदि वैसी रीति का पालन न हो अथवा अन्यथा रूप से अपनी व्यथा को भुलाने की कोशिश की जाए। यदि प्रीतम कभी भूले भटके 'रीझ' जाएँ 'तो बड भागण रीझै हो' (13) माना जाता था, वरना तो राजनीति मे— जो पहिरावै सो ही पहिरूँ, जो दे सो ही खावू' 'जहाँ बिठावे तित ही बैठू, बेचे तो बिक जावू (17) वाली रीति का पालन करना पडता था।

निरतर युद्ध और सघष मे लिप्त राज पुरुषो की पत्नियो को सदा उनकी प्रतीक्षा ही रहती थी। यही प्रयत्न करने पडते थे कि—'तरो ही उमरण, तेरो ही सुमरण' (18), करते रह कर "वोहि जेहि विधि मेरो साहिब रीझै, तेहि तेहि विधि कीजे हो"—के उपाय करके उसे रिझाये रखना पडता था।

यदि पति सेवा, पति आशा और स्थापित मर्यादा का पालन न हो तो राज-

रीति निभाने के लिए सुवचन, सीख आदि भी दिए जाते थे—

"लाजे पीहर सासरो, माइ तणो मोसाल।
सब ही लाजे मेडतिया जी, थां सू बुरो कहे ससार।" वही (29)

—मेडता मे तो साधु सगति पर उतना अकुश नही था, मगर चित्तौड मे था और राजवधू होने के नाम पर चित्तौड की प्रतिष्ठा मेडते मे भी निभानी जरूरी थी। इसलिए मीरा के सत्सग की टेक का जैसा विरोध चित्तौड में था, वैसा बाद मे मेडतियो ने भी किया ही होगा।

राणे रोस कियो था ऊपर, साधां मे मत जारी।
कुल को दाग लग छै भाभी निंदा हो रही भारी।
साधां र सग वन वन भटकी, लाज गमाई सारी।
बडा घर थें जनम लियो छै, नाचो दे दे तारी।
बर पायो हिदवाणै सूरज थे काई मन धारी। (30)

—बडे घर और बडे कुल की स्त्रिया की मर्यादा महलो मे रहने की और प्रतिष्ठा के अनुसार परदे म रहने की थी। उनकी प्रतिष्ठा इसमे थी कि—

"पहिरो हार हजारी", 'रतन जडित आभूषण पहिरो", और "भोगो भोग अपारो" (30)। उसके साथ-ही साथ 'ऊँचे चढि चढ़ि' अपने प्रिया का 'पथ निहारो' (106) और "रोय रोय अँखियाँ राती करी।" (वही)

कभी 'प्रीतम' आ जाएँ या 'उनके आने की भनक मिले' तो 'सिगार कर, मोती चौक पूराने, आरती सजाने (148) और मगल गीत गाने (54) तथा मोती रतन आदि की नेवछावरि करना' की राजरीत थी। और, न आएँ या आकर भी न आएँ तो—

"फारूँगी चीर करूँ गल कथा, रहूँगी वैरागण होय री।
चूरियाँ फोरूँ, माँग बिखेरूँ, कजरा मैं डारू धोय री।" (48)

—इस तरह अपने को 'दुहागन' बनकर जाहिर करने की रीति थी।

यह सार्वजनिक रीति भी थी कि प्रिय परदेस में हो' तो घर अँधेरा रखा जाता था। वही रीति राजघरानो में भी थी—

"दीपक जोय कहा करूँ सजनी, पिय परदेस रहावै।" (79)

—इस तरह से मीरा के पदों में तत्कालीन राजरीतियों और लोकरीतियों के कुछ सकेत मिल जाते हैं। वैसे भी अन्य स्रोतो से पता लगता है 13(238) कि राजरीति में पत्नी के लिए पति का परमेश्वर मानना, प्रात उठकर उसका दर्शन करने, कोई शिकायत या शिकवा न करने, सब कुछ सहन करने और बनठनकर बने रहने का महत्त्व अधिक था। 'मान' करना, रूठना जैसी क्रियाओं

को दुर्गुण माना जाता था। राजघरानो मे बहुपत्नी की प्रथा थी, इसलिए भी पत्नी को अपने पति की प्रतीक्षा करनी पडती थी। तदथ हर एक को पति को रिझाए रखने के उपाय करने पडते थे। पतिपरायण होने से और पति का विशेष स्नेह मिलने पर उसका राजनीतिक सम्मान भी बढता था। अवमानना की स्थिति मे 'महलो से उतार देने की रीति' भी थी। दास-दासियो मे कमी, भोजन पानी पर नियत्रण और सुख साधनो मे कटौती के साथ कभी-कभी 'हाथ खच के परगने' भी जब्त कर लिए जाते थे। अत राजपूती वधुआ को पूणतया परवश होकर रहना पडता था।

(vii) लोकरीतियो और प्रथाओं के वक्रता विधानों मे मीरा के पदो मे राजरीतियो की तरह लोकरीतियो और प्रथाओ के सकेत भी अभिव्यक्ति माध्यम के रूप मे अथवा विश्वासो, मान्यताआ के आधार रूप मे बिखरे हुए मिलते हैं। इन्हें हम कुछ शीपका म रखकर देख सकते हैं—

(क) अवतार मान्यताओ के रूप मे,
(ख) लीला धारणा के रूप मे,
(ग) पुराण-मान्यताओ के विश्वासो म,
(घ) जीवात्मा दशन की मान्यता मे
(च) विवाह, विरह आदि के रीति सकेतो मे,
(छ) जन्मातर से मुक्ति-चाह की धारणा मे,
(ज) ससारी काय व्यापार-बनज आदि के सकेतो मे।

हर समाज मे—देश काल के अनुसार—अपनी कुछ मान्यताएँ होती हैं जो सामाजिक जीवन प्रथाओ आदि के मूल मे प्रेरणा केन्द्र बनती हैं।

मीरा के युग म भी युगयुगान्तर से आई हुई कुछ मान्यताए रही होगी। जो उसके पदो म अनुभूति या अभिव्यक्ति के रूप मे उभरी हैं—

(क) अवतार मान्यताओं के रूप मे पुराने समय से नाना मत मतान्तरो ने ईश्वर के मूल रूप को अवतारो के रूप मे अवतरित माना है और उन्हें सासारिक कष्टो, सघर्षों मे रक्षक की तरह स्वीकार किया है। मीरा के समय मे मेडता क्षेत्र मे—नृसिह अवतार, चार भुजा और विष्णु अवतारो की लोकमान्यता थी। उसके पदो मे इन अवतारो और उनसे जुडी पौराणिक कथाओ के सकेत स्तुति, प्राथना, विनय सम्बन्धी अनुभूतियो मे आए हैं—यथा—33(1), (63), (94), (65), (138) मे खास करके विष्णु अवतार की महिमा का बखान किया गया है। दूदाजी वैष्णव थे और चार भुजा (विष्णु) उनके वश परम्परागत इष्ट थे। मीरा के पदो मे, अत (एक पद को छोडकर), विष्णु का ही स्मरण हुआ है। ऐसे अवतारो को तरण तारण (61)' लज्जा रक्षक (64)' 'कष्ट निवारक, (63)' 'आरति हर' (65) के रूप मे स्मरण किया जाता है और उस माध्यम से

हारी-थकी आत्मशक्ति को सजीवन दिया जाता है। लोक मे भी अवतार मान्यता बहुत गहराई तक जमी हुई है।

(ख) लीला धारणा के रूप में ईश्वर को जगन्नियता, सूत्रधार और सचालक मानने की धारणा बहुत पुरानी है। उसके अवतारो के साथ भी लीलाओं के विश्वास बँधे हुए हैं। किन्तु 'लीला' का बहुप्रयोग कृष्ण अवतार के साथ है। मीरा की भक्ति 'कृष्ण' केंद्रित थी और उसके पदो से सकेत मिलता है कि उस समय कृष्ण लीलाओ मे व्रजलीला (गोप) (164), बाललीला (165,66) माखन लीला (167), वशीलीला (166) नागलीला (168), चीरहरण लीला (169), रासलीला (172 73), पनघटलीला (174,75,76), फागलीला (177), दधिलीला (168,79), मथुरालीला (181,82 83), योगलीला (184, 85, 86), सुदामालीला (188) का चलन हो चुका था। लीलाओ की ऐसी विविधता अन्य किसी अवतार के साथ नहीं थी।

(ग) पुराण मान्यताओं के विश्वासों में—अवतारों के साथ, उनकी स्तुति, वदना उनसे सम्बन्धित उत्सवों, आयोजनो आदि के साथ पुराण मान्यताओ के विश्वास भी जुडे हुए होते हैं। उन विश्वासों के बल पर ही, आज भी रामनवमी, दशहरा, रक्षाबधन, होली गणगार जैसे त्यौहार, पव, उत्सव आदि लोक जीवन मे आयोजित होते रहते हैं। उसी तरह दान, पुण्य, नित्तनेम, व्रत-पालन, तीरथ आदि लोक जीवन मे क्रियाशील होते हैं। मीरा के पदो में ऐसे कुछ विश्वासों के सकेत मिलते हैं—

चदा जाएगा, सूरज जायेगा, जायेगी अकासी।
पवन पांणी दोनू ही जायेंगे, अटल रहे अविनासी। 33 (20)

मे अमर का विश्वास,

ना घर तेरा, ना घर मरा, गावै मीरा दासी। (वही)

मे असारता का,

चोटी न कररयाँ जिव न सतास्या, काई करसी म्हारो कोई।

मे शील की निर्भयता का,

गज से उतर के खर नहिं चढस्याँ, ये तो बात न होई। वही (23),

मे ससार की हेयता का,

चरणामृत को नम हमारा नित उठ दरसण जास्याँ। वही (34)

में नेम धरम का,

झूठा माणक मोतिया री, झूठी जगमग जोति।
झूठा सब आभूषणाँ री, साँचा पियाजी री पोति। वही (25)

मे ससार की अनित्यता का,

छैल विराणो लाख को हे, अपणे काज न होइ ।
वाके सग सिधारतो हे, भला न कहसी कोइ । (वही)
वह हीणो अपणो भलो हे, कोढी कुष्टी काइ । (वही)

मे पतिनिष्ठा का,

आटेज पूजै जोरज्याजी थे क्यू न पूजो जोर ।
मन बधत फल पावस्योजी, थे क्यू पूजे और । वही (20)

मे पूजा परिणाम का,

चोरी करा न मारगी, नहिं मैं करूँ अकज ।
पुन के मारग चालतां जी, झक मारे ससार । (वही)

मे शीलव्रत का,

राणाजी म्हारी प्रीत पुरबली मैं काई करूँ । वही (42) और
"रामजी काज सवारिया, म्हाने भावे दरदन मार ।"

मे अतिविश्वास की धारणा है ।

— ऐसे अनेक विश्वास और ऐसी अनक धारणाएँ मीरा के पदो मे मिलती हैं जो उस समय के लोकमानस के घटको का हवाला देती हैं—

"विष का प्याला राणाजी भेज्या, अमत कर आरोगे मे" वही (40) —भक्ति की निष्ठा और उसके सुफल का 'विश्वास' जमा हुआ बैठा है क्योकि, 'कर चरणामत पी गई म्हाने रामजी के विश्वास' वही (42) वाला विश्वास पुराणो से छन-छन कर लोक मानस मे गहराई तक उतर गया है । बैंकुठ जाना' और 'अपन साथ दूसरो को भी तार देना' का विश्वास भी उस समय था—

राठोडा री धीवडी जी, सीसोदयां र साथ ।
ले जाती बैंकुठ कू, म्हारी नेक न मानी बात । वही (पद)

—और इष्ट के प्रति निष्टा की गहराई इतनी अधिक कि घर, द्वार, राज, परिवार छूटे तो परवाह नही—हरि रुस्या कत जाणा ! वही (44)

'पूवजन्म' और 'पुनर्जन्म' भी मजबूत पौराणिक विश्वास था । आज भी है । 'प्रीत पुरबली मैं काइ करू' के साथ 'पूरबजनम की प्रीत पुरानी सो क्यूं छोडी जाय' वही (46) और 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर पूरबजनम को कौल — —मीरा के पदो म व्यक्त है । इष्ट मे भरोसा भी अनन्य भाव से रखा जाता था कि थारी 'मारी ना मरूँ, म्हारे राखण हारो और' वही (47) ।

और इस दुनिया मे, जगत मे, घर-परिवार मे लोग मिलते हैं तो वह 'सुख रासि' होती है मगर बिछुडते हैं तो सतापकारी होता ही है । पुराण मान्यता जमी कि—'मीरा के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछुरो मत कोई री ।' (48)— कितनी मगलमयी कामना है जो पुराण-मान्यताओं न हम दी है कि उसके बल पर

जीवन आशा किरणें फेंकता है और उनके भरोसे संतापो को, कष्टो को सहने की ताकत मिलती है। जब तक अपने को गुणहीन, अबला और नीचा न माना जाए तब तक इष्ट के प्रति ऐसा विश्वास और इतना भरोसा उपज भी तो नहीं सकता। इसलिए—

मैं गुणहीन गुण नहिं गुसाईं, तुम समरथ महाराज।' वही (51)

—केवल मीरा की वानी नहीं है। वह लोक जीवन की जड है और हर भक्त कवि में उसका रस स्रोत उजागर मिल जाता है। 'भव सागर' का विश्वास, 'उससे पार पाने की कामना, उसके लिए 'भक्ति' व साधना' हजारो वर्षों से लोक चेतना के तत्वो मे रही है। 'तभी भी सागर मे बही जात हूँ, वेग म्हारी सुध लीजे हो।' (53) कहकर मीरा उस लोक मान्यता को अभिव्यक्ति देती है।

(घ) जीवात्मा दर्शन की मान्यताओं मे भारतीय दर्शन जीव को परमात्मा का विकरण मानते हैं और कर्म के अनुसार जीव को चौरासी लाख योनियो म भ्रमणशील। तदुपरांत यदि 'जीव-मुक्ति' हो गई तो वह प्रकाश पुंज मे एकाकार हो जाता है अन्यथा पुन भवचक्र म फँस जाता है। यह दार्शनिक मान्यता लोक जीवन मे बहुत गहराई तक धँसी हुई है, बहुत पुरानी है और सारे सांसारिक क्रियाकलापो अध्यात्म चेतना सदाचार व नैतिकता के मूल मे भी है। मीरा के पदो मे यह लोक मान्यता कई तरह से प्रकाशित हुई है—"म्हारो जन्म मरण को साथी, थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती" 33 (86), से लेकर, "म्हारी प्रीत पुरबली मैं काइ करूँ, और 'म्हारे भी भी से भरतार' तक उसन इसी लोक मान्यता को अभिव्यक्त किया है। 'पुरवजनम को कोल' (19) मे भी वही मान्यता मुखर है। और, इस मान्यता के आधार पर ही मीरा की भक्ति की टेक टिकी हुई है उसका 'प्रभु के मिलने का विश्वास टिका हुआ है और एकांत समर्पण का दुराग्रह भी।

इसी जीवात्म दर्शन की मान्यता के आधार पर जीव 'दास' है और परमात्मा 'तरणतारण' है 33(1) वह परमात्मा 'सतन सुखदायो' है, 'भगत वछल' (2) है और अविनाशी होने से उसके बिना जीव का कोई दूसरा आधार है ही नहीं, वह 'जीवन प्राण आधार' (4) है। उसे 'जीवा मूर जडी' (11) भी कहा गया है और यह भी कि 'हरि रूस्या कत जाणा।'

उस परमतत्व को चाहे जिस रूप म जीवात्म भजे, लक्ष्य वही होता है कि 'भव सागर में बही जात हो, वेग म्हारो सुध लीजे है,' मार्ग चाहे भजन का हो, सत्संग का हो, साधना का हो। मीरा के समय मे नाथपथ सिद्धो और लोक देवताओं की सिद्धियो का भी मेवता के लोकमानस पर गहरा प्रभाव था। अत मीरा के पदों म जीवात्म दर्शन व निरगुनिया तत्व भी प्रकाशित हो गए हैं।

वह 'जोगी' हो गया है जो 'आसन मांडि गुफा मे बैठा', 33(189) है। उसकी साधना बडा कठिन है और जोगी से प्रीत करके' काहू न सुख लह्यो' क्योकि जोगी किसी का मीत नही होता। वह तो 'ज्याति स्वरूप' होता है जिसकी साधना 'सुन महल मे दिवला जलाकर रात दिन बलते रहने' मे होती है। साधना सम्बन्धी ऐसे लोक विश्वास लोक मे आज भी हैं।

(च) विवाह विरह आदि के रीति सकेतों मे उसी तरह सामाजिक और पारिवारिक जीवन की तत्कालीन लोक रीतियो के छिटपुट सकेत भी मीरा के पदो मे मिल जाते हैं। मीरा को 'अपने मनमोहन का 'बाका' रूप भाता है—33(7) जो बताता है कि बाके राजपूत' समाज म आकर्षण के केंद्र रहते होंगे। 'टेढी पाग लर लटके' म किसी बाक राजपूत नवयुवक को देखा जा सकता है।

सामाजिक रीति रही होगी कि राजपूत किशोरी इधर-उधर नजर न डाले, घर परिवार म पर्दानशीन रहे वरना लोग और कुटुम्बी सब टीका टिप्पणी करेंगे। राजघराने म तो वह मर्यादा और भी कठोर होती थी—तभी मीरा के मुक्त व्यवहार पर—'लोक कुटुम्बी गरजि बरजहिं, बतियां कहत बनाई' 33(10)। ससुराल मे तो वह मर्यादा रीति और भी अधिक कठोर होती थी, फिर चित्तौड जस राजघराने मे तो राजरानी को तो लाज रखनी ही थी। परतु मीरा तो—'जेठ बहू की कान न मानू घघट पड गई पटकी' (24) एसे म ही तो मीरा को कहा जाता था— बड घर म जनम लियो है, नाचो दै दै तारी।'

बर पायो हिंदवाणै सूरज, थे काइ मनधारी। 33(30)

यानी रीति थी कि 'बडे घर की बहू' असूर्यम्पश्या घर की बहू तो कुल की मर्यादा रहती है। उसकी कुल मर्यादा की रीति थी कि 'सब अभिन आभूषण' पहिरो और आपार भोगा का भोग करो। (वही) [illegible] बाँधे कठी माला' यानी 'साधु सगति' वहाँ प्रतिबाधित [illegible]। वहाँ तो 'साधु मात पिता कुल मेरे, सजन मनेही ग्योनी' थे (वही) [illegible] विवाह म रीति अलग थी—कि साधु सता का साथ करने से—

'लाजै पीहर सासरो' यदि 'मात [illegible] की बार,
'सबही लाजै भेडनिया जों', धोबू [illegible]। वही (29)

एक तरफ तो ऐसी रीति थी और दूसरी तरफ 'होरी' मे मदन-कदेव के समय मगन होकर नाचन और घूघरी [illegible] की छि को वही (34)

तथा छाछ का भोजन करना' 9(205-13) ऐसा दंड मीरा के लिए था, सिर्फ इसलिए कि मीरा को राजरीतियों की कठोर मर्यादा स्वीकार नहीं थी और वह साधु-संतों से ज्ञान और भक्ति की अपनी लगन छोड़ना नहीं चाहती थी।

राजपूत घरानों में पति सदा युद्धरत रहता था और पत्नी उसके लिए शुभ कामना करते हुए प्रतीक्षारत रहती थी। 'ऊँचे भवन चढि चढि' पति का 'पथ देखना' और 'आने की भनक' मिलने पर 'मोतियन चौक पूरना', 'आरती सजाना' 'नवछावरि' 33(148) करना, 'मंगल गाना' 33(54) ऐसी—रीति थी। और पत्नी का यही कुल धर्म था, यही उसका शील था और यही मर्यादा थी।

दुहाग की स्थिति में या पति द्वारा उपेक्षित होने पर पत्नी को 'अनसिंगारे रहने', 'भूमिशयन करने' और 'परासचित' करने की रीति थी।

"फाड़ूँगी चीर, करू गल कथा रहूँगी बैरागण होइ री।
चुरियाँ फोरूँ, माँग बखेरूँ, कजरा मैं डालू धोइ री।'
33(48) या कि

'बास्या कस्या टूकडा ये भाभी और मिलेगी खाटी छाय।
रो रो भूखाँ मरो ये भाभी, नहीं मिलेगो हरि आय।'
9(205 13)

वैसे ही विरह की स्थिति में दीपक न जोने', 'सिर के केस खुले रखने', सिंगार पटार न करने' और 'रूखा सूखा खान' की रीति थी। वह आज भी मारवाडी गाँवों में मिल जाती है—

सीप मर्‌यो पाणी पिय, टाक मरयो अन खाय।

और घर में होते हुए भी पति 'पट न खोले' और 'मुख न खोले' 33((68) तो पत्नी के लिए मरणयोग ही बनता था कि वैसी स्थिति में—'लइ कटारी कंठ सरूँ, मरूँगी विष खाइ' (वही) ऐसी रीति भी रही होगी। पति कामना के लिए गणगोर, करवा चौथ जैसे व्रत उपवास तो सार्वजनिक थे और आज भी हैं मगर अन्तर्कामना की पूर्ति के लिए कन्याएं 'छाने लंघन' 33(74) भी करती थीं।

आमतौर पर परदेस गए प्रीतम के सदेस आने जाने वाले पथिकों से मिलते रहते थे, भेजे भी जाते थे, जिनके हवाले पुराने लोक गीतों में मिलते हैं—'बाट, बटाउडा म्हारा मायेला, ऐके सनेसो जइ केजा रे।' किंतु मीरा के पदों में 'पतिया भेजने' 33(77) की रीति का हवाला भी है—

"पतिया मैं कैसे लिखू लिखि ही न जाय।
कलम घटत मेरो कर कपत, हिरदो रह्यो घराइ।'
33(77), 9(123)

'सूरज का तप करना' भी 'पति मगल और मिलनेच्छा' के लिए एक रीति थी। 33(120)—

इण सखरिया री पाल, मीरा बाई सापडे।
सांपड किया असनाना, सूरज सामी जप करे।

और अन्तत विवाह सम्बन्धी रीति का भी एक प्रसग मिलता है जिसमे प्रासगिक रूप से 'कन्या को हल्दी चढाने', 'छापन कोटि जान' आन 'तारण बाँधन' 33(27) की रीतियो के सकेत भी हैं।

(छ) जन्मांतर से मुक्ति चाहने की धारणा मे लोक मे जीवात्मा को कर्म बधन में बँधा हुआ और भव सागर म आवागमन के चक्र म फँसा हुआ माना जाता है। यह बार बार का जन्म और मरण जीव का कष्ट है। उससे मुक्ति की धारणा दशनो से होकर लोक मानस मे गहराई तक धँसी हुई है। हर भक्ति और साधना का मन्तव्य इसी मुक्ति की चाहना मे होता है। इसीलिए मीरा ने भी अपने परमात्मा को 'अगम तारण तरण' 33(1), 'सतन सुखदायी' (2), 'भगत वछल' (2), कहकर याद किया और 'पिव के पलगा जा पौढूगी' (14), तारो अब मोही' (15), 'चरणा लिपट रहूँ री' (18), 'धणीमिल्या छै हुजूर' (21), 'बडेघर ताली लागी रे' (वही) 'जनम जनम का साया मनवा सतगुर सवद सुण जागा' (26), 'जनम मरण सू छुटको' (24), 'गिया अचल सुहाग' (27), अपनी कर लीजै' (28), 'गिरधर जी भरतार' (30), भव सागर तट जास्यां' (38), 'मीरा को प्रभु राख लइ छै'(41), 'जात मे जोत मिला जा'(50), 'लीज्यो कठ लगाई'(73), 'अग से अग लागवो हो (104) 'मीरा प्रभु गिरधर मिल, ज्यू पाणी मिल गयो रग' (105), कब हरि राखै पासडियाँ' (108), 'जोत मे जोत रली' (119) 'जम का फदा निवार'(132), 'आवागमन निवार'(133) 'भव सागर तटि आयो' (157), जीव परम पद पावै' (160) 'जुगन जुगन स बिछडी मीरा घर मे लीन्ही लाय' (193), 'काटा जम की फासी'(194), 'भज उतरै भवपार' (196), 'साहब पाया आदि अनादि, ना तर भव मे जाती' (197), सुरत चली जहँ मैं चली री' (201)—इस तरह की अभिव्यक्तियो से जन्मातर से मुक्ति की चाहना व्यक्त की है।—ये सभी अभिव्यक्ति रीतियाँ लोक मे बहुप्रचलित हैं, चाहे कुछ मीरा की अपनी उपज हो सकती हैं—जैसे—'घर मे लीन्ही लाय', सुरत चली री जह मैं चली', मीरा को प्रभु रख लई छै'।

(ज) ससारी कार्य व्यापार आदि के सकेतों मे भी मीरा की सामाजिक चेतना के कुछ हवाले उजागर हो गए हैं, जैसे कि मोल तोल के व्यापार-व्यवहार की बात— मैं तो लियो छै गोविंदा मोल' के प्रसग मे 'लियो छै तोल', 'लियो छै आखिन खोल' 33(19)। उसी तरह 'कब की ऊभी अरज करत हूँ, अरज करत

भयो भोर', वही (5) मे सामती युग की लोकचर्या और सामतो भूमिधरों की उदासीन वत्ति स प्रेरित व्यवहार का हवाला मिलता है। ग्वालो की वत्ति, व्यवहार, नटखटपन आदि के हवाले भी समवत मीरा के अनुभव क्षेत्र से परे के नही थे, मगर उनमे सहजता और प्रत्यक्ष अनुभूति का अभाव जरूर है—'कालिदी के तीर हो काहां गइवां चराय' (6) कहकर इति श्री कर दी गई है, मगर बांके रजपूती के बाने' मे अनुभूति तीव्रतर है—33(7) न 'टेढीपाग लर लटके' के साथ हर बात मे 'बाकपना' है। लोक चेतना की सजगता यहां मुखर जान पडती है।

ऐसी बात भी हम नही कह सकते कि मीरा 'पत्नी धम या स्त्री धम' के लोक व्यवहार से शून्य थी। यदि वैसा होता तो प्रेम भक्ति की उसकी अनुभूतियो मे एकातनिष्ठा, समपण और अकुलता के तत्व प्रभावकारी नही बनत। कुछ एक पदो में अभिधात्मक रूप से भी स्त्री-व्यवहार के हवाले मिलते —हैं

'जिहि जिहि विधि रीझे हरि, सोई विधि कीजे हो।' (13)

'जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे साई खाऊँ।
जहां बिठावै तित ही बैठू, बेचे तो बिक जाऊँ।' (17)

किन्तु जब वह कहती है कि 'लोक लाज कुल की मरजादा यामे एक न राखू-गी' (14) तो इससे यह भी ध्वनित होता है कि वह नितान्त व्यवहार शून्य नहीं थी।

नृत्य वाद्य आदि के व्यवहारो का हवाला भी मिलता है और भजन कीतन मे चुटकी देकर मगन होने के लोक-व्यवहार का भी—'नाच्या दे दे तारी' हाली मवाली, कामदार, सरदार, वैभव, वैभवहीनता राजकाज सम्बन्धी और वित्त व्यवहार सम्बन्धी लोक व्यवहार के हवाले भी मिल जाते हैं—

"हाल्यां मोल्या सू काम नही रे, सीर नहिं सिरदार।
कामदारां सू काम नही रे, मैं तो जाय करूँ दरबार।
काच कथीर सू काम नही रे, म्हारे लोह चढे सिर भार।
सोना रूपा सू काम नही रे म्हारे हीरां रो बौपार।" 33(21)

ससुराल मे सास-बहूकी कान, घूघट, मरदाजा के व्यवहारो का भी हवाला मिलता है—'सास-बहू की काण न मानूं घूघट पड गई पटकी।' (24) लोक व्यव हार की नीति 'आप काज महावाज' के हवाले भी मिलते हैं—

"लूण अलूणो ही भलो है अपणे पिया को साग।" और
'बालर अपणो ही भलो ह, जाने निपजे चीज।" तथा
वर हीणो अपणो भलो है कोढ़ी कुष्टी काय।

'चौमास्ये की बावडी और बहत निर्झर का पानी' (28) इनमे शुद्धता स्वास्थ्य और निश्छलता के लोक व्यवहार का हवाला भी है और लोक प्रतिष्ठित

सदाचार के हवाले भी हैं—

' चोरी करां न मारगी, नहिं मैं करूं अकाज।
पुन्न के मारग चालतां जी, झक मारो ससार। (29)

मारवाडी लोक मे 'राजा-ठाकर के अत्याचार होते तो किसान महाजन आदि राज त्याग कर चल जाते थे।' यह लोक व्यवहार मेडता की स्थापना के समय भी चरितार्थ हुआ था कि जालोर, सिवाना, नागोर, अजमेर पटटे के लोग वहाँ आ आकर बसे थे। 'राजा रूठे नगरी राखै' वाला लोक व्यवहार मीरा के पदो मे भी आया है—

राणो जा रूठ्या, वारो देस रखासी।
हरि रूठ्यां कत जास्यां हो माई। (38)

तीर-तरकस, कटार जैसे अस्त्र शस्त्रो के व्यवहार के हवाले भी मीरा के पदो म हैं। वे सहज अनुभव आधारित ही हैं। 'अपणे घर का परदा कर ले' (41), मे 'परदे के व्यवहार' की अतिरजना है और छोडीली बहुओ के प्रति 'पहरा, चौकी' के लोक व्यवहार का हवाला भी है—

"पहरा भी राख्या चौकी बिठादयो ताला दियो जडाई।" (46)

आवागमन के साधनो मे—सांडिया भेजना, ऊंटो पर भार कसना, रोया (नागौरी) बैलो के रथ जुतवाने का हवाला भी है (47) और 'पतिया भेजने' के दूत का भी। घर आए प्रीतम पाहुने के आदर सत्कार का लोक व्यवहार भी है— 'मोती चौक पूराऊं वाल्हा, तन मन तो पर वारी' (54) और रुग्णता आदि के समय 'वैद गिरी' का भी हवाला है—'बाबल वैद बुलाइया रे, पकड दिखाई म्हारी बाँह' (74)। पिय के परदेस' रहने पर 'दीप न जलाने' का मारवाडी लोक व्यवहार तो है ही' (79), 'देस-परदेस मे सदसा पहुँचने का अदेसा' भी व्यक्त हुआ है। (78), 'आने वाले के स्वागत मे डगर बुहारने' का व्यवहार भी है (102), और नगर मे घोषणा ढिढोरे या ढोल की चोट पर होती थी (वही) इसका सकेत भी है। हाथी और अकुश (106) पाराधि और मृग (105) ऋतुओ के अनुसार पव, उत्सवो के व्यवहार (116), लिख लिख पतियाँ सदेसा भेजना (123), चाकरी म खाली दरसन और सुमिरन पाना यानी बेगार (154), के सकेत भी यत्र-तत्र हैं। तुलसी और हरिदास की तरह मीरा ने भी अनुभव किया था कि—'लोकडिया राम नाम लत लाज मरै छै (161), गाँव मे लोग इधर उधर डोलते फिरते हैं मगर हरि-मदिर जाते उनके पैर दुखते हैं, घर का काम धाम छोडकर वे झगडे फसादा का नाटक देखने जरूर दौड जाते हैं। भाँड नट, भावी, गाणिकाओं के नृत्य मे रात रात भर बैठे रहते हैं मगर भक्ति भाव म उनका मन नही लगता। (वही) तथापि

सभवत गावो मे प्रात कालीन लोक व्यवहार जल्दी उठकर दूध दुहने, दही बिलोने और छाछ की मटकियाँ भर कर मालिको के यहाँ पहुँचाने का चलन काफी आम था (168)।

इस तरह से चतुर्दिक ससारी व्यवहारो के सकेत मीरा के पदो मे आए हैं जो उस समय के लोक जीवन के कुछ चित्र प्रस्तुत करते हैं। और इन चित्रो की प्रस्तुति मे तथा अपनी अनुभूतियो मे लोकतात्त्विक प्रभाव लाने के लिए मीरा ने कुछ ऐसी रूढोक्तियो का प्रयोग भी किया है जो भाव विशेष या स्थिति विशेष के लिए लोक शैली मे परम्परा से रूढ हो चुकी मालूम होती हैं।

(viii) रूढोक्तियों के प्रयोग मे समाज सावजनिक अनुभवो अनुभूतियों, लोक व्यवहारो, कामनाओ आदि की अभिव्यक्ति के लिए कुछ भाविक प्रयोगो को रूढ बना लेता है। ऐसी रूढोक्तियाँ हमे लाक-काव्यो मे, लोकगाथाओ मे मिलती हैं। वे अपना विशिष्ट प्रभाव रखती हैं—यथा—

जिणि देसे सज्जण वसइ, तिणि दिसे बज्जउ बाउ।
उआ लगे मो लागसी, ऊ ही लाख पमाउ। (ढोला मारू)

चिता अइण ज्यां नरां, त्यां द्रिढ अग न थाइ। (वही)
पति लुप्पै लुप्पै जनम, पति बचै बँचाइ। (पृथ्वीराज रासो)
पिय भागै तिस अद्दरै सोये सकल सरीर।
वह रजपुतनि कुक्करी, सुमतन कही जहीइ। (परमार रासो)
अहो आदि मातपिता भूल जान, पछै तीरथ आठ सटठ प्रमान।
(पृथ्वी रासो)

मातु हेत पितु तजिय, पिता के हेत सहाहर। (रतन बावनी)
गानिका गनिक काव्य की ठग विद्या परवीन। (पृथ्वी रासो)
मरदा खेती खग मदन अतिथ समापन हत्थ। (पृथ्वी रासो)
सती सूरमा पुरुष को मरतहि मगल होय। (हम्मीर रासो)
तीन सहस रजपूत खाइ अमल घूमे खडे।
खडे कृपाण को सूत, राम नाम मुखते रटें। (गोरा बादल की कथा)
बारह भूसन सजे सुहागन, औ कहिके सोलहसिगार। (अल्हा खड)
करि दतौन असनान, ध्यान गोरख को धायौ। (रासो)
भूम सेज सुख सयन गग मडल वर धारय। (पृथ्वी रासो)
हियडउ रतन तलाव ज्यूँ फुटी दइ रिस जति (ढोला मारू)
काढि कलेजउ आपणउ भोजन दिउली तुज्झ (वही)
यह तन जारौ मसि करूँ, धूआ जाहि सरग।
मुझ प्रिय बदल होइ करि बरस बुझाइ अगो। (वही)

सज्जण गुणे समुद्द तूं, तर तर थक्की तेण ।
अवगुण एक न समरइ, रहूँ बिलबी जेण । (वही)
ऊँची चढ़ि चातुगि जिउ, मागि निहालइ मुध्ध । (वही)
सुसनेही समदा परइ, बसत हिया मझारी (वही)
बावहिया निलपखिया, बाढत दइ दइ लूण । (वही)
प्रिउ मेरा मई प्रिउ की, तू प्रिउ कहइ सकूण ।
पथी हाथ सदेसउइ, धण विकलती देइ । (वही)
जोवण हस्ती मद चढयउ, अकुस लइ धरि आइ । (वही)
दादुर मोर टबक्क घण, बीजडली तलवारि ।
सूती सेजइ एकली, हइ हइ दखू म मारि । (वही)
हइ रे जीव निलज्ज तू, निक्स्यू जात त तोहि ।
प्रिय बिछुडत निक्स्यउ नहि, रह्यउ लजावण मोहि । (वही)
विरह महाविस तन बसइ, ओखद दियइ न जाइ । (वही)
आजे रली बधामणा आजे नवला नेह ।
सखी अम्ही णी गोठ मइ, दूधे बूठा मेह । (वही)
वाही थी गुण वेलडी, वाही थी रसवेलि । (वही)
ओछइ पाँणी मच्छ ज्यू, वेलत थयउ विहाण । (वही)
विरह बाघ वनि तनि वसइ, सेहर गाजइ आह (वही)
दीह गणता णह घस्यां । (वीसल दे रासो)

—इस तरह की रूढोक्तियाँ अनुभूतियो के साधारणीकरण मे सहायक होती हैं और लोक मे गहराई के साथ असर करती हैं ।

मीरा के पदों मे भी ऐसी रूढोक्तियो का प्रयोग मिलता है । उन्हे हम कुछ शीर्षको मे रखकर देख सकते हैं—

(अ) दार्शनिक और धार्मिक पक्ष मे,

(ब) सामाजिक और नतिक पक्ष मे,

(स) वियोग और शृगार पक्ष मे,

(अ) दार्शनिक और धार्मिक पक्ष मे इस पक्ष मे जीवात्मा या भक्त के लिए 'दास' और परमात्म के लिए 'प्रभु क प्रयोग की रूढि प्राचीन है । मीरा के पदो मे छाप है— दासी मीरा लाल गिरधर', 33(1) मीरा के प्रभु गिरधर नागर', 33(12) मीरा कहे मैं दास रावरी' 33(4) । जहाँ प्रेम भक्ति मे विरह और आकुलता व्यक्त होती है वहाँ जीवात्मा को 'जोगन', बैरागन' कहने की रूढोक्ति प्रेम काव्यो मे भी मिल जाती है—'बालजी, मैं बैरागन हूँगी हो' और 'फारूँगी चीर करूँ गलकथा, रहूँगी बैरागन होइ री', 33(48) वैसे ही सत पथ मे

परमात्म के साथ सुरति-निरति का खेल करना, सुन्न महल मे पिया के साथ एकाकार होना सहज सुमिरन करना—ये सब रूढोक्तियाँ मीरा के पदों मे मिल जाती है—

"तेरो ही उमरण तेरो ही सुमरण, तेरी ही ध्यान धरूँ री।"
वही (18)

"सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की करलें बाती।
प्रेम हरी के तेल मगा ले, जगे रह्या दिन राती।" (20)

ससार की असारता सम्बन्धी रूढोक्तिया भी—

चदा जायेगा, सूरज जायेगा, जायेगी धरणि अकासी।
पवन पाणी दानू ही जायेगा, अटल रहे अविनासी। (वही)

और

'ना घर तेरा ना घर मेरा, गावै मीरा दासी।" (वही

तो सूफी काव्यो से लेकर लौकिक कहावतो तक मे देशव्यापी रूढोक्ति है।

भक्ति मे मीरा ने दरबारी रूढोक्ति भी डाली है—'कामदारां सू काम नहीं रे, मैं तो जाय करू दरबार' (21)। यह वैसी ही रूढोक्ति है जैसे—

"गग जमुन सो काम नही मेरे भयो समद सू सीर।' (वही)

भक्ति की सापेक्षता मे जगत को 'चौमास्यां की बावडी' (28) कहना, 'छोलरिया' और 'डाबरियाँ' (21) 'बाड को काँटो (34) कहना भी प्रसिद्ध रूढोक्तियाँ हैं। उसी तरह 'अमृत प्याला छोडिकै कुणपीवै कडुवो नीर (20) भी रूढोक्ति है। सांसारिक सुख सुविधाओ को नकारने के लिए उनकी तुच्छता को व्यक्त करने के लिए उन्हें 'काँच कथीर', मोती माणक' पट पाटम्बर' (25) कहकर व्यक्त करना भी रूढोक्ति है। सांसारिक सम्बन्धो के परिहार को टूट गया ज्यू तागा' (26) कहने की रीति है तो 'शील, सदाचार' को चूनड' (30) कहा गया है। साँकडी गली मे प्रभु का मिलना या सतगुरु का मिलना (36) ताकि वापस न लौटा जा सके, भी रूढोक्ति है जिसके अन्य रूपो म 'भरो सराय रहीम लाखे' वाली अभिव्यक्ति भी है।

भक्ति मे परीक्षा और परीक्षा में खरा उतरने की अभिव्यक्ति के लिए 'कचन दहत अगनि मे निकसतोंवारवाणी' (41) वाली रूढोक्ति है तो भक्ति की मग्नता के लिए 'अमल' की— यो तो अमल म्हारो कबहू न उतरे' (44)।

धार्मिक पक्ष में मीरा ने 'जोगी प्रकरण में' प्रिय से एकमेक होने को व्यजना के लिए प्रेम काव्यो की इस रूढोक्ति का उपयोग किया है—

अगर चंदण की चिता बनाऊँ, अपने हाथ जला जा।
जल जल कोई अगम की डेरी अपणे अंग लगा जा। (50)

भक्ति मार्ग की कठिनाई के लिए, 'पथ दुहेलो, आडा औघट घाट', (49) 'दूनी ऊपर सेज' (72) जैसी रूढ़ोक्तियों का उपयोग है तो उस मार्ग में बाधा बनने वाले 'दिच्छन ने करें', (37) 'सूल' (45) कहे गए हैं। जैसे प्रेम काव्यों में नायिका 'चातक' और 'पपीहे' की तरह कुरलाती है, वैसे ही मीरा की भक्ति में भी—

ज्यूँ चातक घन को रटै मछी जिमि पाणी हो' (87) की रूढ़ोक्ति आई है।

परम तत्व के दर्शन बिना दरद दिवाणी होना' 'तलफ तलफ जिय जाना तो बहु प्रचलित रूढ़ोक्ति है मगर मीरा ने 'से कटारी कंठ सरना' और विष खाकर मरने' (68) का भी रूढ़ोक्तिवत प्रयोग किया है।

जीवात्मा के लिए परमात्मा तो एक ही है, 'जीवात्मा' लाखों हैं। इस दार्शनिक अर्थ के लिए रूढ़ोक्ति है—'तुमसे हमकूँ एक हो हमसी लाख करोरि'। इसी उक्ति का अन्य रूप है—'म्हें तो बुरी छाँ, थाँके भलो छै घणेरी, तुम हो एक रसराज' (109)।

—दर्शन और धर्म के पक्ष की ऐसी रूढ़ोक्तियाँ पुराने समय से चली आती हैं और मीरा के बाद के भक्तों में भी उनका चलन मिलता है।

(ब) सामाजिक और नैतिक पक्ष में उसी तरह सामाजिक और नैतिक जीवन में भी रीति-रिवाज, व्यवहार नीति से सम्बन्धित रूढ़ोक्तियों का चलन है। जिस समाज में राजा शाही और सामंतवादी परम्परा रही हो, वहाँ हर छोटे की उपेक्षा बड़ों द्वारा होती है। पत्नी से पति बड़ा है और भक्त से भगवान। इसके लिए अन्तर्निहित वेदना व्यक्त करने की रूढ़ोक्ति है—

"हम चितवत तुम चितवत नाहीं," और "तुमसे हमकूँ कबरे मिलोगे, हमसी लाख करोरि।" (5) रैदास में भी यही रूढ़ोक्ति है। इसी का एक सरल लोक-काव्यों में मिलता है—'सज्जन, गुणे समुद्द सू, सरतर थनको तेण, (छोटा गाऊ) इसलिए बड़े के हुजूर में खड़े होकर अर्ज की जाती है। यह सामाजिक रीति मीरा में भी है—"ऊभी ठाढ़ी अरज करत हूँ," (वही) और "अरज करते भोर हो जाती थी" तब भी 'सुनवाई' नहीं होती थी। सामंतवादी समाज में यह 'हुजूर' "बड़भागण रीझता था।"(13)

भक्ति या प्रेम के मार्ग में सामाजिक मर्यादा, कुल गौरव आदि बाधक होते ही आए हैं। ऐसे प्रसंगों में लोकव्यवहार के प्रति रूढ़ोक्तियों का चलन भी हुआ ही है। लोक कुटुम्बी गरजि बरजहि, बंतियाँ करते बनाई। (10) कहकर मीरा ने उसका हवाला दिया है। जब तक बाधाएँ नहीं होती, परीक्षा नहीं होती, तब तक प्रेम या लगन की तीव्रता भी नहीं उभरती। इसलिए—"कुल कुटुम्बी लाज

बैठे, मानहुं मधुमाखी" (22) वाली रूढोक्ति है। इसीलिए प्रेम काव्यो मे "प्रेमी के प्रति रसबेल बड़ी कठिनाइयो से बोई जाती है और उसे आसुओं से सींचा जाता है। प्रेम काव्यो मे—

"बाही थी गुणवेलडी, बाही थी रसवेलि" और मीरा के प्रयोगो मे—"असुवन जल सींचि सींचे प्रेम वेलि बाई।" लोक मर्यादा मे पति के प्रति एकांगी निष्ठा बड़ी महत्वपूर्ण मानी जाती है—"वर होणो अपणो भला कोढी कुष्टी कोय।" और "ताके मग सिधारता हे भला कहे सब लोय।"(25)—ऐसी रूढोक्ति का प्रयोग है। और प्रेम के पथ पर घर-बार, जात रिश्ते तो टूटते ही हैं। उसके लिए रूढोक्ति है—"मातपिता सुत कुटुम कबीला टूटि गया ज्यू तागा।"(26)

'सत्यमेव जयते' वाली बात जैसे सामाजिक जीवन मे है वैसे ही प्रेमियो के प्रेम मार्ग मे भी है। 'सत्' पर अडिग रहने वाली मीरा इसीलिए प्रयोग करती है —चोरी करा न मारगी जी, नहिं मैं करूं अकाज।

पुन के मारग चालता जी, झक मारो ससारा (29) ऐसी नैतिकता कभी हार नही मानती जिसमे—

'भाव भगत भूखण सजे सील सतोक सिंगार।"(30)

—और ऐसा आत्मबल होता है तब चाहे प्रेमिका हो, चाहे भक्त हो, चाहे साधक हो वह 'टेक' पकड लेता है और उस टेक के लिए वह चाहे 'नाम बिकाने' चाहे प्रेम बिकाने,' चाहे 'गिरधर हाथ बिकानी', चाहे 'सता हाथ बिकानी'(30) की रूढोक्ति काम मे लेता है क्योकि जब 'बिक ही गया' तो उस पर 'घर धणी' का या अमानतदार' का क्या जोर चलेगा ! ऐसी बेबाक अवस्था मे ही 'पर्दा चाहने वाले के लिए' रूढ़ोक्ति होती है—' छोड दई कुल की कानि, कहा करि है कोई, या कि 'अपणे घर का पर्दा कर ले।'(41)

'छीजन' का आशय व्यक्त करने के लिए रूढोक्ति है—

मीप भर्‌यो पाणी पिवे रे, टाक भर्‌यो अन खाय।(47) यह विरह मे 'भोजन न भावे' की रूढोक्ति की पोषक उचित है। समाज मे निबल धणी के मुकाबले 'सबल धणी'(47) का साथ निर्भीकता प्रदान करता है, उसी तरह 'राखण हारो (47) कोई और हो तो रूढोक्ति बनती है—'थारी मारी ना मरों (47) क्योकि सामाजिक मान्यता है कि मरना जीना तो परमात्मा के हाथ है।

सामाजिक और नैतिक मान्यताओ के वशीभूत किशोरियो का इधर उधर भटकने से सावचेत किया जाता है—"चढती बैस, नैण अणियाले तू घरि घरि मत डोल।' (62)

कष्ट पर कष्ट पडे तो 'दाझ्या ऊपर लूण लगायो'(83) का प्रयोग है यह लोक मे मुहावरे की तरह भी प्रचलित है। और 'मदमाता हाथी अंकुश से ही वश मे आता है' इस नैतिक सत्य को रूढोक्ति का रूप दिया है—

"यो मन मेरो बडो हरामी, ज्यूं मदमाता हाथी।
सतगुरु दस्त धरयो सिर ऊपर अंकुस दे समझाती ।(106) यही उक्ति प्रेम गाथाओ मे है—

"जोबण हस्ती मद चढयड, अकुस लइ घरि आइ।" (ढोला-मारू) हाथी हो तो अकुश से वश मे करे, घोडा हो तो पागडा डाल दे, मगर 'प्रीतम चचल' हो तो रूढोक्ति है—जो तुम जाओ मेरी बाखरियां, जरि राखू किवारिया।"(165)

इस तरह प्रचलित सामाजिक नैतिक मान्यताओ के लिए कुछ प्रसिद्ध और कुछ मौलिक रूढोक्तियो के प्रयोग मीरा के पदो मे मिलते हैं।

(स) वियोग और सिगार के पक्ष मे प्रेम काव्यो म शृगार और वियोग के पक्ष ही प्रबल होते हैं। मीरा का शृगार और वियोग अव्यक्त सत्ता के प्रति है जिसमे भक्त की मर्यादा सीमा रेखा बनाती है। इन पक्षो मे कुछ ऐसी रूढोक्तियां हैं जिनका प्रयोग मीरा ने भी किया है—ऐसे प्रयोग के अवसर वियोग वेदना के तीखेपन मे, उपालभ मे, व्याकुलता म, प्रतीक्षा मे, मिलने की आकांक्षा में आए हैं—

पिया के बिना 'सब जग खारो लागत'(16)'भोजानिया नहिं भावै', 'नीदलडी नहिं आवै" तो बहुत अभिधामूलक हैं और ज्यादातर इन्ही रूढोक्तियो का प्रयोग मीरा के पदो मे हुआ है, किन्तु इनके साथ जहा 'अब काहे की लाज सजनी'(22) 'छाँडि दई कुलकी कानि' जैसी रूढोक्तियां सम्पुष्ट देती हैं वहाँ अनुभूतियां तीव्रतर हो जाती हैं । 'राज किये ज्यांना करणै दीजै,' 'महल अटारयाँ हम सब त्यागा' जैसी उक्तियों से भी अनुभूति सघन हो जाती है। भक्ति की टेक को प्रखर बनाने म 'मल मेरा सीस लहो'(31) 'सबका मैं बोल सहू (वही), 'कोई निन्दो कोई बिन्दो'(35)—जैसी रूढोक्तियां भी आशय को सबल बनाती हैं क्योकि वे लोक-धरातल और भाषा के प्रयोजन मूलक रूप मे से उभरी हुई हैं। 'काजल टीकी त्यागने' और भगवां चादर पहनने'(37) मे विरोध वक्रता आशय को कई गुना बढ़ा देती है। 'विष को प्याल्लो' और नाग गले मे पहिरिया'(42) वाली रूढोक्ति तो इतनी प्रखर हो गई है कि लोग उसका इतिवृत्त तक खोजते रहे हैं जबकि 'वियोग' क प्रलाप मे ऐसी इच्छा प्रेम काव्यो मे आम बात है। अतर इतना ही है कि वहाँ ऐसा काम खुद वियोगी करता है और मीरा के पदो मे वह काम 'राणा' कर रहा है। 'विरह महाविस तन बसइ'—की रूढोक्ति तो ढाला मारू मे कई बार आई हो इसी तरह से 'मरूगी कटारी मार,' "जोगण होय सरू चहुँ ओर,' 'तेरे कारण जोगण हूँगी' 'रहूँगी बैरागण होइ री'—ऐसी रूढोक्तियां जैसे प्रेम कथाओ में आती हैं, वसे ही मीरा के पदो मे भी हैं। बल्कि उनसे भी आगे—

अगर चदण की चिता वणाऊँ, अपणे हाथ जला जा।
जल बल भई भसम की ढेरी, अपणे अग लगा जा।(50)

जैसी रूढोक्ति मे एक नवीनता भी है जो प्रेम गाथाओ की रूढोक्ति से काफी भिन्न है—

यहु तन जारौ मसि करूँ, धुआ जाहि सरग्ग।
मुझ प्रिय बददल होइ करि, बरसि बुझावइ आगी। (ढोला मारू)

"ऊँचे चढकर प्रिय की प्रतीक्षा करना" जैसी प्रेमगाथाओ मे हैं वैसी ही रूढोक्तियाँ मीरा के पदो मे हैं—'ऊँचे चढि चालगज्यू मागि निहालइ मुध्ध" जैसे ढोला मारू मे है, मीरा मे उसकी छाप है—'निस दिन जोऊँ बाट पिया की' (73) 'कबकी ठाढी मैं मग जोऊ' (79), 'निस दिन पिव को पथ निहारूँ,(91)' 'म्हैल चढै चढि जोऊँ म्हारी सजनी' (141) 'ऊँची चढ चढ पथ निहारूँ।'(106)

विरह म 'प्राण न छूटने का खेद भी प्रेम गाथाओ की तरह मीरा के पदा मे रूढोक्ति बद्ध होकर आया है। मीरा के प्रयोगो मे—"पिंड मा सू प्राण पति निकासि क्यू नहिं जान' (68) ता प्रेम काव्यो मे है—'हह रे जीव निलज्ज नूँ निकस्यू जात त तोहि (ढोला मारू)।

सावण, पपीहा मोर प्रेम गाथाओ मे और मीरा के यहा भी विरह निवेदन की समान रूढोक्तियो वाले बन कर आए हैं।—

दादुर मोर टवक्क घण, वीजउली तरवारि।
सूती सेजइँ हेकली, हइ हइ दइव न मारि।—प्रेम काव्यो मे है तो मीरा के यहाँ भी—'सावण कह गए अजहूँ न आये।'(69) 'दादुर मोर पपीहा बोले दामिन दरक डरावै'(76)—जैसी रूढोक्तियाँ हैं।

उधर 'पथी हाथ सदेसडो' मारू भेजती है तो मीरा भी वैसी ही रूढोक्ति से 'पतिया मैं कैसे लिखू बनाय'(77) अपनी अनुभूति प्रकाशित करती है। उधर विरह वेदना की असह्यता मे मारू—

'काढि कलेजउ आपणउ भोजन दिउली लुज्य कहती है और 'कागा सब तन खाइयो चुन चुन खइहो मांस। दो नैना मत खाइया, पिया मिलन की आस। —वाली नायिका भी प्रेम-गायाओ महै तो मीरा के पदों मे भी वैसी ही रूढोक्तियाँ हैं—

'काढि कलेजो मैं धरूँ रे कोवा तू ले जाइ।
ज्यां देसां म्हारे पिव बसै व देखै तू खाइ।' (74)

और

'लेइ कटारि कठ सरइ, मरूंगी विष खाइ। (68)

पपीहे की चोंच काटना' को रूढोक्ति भी मीरा के पदो म लोक मानस का बिम्ब बन कर आई है—

"बाबहिया निल पखिया, बाढत दइ दइ लूण ।
प्रिउ मेरा मैं प्रिउ की, तू प्रिउ कहइ स कूण ।" (ढोला मारू)—

वैसे ही मीरा के यहाँ—

पपइया रे पिव की वाणि न बोल ।
सुणि पावैली विरहणी रे, थाँरी राखली पख मरोड ।
चाच कटाऊँ पपइया रे ऊपरि कालर लूण ।
पिव मेरा मैं पिव की रे तू पिव कहै स कूण ।(84)

उधर बीसल दे रासो मे विरहणी के नख दिन गिनते गिनते घिस जाते हैं तो मीरा के यहाँ भी—

गिणता गिणता घस गई रेखा, आंगकिचा की सारी ।(78)

दोनो ही तरफ 'विरह नागण काया डसती है'(76) और 'बाघड विरह (120)' सताता है । दोनो ही तरफ 'रसबेल, मीरा के यहाँ, 'प्रेमबेलि' बोई जाती है और चातक, मीन, चकोर के प्रतीको का उपयोग रूढोक्तियो मे किया जाता है ।

इस तरह से विरह और शृगार के पक्ष मे मीरा ने लोक मे प्रचलित रूढोक्तियो का प्रयोग किया है जो उसके पदो को लोक मानस मे पैठने लायक बनाते हैं ।

3 लोक सस्कृति के तत्त्व

कवि अथवा भक्त अपने समाज और सस्कृति की उपज भी होता है और उसका वाहक भी होता है । समीक्षाकारो ने लोकसस्कृति की खोज करते समय कविता मे शकुन, धारणा, विश्वास आदि के सकेत और समावेश ढूढने के उपक्रम किए हैं । आम तौर पर इस के अन्तगत (i) शकुन, (ii) स्वप्न, (iii) सदाचार धारणा, (iv) कमवाद (v) भाग्यवाद, (vi) नेम धरम, (vii) जतर मतर टोना टोटका, (viii) ज्योतिष प्रकृति (ix) सयुक्त परिवार आदि बातें खोजी बताई जाती हैं । ये बातें पूव मध्य युगीन समाज तथा सामती लोक जीवन के सास्कृतिक तत्वो मे गिनी जाती हैं ।

मीरा के पदो मे भी इनके बिखरे बिखरे सकेत मिल जाते हैं —

(i) शकुन लोक जीवन मे शकुनो पर पूरा शास्त्र बना हुआ है । अग उपागो के फडकने धडकने से लेकर छिपकिली, चिडियाएँ, ब्राह्मण, हरिजन, महाजन, आदि, जातियो, दूध, दही आदि पदाथ और पशु, पक्षी से लेकर जीवित मृत चीजो तक को शकुन-अपशकुन से बाँधा गया है ।

मीरा की 'पदावली'(33) मे शकुन का सकेत देने वाला कोई पद नही मिलता, किंतु एकाध पद मे 'कागा को सदेश वाहक और शकुन वाचक

बनाया गया है—'काग उडावत दिन गया, बूझू पिंडत जोसी हो।'33(116)

उसी तरह 'मीरा' (9) के प्रामाणिक शीर्षक वाले पदो म भी शकुन परक सकेत नाम मात्र को और प्रच्छन्न हैं—'थारा सवद सुहावणा हे जो पिव मेल्या आज, चाच मढाऊँ थारी सोवणी रे, तू मरे सिरताज। 9(419 53) कौए को सदेश वाहक भी बनाया गया है—'प्रीतम कू पतिया लिखू, कउवा तू लै जाइ' (वही)

(ii) स्वप्न भी लोक सँस्कृति का शकुन परक एक तत्व रहा है। मीरा के पदो मे एकमात्र स्वप्न प्रसग है जो उसकी अति मानसिक अवस्था बताता है कि 'भाई म्हाँने सुपने मे परण गया जगदीस।33(105) उसके स्वप्न मे बरात भी आती है, हल्दी भी चढ़ती है, तोरण भी बधता है और मीरा उसे सच मानकर अपने सुहाग को अचल मानती है। इसके अलावा स्वप्न का कोई सकेत नही है मात्र एक पद म सपने से चौंकने की बात है— चमक उठी सपने सुध भूली।'(76)

(iii) सदाचार धारणा शील सतोष, सदाचार की धारणा लोक तत्वों का एक महत्वपूण घटक है। सामाजिक जीवन, सहयोग, परमाथ, आत्म कल्याण की आवश्यकता-वश सदाचार और शुद्ध जीवन की धारणाएँ विकसित हुई होगी।

मीरा के पदो मे इस लोकतत्व के काफी प्रयोग मिलते हैं—

"भगति देख राजी हुई जगति देख रोई।" 33(15)
"चोरी न करस्यां न जीव सतास्यां, काई करसी कोइ म्हारो।" (23)
' कालर आपणो ही भलो, जामे निपजे बीज।' (25)
"छैल विराणा लाख को हे अपणे काज न होय।" (वही)
' वर हीणो अपणो भलो ह, कोढी कुष्टी काय।" (वही)
' चोरी करा न मारगी जी नहिं मैं करूँ अकाज।"
पुन्न के मारग चालता जी झख मारो ससार।" (29)
"भाव भगत भूषण सजे सील सतोख सिंगार।' (29)
' मान अपमान दोउ धर, पटके, निकसी हूँ झाग गली।" (32)
' चढती बैस नैण अणियाले, तू घरि घरि मत डोल।' (62)
"मन कू मार सजू सतगुरू सूँ दुरमत दूर भगाऊँ। (92)
वो मन मेरो बडो हरामी ज्यू मदमातो हाथी।
सतगुरू दस्त धर्यो सिर ऊपर अकुस दे समझाती। (06)
' मात पिता तुमकू दियो, तुम ही भल जानो हो।
तुम तजि और भतार को, मन मे नहिं आनो हो। (129)

"म्हां में औगुण घणा छै हो प्रभुजी थें ही सहो त सहो। (136)
"इत उत चित्त चलै नहिं कबहू, डारी प्रेम जजीर। (155)
सब घट दीसै आतमा, सबही सो न्यारो है।
दीपक जोऊँ ज्ञान का, चढ़ू अगम अटारी हो। (158)
"आप ही आप पुजाय के रे, फूले अग न समात।
अभिमान टीला किये बहुत कहू जल कहाँ ठहरात।
जो तेरे हिय अन्तर की जानत, ता सो कपट न बने। (162)
"रीति छोड अनरीति करो ना।" (173)
"चौमास्या की बावडी ताको जल क्यू पीजै।"
"पहली ज्ञान मान नहिं की हो मैं ममता की बाधी पोट।
सुणियो मेरी बगड पडोसन, गेले चलती लागी चोट।" (1 4)
'मात पिता तो जनम दियो है, करम दियो करतार।
कइरे खाइयो, कइरे खरचियो, कइरे कियो उपकार।
दिया लिया तेरे सग चलेगा, और नहिं तेरे लार। (196)
'तज कुसग सतसग बैठ नित।" (199)
"काम क्रोध मद लोभ मोह कू, चित से बहाय दीजै। (वही)

(iv) कमवाद लोक जीवन मे कमवाद और पुनर्जन्म की धारणाए भी काफी पुरानी और व्यापक हैं। जीव के कर्मानुसार उसका भोग और अगला जन्म मानने के विश्वास के आधार पर चौरासी लाख जीव कोटियो मे जीव का भ्रमण, तदनन्तर मनुष्य योनि और वहा भी जीव साधना न करने पर पुन भवचक्र मे आवागमन—ऐसी मान्यताएँ आम लोगो मे हैं। तदनुसार मनुष्य जीवन पा कर भक्ति, सत्कर्म आदि का व्यवस्थापन किया गया है।

मीरा के पदो मे लोकतत्व के ये घटक भिन्न भिन्न प्रकार से व्यक्त हुए हैं—

'गाय गाय हरि के गुण निसदिन, काल व्याल सू बाँची" 33(16)

—बार बार जीव का जनम और मरण ही भव चक्र है। इस जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होना, परमात्मा स्वरूप हो जाना भी कमवाद की एक उपपत्ति है। 'मेरी उनकी प्रीत पुराणी' (17) मे भी आत्म परमात्म के कारण कार्य सम्बन्ध का आशय है। पूरब जनम को कौल' (19) के मूल मे पुनर्जन्म की धारणा है। 'जनम जनम का सोया मनवाँ' (26) के मूल मे भी भव चक्र का आधार है। और 'मीरा को गिरधर मिल्याजी, पूरब जनम के भाग' (27) मे भी वही बात है। भव सागर तर जास्यां (34) मे आवागमन से मुक्ति की चाहना आधार स्वरूप है। और, उसकी प्रतिपत्ति स्वरूप प्रयत्न है कि—

'यह ससार बाड का काँटा ज्यां सगत नहिं जास्या।' (34) तथा

राम नाम का झाझ चलास्या, भव सागर तर जास्या। (38) मे भी जीवन्मुक्ति की कामना है। मीरा इसीलिए अपने को 'गिरधर नागर की जनम की दासी 11(40) कहती है और चाहती है कि 'जात मे जोत मिला जा।"(50)

"भी सागर मे बही जात हूँ' (53) कहकर बारम्बार के जनम मरण का दुख व्यक्त किया गया है और 'पूरब जनम की प्रीत हमारी' (150) कहकर जीव और ब्रह्म के सनातन सम्बन्धा को कमवादी ढाँचे मे व्यक्त किया गया है। पुनजन्म के आधार पर ही आत्मा का 'जनम जनम की क्वाँरी' (78) कहा गया है।

कमवाद और पुनजन्म की धारणाओ को सायकता दन के लिए ही कई बार 'गिरधर' के लिए 'अविनासी' पद का प्रयोग हुआ है। 'मीरा दासी जनम जनम की' (101)कहकर अविनासी परमतत्व और आवागमन मे फँसे जीव का आशय उभारा गया है।

"निन्दा करसी नरक कड मांजासी' 33(23) में कर्मानुसार भोग का आशय विद्यमान है। और 'तुम प्रभु पूरन ब्रह्म हो, पूरन पद दीजे हो।' (129)मे जीवन-मुक्ति की चाहना है क्योकि यो ससार सब बह्यो जात है, लख चौरासी धार (133) इसलिए मेरा आबागमन निवार' (वही) की विनती करती है। उसका मानना है कि 'राम नाम बिन मुकति न पावै, फिर चौरासी जावै।' (160) और लोकमत हैं कि 'माता पिता तो जनम दिया है, करम दियो करतार' (196) इसलिए जैसा कम वैसा भोग। मीरा ने तो सत गुरु पाया, कम कमाए अत

साहब पाया आदि अनादी ना तर भव मे जाती। (197)

—इसके पीछे पूरा जीवन दशन है—जाता का—

बदे बदगी मत भूल।
चार दिनाँ की कर लै खूबी, ज्यू दाडिम दा फूल।
आया था ऐ लोग के कारण, भूल गमाया भूल। (198)

कमवाद म सत्कम का सार भी पदों मे आया है—

'राम नाम रस पीजै", 'तज कुसग सतसग बैठ नित।"

और "काम क्रोध मद लोग मोह कू चित से बहाय दीजै।' (199)

तब "जनम जनम क खत जु पुराने नामहिं लेत फटै रे।' (200)

(v) भाग्यवाद लोक मानस मे पूव जन्म की धारणा ने भाग्यवाद को 'कम भोग' की प्रति पत्ति के रूप म स्थापित किया हुआ है। एक दो पदा मे मीरा ने 'पूरब जनम को कौल' कहकर उस ओर सकेत किया है और भाग्यवाद की व्यजना एक पद म की है—

करम गति टारे नाहिं टरी।
सतवादी हरिचंद से राजा, नीच घर नीर भरे।
पाच पाडु अर सती द्रौपदी हाड हिमाणं गरे।
जग्ग कियो बलि लैण इद्रासण सो पाताल धरे। 33(190)

—भाग्यवाद सम्बधी अन्य उदाहरण नही मिलता। सिवा इसके कि एक पद मे भाग्य लिख्यो सो ही पायो (189) कहा गया है।

(vi) नेम धरम मीरा कालीन समाज मे लोक जीवन भौतिक वाछाओ से सम्पृक्त नही था। परलोक सुधार की मान्यताएँ सजीव थी। प्राय हर परिवार स्वच्छ जीवन के लिए कुछ नेम धरम पालता था। मीरा के पदो मे कुछ ऐसे सकेत आए हैं जो लोक जीवन के उस तत्व का हवाला देते हैं—

"चरणाश्रित का नेम हमारो, नित उठ दरसण जास्यां। 33(34)

—और सहज साधना नेम भी—

'मेरे पिया मेरे हिये बसत है, ना कहु आती जाती। (20)

—तिलक माला और कठी धारण करने का नेम भी पाला जाता था—

"चूडो म्हारे तिलक अर माला, सील बरत सिणगारो। (23)
"म्हारे पीहरिये रा लोक भले रो बाधे कठी माला।" 9 ( )

साधु सगत और सत्सग भी धम-कम का अग था। उस पर मीरा ने अपनी भक्ति की टक ही स्थापित कर रखी थी।

"जहाँ जहाँ देखू म्हारो राम, तहाँ सेवा करूँ। (55) भी एक नेम था। इसके अलावा 'नेम धरम' मे नित प्रति ध्यान धरत हूँ दिल मे' (88) भी एक उपाय था। 'कीर्तन करना' (91), 'सुरत समाधि लगाना' (92), 'मन की इच्छाओ पर अकुश लगाना (106)—ऐसी क्रियाओ के सकेत मीरा के पदो मे मिलते हैं। ऐसे नेम धरम आज भी लोक जीवन मे आत्म साधना के पोषक हैं।

(vii) जन्तर मन्तर आदि लोक मानस मे जसे भक्ति, मुक्ति की चाहना और नेम धरम की मान्यताएँ होती हैं, वैसे ही जादू मतर, टोना टोटका और भावी के पूर्व बोध की लालसा भी होती है। मध्ययुग का जन मानस इनसे सम्पृक्त था। अनुष्ठान, पूजा पाठ आदि भी उन्ही भावनाओ से प्रेरित होत थे।

मीरा के पदो म जतर मतर, टोना टोटका से सम्बन्धित सकत नही मिलत—'मीरा पदावली और मीरा व्यक्तित्व एव कृतित्व के प्रमाणिक कह जाने वाले पदा मे—सिवाय एकाध नामोल्लेख के—'चितवन म टोना 33(95) किन्तु ज्योतिष से सम्बन्धित कुछ सकेत जरूर मिलत हैं। इससे पता लगता है कि सम्भ्रात घरानो मे और सामान्य जना मे ज्योतिष, पत्रा आदि का चलन तो आम था किन्तु

जतर मतर टोना टोटका उन समुदायों मे प्रचलित रहे होंगे जिनकी पहुँच वैद जनों तक नही होगी। अथवा यो कहे कि मीरा का व्यक्तित्व अन्तत राज-मर्यादाओ और सस्कारो से मडित था। उसकी वेदना भक्ति मे 'वध' तो है, मगर जतर मतर नहीं है, प्रिय को रिझाने हतु टाने टोटक भी नहीं हैं। यह मीरा के व्यक्तित्व की दृढता का परिचायक माना जा सकता है। वह अपने प्रियतम की प्रतीक्षा पडर केस तक कर सकती है, विरह वेदना मे 'तडप सकती है, उसके 'अग लगने' के लिए 'जल बल भसम की ढेरी' बन सकती है, पर बाहरी उपायो से वशीकरण, आकपण के उपाय नहीं कर सकती। उसकी आत्मनिष्ठा की परिचायक यह स्थिति हो सकती है। द्रष्टव्य—

किंतु जासीडा को बधाई' 33(142) देना वह नही भूलती क्योकि उसने शोध के प्रिय आगमन की भावी कही होगी और 'अब घर आये स्याम' (वही) तो बधाई।

'काग उडावत दिन गया, बूझे पिडत जोसी हो।
मीरा विरहिणी व्याकुली, दरसण कब होसी हो। 33(116)

(viii) प्रकृति भक्तो, सतों, कवियो सबके लिए प्रकृति भाव निरूपण का बहुत सशक्त माध्यम रही है। मीरा के साथ भी वही बात है। प्रेम गाथाओ मे तो मन के साथ, 'थाँभा मार्चे घर हँस, खेलण लागी खाट' तक भी कवि जन जा चुके हैं। मगर, मीरा ने प्रकृति को कही तो विषय वर्णन के साथ अपनी अनुभूतियो से उसे सम्पक्त किया है तो कही काव्य रूढियों की तरह उसे सहायक बनाया है।

दृश्य वर्णन के रूपो म कालिंदी के तीर गऊएँ चराते, कदम तले वशी बजात कृष्ण' 33(6) हैं, 'मूसलाधार वर्षा मे डूबता व्रज' है, जमना तीर' का स्मरण है, 'असुवन से सींची पली प्रेम की बेल' (15) है, डाबरिया, छीलरिया, चौमास्यां की बावडी, झरना, गगा, जमना, दरियाव, समद के सकेत-सुमिरण हैं। 'कालर अपनो' के साथ निपजै चीज' (25) की स्मृति है, 'वन वन भटकने' के साथ 'पथ दुहेला' और 'आडा औघट घाट' (49) भी हैं जिनमे शायद पुष्कर और अरावली के घाटा की याद हो। 'मतवारे बादल' के साथ 'वर्षाकालीन' प्रकृति का चित्र है (81) मारवाड की 'काली पीली घटा' और पाणी भरी भूमि' (82) है। बारहमासे का चित्र है (116), 'सरवरिया की पाल' और उस पर प्रतीक्षा करती सूय पूजा करती महिलाएँ हैं (120), और 'रिमझिम सावन की' उद्दीपक 'नन्हीं नन्ही बूदें' (117) भी हैं। 'फागुन और उसकी फुलझडियाँ (151) भी हैं। और सबके साथ ब दावन' की झाँकी भी है (163)।

काव्य रूढियो के रूप में प्रकृति का उपयोग नानाविध हुआ है—'कवल कोमल' 33(1), 'मवद रसाल' (3), 'बारिज भवां अलक टेढ़ी मनों' (7) 'सुन्दर

वदन कमल दल लोचन' (8) 'कुडल की अलक झलक कपोलन पर छाई। मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई' (9) 'अधर बिंब' (9) 'दसन दमक दाडिम दुति' (वही) 'चमके चपला मी', 'वदन चदा परकासत हेली' (10) 'पिया जीवन मूर जडी' (11) 'असुवन जल सीचि सीचि प्रेम वेल बोई।' 'अब तो बेल फैल गई आणदपल होई'(15) 'काल व्याल सू बाची' (16), सुरत निरत का दिवला, मनसा की बात, प्रेम हरी का तेल' (20), छीलरिये म्हारो चित्त नही रे, डाबरिये कु ण जाव।'

'गगा जमुना से काम नही र हि तो जाय मिलू दरयाव', (21) 'कुल कुटुम्बी आन बैठे सानहुं मधुमाखी' (22), चौगास्यां की बावडी ज्या कू नीर न पीजै। हरि नारे अम्रत झरै, ज्यां की आस करीजै' (28) यह ससार बाड का काँटा' (34), 'थे तो राणाजी म्हनै इसडा लागो ज्यूं बच्छल मे कैर' (37), 'सीप भइयो-पाँणी पिवे रे, टाक भरयो अन्न खाय' (47), 'अगर चदण की चिता बणाऊँ। जल बल भई भसम की ढेरी आपणे अग लगा जा।' (50), 'चरण कँवल की दासी' (51), 'तोडत जेज करत नहि सजनी, जैस चमेली के फूल' (58), 'आवा की डाल कोइल इक बोले, मेरा मरण अर जग केरी हाँसी।' (61) 'साँझ भई परभात' (68), 'रैण अधेरो बीज बिच चमकै, तारा गिणत निरास' (वही) 'सावण कहि गए अजहु न आये' (69) 'गगन मडल पै सेज पिया की' (72), 'पाना ज्यू पीली पडी रे, लोग कहे पिंड रोग (74), 'रहा रहा पापी पापीहा रे पिय को नाम न लेइ, (वही) काढि कलेजो मे धरूँ रे, कागा तू ले जाइ' (वही), 'दादुर मोर पपीहा बोले कोयल सबद सुणवै। घुमट घटा ऊलर होई आवे, दामिनि दरक डरावै', (76), 'विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिय जावे', (वही) 'स्याम बिना जियडो मुरझावे जसे जल बिन वेली, (80)

"मतवारे बादल आये रे, हरि को सनेसो न लाये रे।
दादर मार पपइया बोले, कोयल सबद सुणाएँ रे।
कारी अधियारी बिजरी चमकै, विरहिणी अति डरपाये रे।
गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति घड लाये रे।
कारी नाग बिरह अति जारी, मीरा मन हरिभाय रे। (81)

और बैस ही—

बादल देख डरी हो स्याम म्हैं बादल देख डरी।
काली पीली घट ऊमरी, बरस्यो एक घरी।
जित जोऊ तित पाणी पाणी हुई, हुई भोम हरी। (82)

—इससे भिन्न पपीहे की घातक बोली—'रे पपइया प्यारे कब को चितार्‌यो! उठि बैठो वा विरछ की डारी, बोल बोल कंठ सार्‌यो।' (83)

पपीहा और कोआ प्रेम काव्यो मे बहु प्रयुक्त जीव हैं। पपीहा तो अवांछित है—चांच कटाऊं पपइया रे अपरि वालर लूण। पिव मेरा मैं पिव की रे, तू पिव कहे स कूंण। (84) और कोआ सुहावणा है—'चाच मढाऊं थारी सोवणं रे, तूं मेरो सरताज।' (वही) चातक और मछली विरह के प्रतीक हैं—'ज्यू चातक घनकू रटै मछली जिमि पानी हो।' (87) सप विरह है—'कहां काहूं कित आऊ मेरी सजनी, मानो भरप डसी', (88) 'कमठ, दादुर और मीन म अतर है—'कमठ दादर बसत जल म जल से उपजाई। मीन जल से करत बाहर, तुरत मर जाई।' (89) 'विरह कारण बोरी भई, ज्यूं काठहि घुन खाइ।', (89)—एक उपमा है तो 'विरह पिंजर की बाढ सखी री', (92)—दूसरे तरह की जो प्रकृति के विरल उपयोग हैं।' बिरह म 'छमासी रैण' होना भी एक काव्य रूढि है, तो पारधि ज्यूं चूकै नहि, मृगी बेधि दई आय, शिकारी जीवन से उठाई गई उपमा है। 'रसिक मधुप के मरम को नहि समझत केवल सुभाइ', और 'पानी पीर न जाणइ मीन तलाफि मर जाइ', (105) मे मानवीकरण अनोखा है यद्यपि 'दीपक जु दया नही, उडि उडिगरत पतग', (वही) मे सूफियाना तरीका है। 'मन मदमाता हाथी', (106)—यह लोक काव्यो की देन है जिस पर राजपूती छाप है।

अलग अलग महीनो मे मरुधर की प्रकृति भी मीरा के पदा में प्राकृतिक सामाजिक परिवेश के साथ उभरी है—

'जेठ महीने जल विणा पछी दुख होई हो।
मार असाढां कुरल है, घण चात्रग सोई हो।
सावण मैं झड लागियो, सखि तीजां खेलै हो। तो,
भादरवै नदियां बहै, दूरि जिणि मले हो। और,
सीप स्वाति ही झेलती, आसोजां सोई हो।
देव काती मे पूजहे, मेरे तुण होई हो।
मगसर ठड बहोती पडे, मोहि बेगि सम्हालो हो।
पोस महीं पाला घणा, अब ही तुम हालो हो।
महा महीं वसत पचमी, फागां सब गावैं हो।
फागुण फागा खेल है, वणराइ जनावै हो।
चैत चित मैं ऊपजी, दरसण तुम दीजै हो। और,
बैसाख वणराइ फूलवै, कोइल कुरलाजै हो। (116)

सरवरिया री पाल (120) भी है जो 'सांपडने' असनान', करने के लिए सांस्कृतिक व्यापार के लिए केन्द्र है। उधर लोक काव्या की तरह 'अखिया से नदिया बह ज्यूं सावण की' (122)वाली अतिशयोक्ति भी है और पांख नहि उडि

जावण' (122) वाली कल्पनोक्ति भी है। एक तरफ बिरह 'नागण' है तो दूसरी तरफ वह 'बाघड़' (126) भी है। उसके कारण 'ज्यू चकवो रैण न मावै जी' (वही) और 'ज्यूं जल त्यागा मीना जी' से उपमा है। 'सावन' तो कई रूपो मे है—"सावन भादा उमडो, बरखा रितु आई हो। भौंह घटा घन घेरि के, नैनन झर लाई हो।' (129) वाला भी है और,

"बदरा ने घेरी माई।' (140) जैसे 'डाकू लुटेरे' घेर लें कि—

इत धन गरजे, उत धन लरजे, चमकत बिज्जु सवाई।
उमड घुमड चहुँ दिस तैं आया, पवन चले पुरवाई।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणाई। (140)

—पूरी लुटेरो की फौज का नमूना है जो सुख चैन लूटने आए हैं। वही सावन दूसरी तरह से भी है कि—

उमग्यो इन्द्र चहुँ दिसि बरसे, दामिण छोडी लाज।' (141)

—मिलन की वांछा म—

मगल बाद्य दादुर मोर पपइया बोलै, कोइल मधुरे साज।

और नायिका की तरह—

धरती रूप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलण कैकाज। (141)

—मारवाड मे कभी होली पर मावठे भी जोरदार होते हैं—

—गणगोर पर भी—

"काली पीली बादल मे बिजली चमकै, मेघ घटा घनघोर छंजी।

परन्तु—

दादुर मोर पपीहा बोल, कोयल कर रही सोर छंजी। (143)

—में केवल काव्य रूढि का निभाव है क्योकि मावटे की बरखा मे ये सब प्राकृतिक व्यापार होते नही। अकसर करके सावन ही प्रिय आगमन का अवसर होता है—

झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन मे उमग्यो मेरो मनवा भनक सुनी प्रिय आवन की।
उमड घुमड चहुँ दिसि से आयो, दामण दरक झरलावण की।
नन्ही नन्ही बूदन मेहा बरसै, सीतल पवन सुहावण की। (144)

सावन मारवाडी लोक जीवन मे विशेष महत्व रखता है, तभी मीरा ने बहुलता से उसे बखाना है—'सावण दे रह्या जोटा रे' (145) और 'बदलारे तू जल भरि लायो' (147)। वैसे ही 'फागुन पर भी मीरा के पद अपेक्षाकृत ज्यादा हैं।

सूर की गोपियों ने मीरा से ही आँसू बहाना सीखा था कि

"कागद ले राधा बाचण बैठी, भर आई छाती।
नैण नीरज मे अब वहै रे बाला, गगा बहि जाती।
पाना ज्यू पीली पडी री बाला, अन्न नहि खाती।
हरि विण जिवडो यू वलै रे बाला यू दीपक सग वाती। (186)—कुछ

अनोखापन ही है जो लोककाव्यो के लिए भी नया ढंग है।
और राजमहलो की हौज' और 'फव्वारो' वाली प्रकृति भी मीरा के पदो मे
है—चलो अगम के देस काल देखत डरै।
वहा भरा प्रेम का हौज, हस केल्या करै। (192)—'प्रेम की राह', 'ऊची
नीची राह रपटीली, पाव नही ठहराइ।' (193) 'बीता समय' तो 'विरछ के ज्यू
पात टूटे, बहुरि न लागे डार' (195) से समझाया गया है तो 'चार दिना का
जीवणा' को 'ज्यू दाडिम का फूल' (198) कहा गया है।
इस तरह से प्रकृति आलबन रूप मे उद्दीपन रूप में, अलकार रूप मे व्यक्त हुई
है और उसमे राजघराने से लेकर लोक धरातल तक के तत्व समाविष्ट हैं।
(ix) सयुक्त परिवार मध्य युग मे कृषि आधारित जीवन, युद्ध, सघष और
सम्मिलित जीवन प्रणाली के कारण, परिवारो का रूप एकात्मक था। राजघरानो
मे तो बहु विवाह और राज सचालन की आवश्यकताएँ सयुक्त परिवार से ही पूरी
होती थी। मीरा के पदो मे एक दो स्थानो पर सयुक्त परिवार के 'उसके अनुभव'
व्यक्त हुए हैं। प्रेम भक्ति की टेक, साधु सगति का दुराग्रह भजन-कीतन और
वैरागी जीवन जीने की उसकी टेक ने परिवार मे उथल पुथल कर दी थी—
'कुल कुटुम्बी आन बैठे मानहु मधुमाखी' (22)—मधुमक्खियो की तरह
सीख देने, समझाने वालो की भीड लग जाती थी। नणद, भाभी, सखी, सहेली,
जेठानी, धायें—सब, इसलिए कि उसने' राज कुल की लाज गमाई, साधा के
सग मे भटकी। (24) छोटे समझाते या बडे—
"जेठ बहू की काण न मानूँ, घूँघट पड गई पटकी।' (24)—ऐसा उसका
आग्रह था। उल्टे वह अपनी 'सखियो' को समझाती थी—
"आवो सहेल्या रली करा है, पर घर गावण निवारी। (25) क्योकि खाली
समय मे महिलाआ का एक ही काम रहता था कि पास पडास म जाकर "महिला
पुराण, निदा, स्तुति की चर्चा की जाए। अपने पीहर मे भी और ससुराल मे भी
मीरा ने कुटुम्ब परिवार का सहयोग नही पाया। सीध ही-सीध पाई और इतनी
पाई कि अन्तत—

मात पिता सुत कुटुम कबीला, टूट गया ज्यूँ तागा।' (26)

धाय माई की नजर मे मीरा—

"गेली दीखै मीरा बावली, सुपना तो आल जजाल।" (27) और

"माई कहै सुण धीयडी, काहे गुण फूली।"

"लोक सोवै सुख नीदडी, थू क्यूं रैणज भूली।" (78)

सास के उससे सवाल थे—

"औरज पूजै गोरज्या जी, थें क्यूं न पूजो गौर? (29)

और उलाहने भी—

"बाल सनेही गोविंदो ये तो साध सता का काम।
थें बेटी राठोड की थाने राज दियो भगवान। (वही)
लाजै पीहर सासरो, माइतणो मोसाल।
सब ही लागे मेडतिया जी, था सूं बुरो कहै ससार। (वही)

ननद तो बार-बार बरज बरज कर हार गई। अत मे चेतावनी देने लगी—

'थाने बरज बरज म्हें हारी, भाभी मानो बात हमारी।
राणे रोस किया था ऊपर, साधा मैं मत जारी। (30)

—फटकार भी—

कुल को लाग लगै छै भाभी, निंदा हो रही भारी।
साधा रै सग बन बन भटकी, लाज गमाई सारी।
बडा घर थें जनम लियो छै, नाची दै दै तारी।
वर पायो हिंदवाणै सूरज, थें काई मन धारी। (वही)

फिर समझाने सम्बोधने के अनुभव भी कि—

भाभी बोलो वचन सभारी।
साधा की सगत दुख भारी, मानो बात हमारी।
छापा तिलक गलहार उतारो, पहिरो हार हजारी।
रतन जडित आभूखान पहिरो, भोगो भोग अपारी।
मीरा जी थें चलो महल मे, था ने सौगन म्हारी। (वही)

तथापि मीरा का हठ कि—

'बरजी मैं काहू की नाहिं रहू।' (31) 'म्हे तो गोविंद का गुण गास्या,' 'नित उठि दरसण जास्या, 'हरि मिंदर मे निरत करास्या' (31)—और 'राणा को न भावे' तो मीरा को भी—नहि भावै थारो देसडलो रगसडो। (35) राणा आदि बैर भी रखते थे—'राणाजी थें क्याने राखो म्हा सूं बैर।' (37)—कुल कुटुम्बी न मानें, बैर रखें तो—'सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हारो कइकरसी।' (38) 'आपणो

रखासी' (वही)—वैर इतना कि—

'विष का प्याला राणाजी भेज्या' (39) 'राणाजी यें जहर दियो मैं जाणी' (41) 'पेट्या वासक भेज्या जी 9 (42)। रोज ही रोज—

"सास लडै मेरी ननद खिजावै, राणा रह्या रिसाय।
पहरो भी राख्यो, चौकी बिठादयो, ताला दिपो जडाय। (46)

तब असहनीय अनुभव हो गए कि—

"थारी मारी ना मरूँ, म्हारो राखण हारो और। (47)

और अतत "कर मूरापण नीसरी, म्हारे कुण राजा कुण राव' (47)। इस तरह से सयुक्त परिवार और राजनीति के शिकजे से टूट कर मीरा ने अनुभव किया—

"माता पिता सुत कुटुम कबीला सब मतलब के गरजी।'

और भी—

"म्हारो सगपण तो सूं सवारया, जुग सूं नही विचारी।' (54)

"यौ ससार सगो नहि कोई" (130) की वेदना के साथ अतत मीरा को हरिशरण होना पडा—

"अब मैं सरण परीरे रामा, ज्यू जाणे त्यू तार। (131)
या जग मे कोई नहिं अपणा, सुणियो श्रवण मुरार।"

इस तरह मीरा के पदो मे लोकतत्वों के कम से कम नो घटको के हवाले मिलते हैं। इनके अलावा लोक जीवन के नृत्य, वाद्य, जोग साधना आदि के फुटकर सकेत भी हैं चाहे रूपक योजना मे ही हो या नामोल्लेख के रूप मे।

4 शैली तत्व

साहित्य अपने परिवेश और लोक मानस की उपज होता है। भक्ति साहित्य लोक से लोक के लिए होता है, अत उसमे लोक भाषा, शब्द-सम्पदा और उक्ति सम्पदा का उपयोग होता है। मीरा के पदो के साथ भी ऐसा ही मानना चाहिए।

लोक मे गीति तत्व, सस्वर अभिव्यक्ति के प्रमाण बहुत पुराने हैं। सामवेद तो गीतियो का वेद ही कहलाता है। प्राकृत मे, अपभ्रश म, मुक्तागीतियों के अलावा पद गीतियों और चर्या गीतों के नमूने सिद्धो और बौद्ध पथियो के जमाने से चले आ रहे हैं। लोक मे ही पद शैली म भावाभिव्यक्ति जनमी और पनपी थी। सस्कृत के नाटको में पद गीतियो को प्राकृत में रखने की परम्परा भी यही बतलाती है।

नाथ पथियों और हठयोगियों मे से होते हुए पदों का प्रचार कबीर, नामदेव,

नानक, सूर, तुलसी आदि के, हर तरह के, भक्ति साहित्य मे मिलता है।

बताया जाता है कि 44 (406) पद-रचना ग्राम रागो की एक विधा थी और उसका सम्बन्ध कई तरह के रागो से होता था। "स्वर विभूषित राग-रीतियाँ साहित्य मे शब्दार्थ की साधना बन कर पद कहलाईं।" पद परम्परा का प्राचीन प्रमाण—हिन्दी मे—सिद्धो के चर्या पदो मे मिलता है। उनके साथ अरु, कामोद, गउडा, गूजरी, देशीरव, बराडी, बगाल, शीवरी आदि रागो के नाम मिलते हैं। इससे पता लगता है कि पद गेय होते थे चाहे उनमे छन्दो का निभाव हो सके अथवा नही। सिद्धो के बाद पदो का विकास नागदेव, कबीर, रैदास दादू आदि मे भी मिलता है। वैष्णव शक्ति मे भी पद-रचना की गेय परम्परा ही भक्ति की प्रकाशिका रही है। रामानन्द के बाद पद साहित्य की परम्पराएँ वैष्णव भक्तों मे सतो मे, शृगारवादियो मे और सगीतकारो मे कुछ भिन्नताओ के साथ विकसित होती बताई जाती हैं। राजस्थान मे काहडद प्रबध मे फिर धन्ना, पीपा, बालनाथ, जसनाथ आदि पंथो मे पद साहित्य प्रचुरता के साथ प्रचलित था और यह सब मीरा का पूववर्ती साहित्य था।

मीरा के समय तक भक्ति परक पद साहित्य का विपुल भडार प्रचलित था। उनमे भक्त की छाप, टेक और इष्ट को छोडकर अभिव्यक्ति की शैली और सांचे लगभग समान थे।

यही कारण है कि विनती, प्रार्थना, असारता अवतार वदना आदि के पदो मे सभी भक्तो के पद लगभग समान मिलते हैं।

मीरा के पदो के साथ रागो का भी उल्लेख मिलता है। कम से कम 27 रागो के नाम उसके पदो के साथ मिलते हैं (वही) जिनमे आनद भैरो, जोगिया, कान्हडा, तिलग, प्रभाती, पूर्वी, एक ताला, मल्हार, आसावरी, काफी, टोडी, विहाग, मारू आदि मुख्य हैं। इन रागो को भाव प्रकारो से जोडकर भी बताया जाता है, जसे—जोगिया को करुणा के भावो से, आसावरी, पीलू, भैरवी शृगार से। मीरा के पदा मे करुणा, व्यथा और शृगार की प्रधानता है।

गेयता की दृष्टि से मीरा के पदा मे भावना प्रवणता, अनुभूति का तीखापन और स्वानुभूति परकता अधिक प्रधानता रखती है। उसके पदों मे बाह्य वस्तु परकता नही है बल्कि स्वानुभूति परकता प्रखर है इसीलिए वे पद रसिक जनों को अधिक उद्दीप्त करते हैं, जैसे—'आये मेरे अगना, फिरि गये सजना, मैं अभागन रही सोय री!", 'सेज अलूणी, भवन अकेली, रैण भयकर भेस। अब सलूणे प्रीतम प्यारे, बीते जोबन बेस!"—जैसे पदो में 12 9, 12 9 कही 8 8 11 मात्राओं के क्रम से स्वर का उतार चढाव भावों को जगाने और उद्दीप्त करने का काम करता है और वह उद्दीपन तथा विभाजन स्वानुभूतिपरक होने से सीधा ही रसिक के मन मे उतर जाता है। उसे अभ्यास नही करना पडता।

गेयता के साथ छद रचना का भी विशेष सम्बन्ध होता है यद्यपि पद रचनाओ मे छदोबद्धता का कठोरता से निभाव अधिकतर नहीं मिलता। हम मीरा को शास्त्रावद्ध कवयित्री नहीं मानना चाहिए, वह स्वय सिद्ध भक्त थी—ऐसा हम कह सकते हैं। जिन समीक्षकों ने मीरा पदो मे छन्द विधान की खोज की है उनका यही मत है कि इन पदा म किसी एक छन्द का निभाव नहीं है, कई जगह दो-तीन छदो का मिश्रण है और कई जगह एक छन्द होते हुए भी सवत्र वह लक्षणबद्ध नहीं है। इसका कारण यह कि मीरा छन्द रचना करने नही बैठी थी, तब गेयता के प्रवाह मे छन्द लक्षण टूटते-बनते भी रहे होगे।

बताया जाता है कि मीरा के पदो मे 16 मात्रा के चौपाई छन्द से लेकर 32 मात्राओ वाले समान छदो के उदाहरण मिल जाते हैं जिनमे सार (28 मात्रा), सरसी (27 मात्रा), विष्णु पदी (26) दोहा (24), ताटक (30), कुडल (22), चाद्रायण (21), सुगीत (25) को पहचाना जा सका है, तथापि पदा म कहीं मात्राएँ कम ज्यादा हैं तो कहीं यति स्थानो मे भी अतर है। अत छद शास्त्र के निगमन की कसौटियाँ मीरा पर लागू करना सुसगत नही होगा। वहाँ तो भावना प्रवणता का आस्वादन करना ही प्रधान लक्ष्य रहना चाहिए। वैसे गीति तत्व के विचार से सार, सरसी, विष्णुपद और कुडल छन्द अधिक प्रवाही माने जाते हैं।

जैसे—पग घुघरू बाँध मीरा नाची रे। (1612)
मैं तो मेरे नारायण की हो गइ आपहि दासी, रे। (16 12/2)

अत के 3 3 गुरु स्वर को खुलापन देकर आलाप और तान की सुविधा भी प्रदान करते हैं। मीरा अधिकतर पद इस शैली के हैं जो अत मे ऽ या ऽऽ या ऽऽऽ के लक्षण रखते हैं—यथा—पदो के चरणांत मे—"लेसी माई, मानू, चलास्या' दासी रे, नासी रे, हासी रे, अविनासी रे" 'राची रे, नाची रे, मदमाती रे, आरोगीरे" 'जाणी, बाराबार्णा, पाणी, औराणी, सनकाणी, लपटाणी।"

मीरा के कलापक्ष की समीक्षा करते हुए समीक्षको ने मीरा को मेडता वासिनी मानकर उसकी भाप्त मे पुरानी राजस्थानी की छाप खोजने के प्रयत्न किए हैं। हमे सोचना चाहिए कि जब किसी सत या भक्त की बानी लोकव्यापी हो जाती है, लोगो की जबान पर चढ जाती है तब वह भाषा विशेष के साँचे और ढाँचे की सीमा तोडकर ही वैसा कर पाता है। कबीर, दादू, रेदास, मीरा के लिए हम इस तथ्य को ध्यान म रखना चाहिए। ऐसे साहित्य मे अधिक स अधिक हम (1) उसकी शब्द सम्पदा और (2) उसकी उक्तिगत सरचना को ही समझने की कोशिश कर सकते हैं क्योकि उनम हो उस साहित्य की मूल बातें सुरक्षित रह सकती हैं और परिवेश को प्रमाणित कर सकती है—

मीरा के पदो मे शब्द सम्पदा के स्वरूप को देखना चाहे तो उन्हे कई प्रयोजन निष्ठ वर्गों मे देखने की जरूरत होगी, यथा भक्ति सम्बन्धी, उपासना सम्बन्धी नितनेम, लोक जीवन से सम्बन्धित विविध वस्तुएँ, काय, व्यापार, प्रकृति आदि उसी तरह उक्ति सम्पदा के प्रसग मे हमे कथन रीति मे पद योजना या सरचना, मुहावरे, रूढ़ोक्तियो, कहावतो और सास्कृतिक निरुपणवाची कथनो को देखना पडेगा। उनसे मीरा के समय की लोक भाषा और अभिव्यजना के स्वरूप का आभास मिल सकेगा।

(i) शब्द सम्पदा मीरा भक्त थी। उसकी भक्ति पर लोकतात्विक कारणो से सगुण भक्ति धारा का प्रभाव भी था और सत एव नाथ साधना का भी। उसके पदा मे अपने इष्ट के लिए जिन शब्दो सम्बोधनो का प्रयोग हुआ है, वे लोक मानस और समन्वित साधना का प्रमाण देते हैं—यथा—

(i) मीरा के इष्ट, गिरधर नागर, गोकल का बिहारी, हरी, गोव्यद, मन मोहन, सांवलिया, बलवीर, 33 (123), साबरो, सांवरिया चतर-भज नाथ, श्याम सुदर भी हैं, बन्दाबन चद की है, मोहनलाल, बिहारी भी।

(ii) दीनानाथ, प्रभुजी, प्रभु, और

(iii) राम के साथ साथ

(iv) जोगी, जोगीडा, सामी, स्वामी अविनासी, सतगुरु, खसम, रमैया भी हैं और

(v) प्रियतम, प्रिय, पिया, सजन, प्रान आधार, धणी होने के अलावा

(vi) महाराज, ठाकुर, रावल, हुजूर, नरेस, भी हैं, और गरीब निवाज 33 (109) भी।

इतने सारे नामो से सम्बोधन बताता है कि लोक मे ईश्वर वाचक नामा में सम्प्रदायबाद्दिता नही थी। मीरा की अपनी छाप तो 'प्रियतम' वाचक थी और 'ठाकर' वाची प्रयोगो का चलन राजघरानो मे था।

स्वय मीरा ने अपने लिये 'मीरा, दासी मीरा, बाई मीरा, जन मीरा 33 (160), दास मीरा (161)—जस सम्बोधनो का प्रयोग किया है जिनमे उसकी विनय पूणता झलकती है। 'बाई' मे राजपूती छाप है।

अपनी भक्ति के लिए मीरा ने भगति रसीली 33(16), दास रावरी 33(4) धणी मिल्या छै हुजूर (21), गिरधर रगराती (20), अपणे सया सग साँची प्रभु गिरधर नागर, (24) सो गया अचल सुहाग (27), अपणी कर लीजै (28), गोविद मिल्या जी (29), प्रभु हरि अविनाशी (31), सरण सबल गिरधर की

(38), जनम जनम की दासी (40), दासी अपणी जाणी (41), बांह गहे की लाज राखज्यो (42), सांवलिया वर पावां (43), भजन भाव में मस्त डोलती (45), राम अमल माती रहे (47), मीरा व्याकुल विरहिणी (49), जोत मे जोत मिला जा (50), चरण सरण है दासी (54), प्रेम पियारा मीत (61), चेरो भई बिन मोल (62), लाज राखो महाराज (64), तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी (67), मीरा दासी राम रती (68), वेद सांवलिया होइ (72), लीज्यो कंठ लगाई (73), पिया दरसण दीजो मोहि (74) रमैया बिन नींद नहिं आव (76), कीज्यो प्रीत खरी (82), प्रीत रसीली बसी (88), पिया की उमग अति लागी री (91), तुम चरणा आधार (93), मैं भई रावरी (100), अग से अग लगावो हा (104) चरणन की चेरी (128), सहज वर वैराग (162), जीव परम पद पावै (160), छाज ये वर वद्यो (174) सांवलियां सू प्रीत औरन सूं आखडी (192) भज उतरे भव पार (196), ताहि क रग मे भीजे रे (199), इस तरह के पदो का प्रयोग किया है। इनसे पता लगता है कि इनके पीछे कभी भक्ति का, कभी शरणागति का, कभी साधना का, कभी दाम्पत्य का भाव प्रधान रहा है। यह मानना ठीक नहीं होगा कि मीरा की भक्ति केवल दाम्पत्य भाव की ही थी यद्यपि उसमें दाम्पत्य भावना एक प्रखरतर विशेषता थी। उसके कारण उसकी भक्ति मे एक मतवालापन था, एक हठ था और विशेष तरह का आग्रह भी था। उसे मीरा की भक्ति का स्थायी भाव कह सकते हैं।

इसी तरह नितनेम, धरम-करम सम्बन्धी जैसी शब्दावली आई है, उसम— परसि हरि के चरण, 33(1) प्रणाम (2), मगन भई मीरा (2), सतन सुखदायी (3), अरज करत हूँ (5), दरस की भूखी (6) चरण कँवल लपटानी (8), सुरत जमाऊँ (12), हिरदे धरि लीजे हा (12) गिरधर आगे नाचूगी (14), रमैया नें देखबो करूँरी (18), जगे रह्या दिन राती (20) बधि वार-पार ह्वैगो ग्यान गुह गाँसी (22), जिण मारग साध पधारे उण मारग म्हें जास्यां (23), साधा के सग मैं भटकी (24), साधा दरसण जाती (26) सेवा साधु जनन की (29), सत गुरु सरण लहूँ (31), सुमिरन थाल हाथ म लीना (32) चरणाश्रित को नम (34), नित उठ दरसण जास्यां (वही) निरत करास्यां (वही), घुंघरिया घम-कास्यां (वही), गुण गास्यां (वही), हाथ धोय जब देखण लागी (45), उठत बैठत राम (47), भजन करै वही ठौर (47), रहूँगी वैरागण हाय री (48), प्रम भगति को पैंडो ही न्यारा (50), तरे ही कारण जोगण हूँगी (52), भगवां भेस धरूँ तुम कारण (70), छाने लघन मैं कियारी (74), मन कू मार सजूं सत गुरु (92), सोनी सुरत जगाऊ (वही), जोग धारणा (93) बन-बन बीच फिरूँगी (94), पल पल तरा रूप निहारूँ (106), दीपक जोऊँ ग्यान का (158) इस तरह के भक्ति और साधना रूपों का हवाला है।

इसका आशय यह होगा कि मीरा के समय साधु सतो और लोक मानस मे सभी पुरानी रीतियो का समन्वय हो चुका था। तभी मीरा की भक्ति के रूपो मे स्मरण, ध्यान, भजन, कीतन, नतन, दशन, चरणामृत आदि के साथ ध्यान, समाधि और भगवां वेश धारण करने की बातें आई हैं। ज्ञान चर्चा भी।

लोक जीवन की क्रियाओ, व्यापारो से सम्बन्धित शब्द-सम्पदा विविध है और अपने समय के सामाजिक, सास्कृतिक और प्राकृतिक स्थितियो के हवाले देने मे सक्षम भी है। वस्त्राभूषणो के, पर्व उत्सवा के विश्वास, धारणा आदि अमूत व्यापारो के, स्वप्न शकुन, नत्य, वाद्य, पशु, पक्षी, परिवार, नाते रिश्त आदि से सम्बन्धित शब्दो का, मीरा के पदो के आधार पर, पूरा कोश बनाया जा सकता है।

ऐसी शब्द सम्पदा का उपयोग या तो नामोल्लेख क रूप मे हुआ है या मीरा की भक्ति के उद्दीपक साधनो के रूप मे, यथा—

क्षुद्र घटिका कटि तट शोभित नुपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु सतन सुखदायी, भक्त वछल गोपाल। 33(3)

मारवाड मे आज भी छोटे बच्चों की कमर मे किंकिणि वाली करधनी पहनाई जाती है और उसकी आवाज पर बच्चे ठुमकते रहते हैं। इस गोपाल रूप के साथ 'सतन सुखदायी' और 'भगत वछल' की भावना जोडी गई है। उसी तरह से 'बकट छबि' (7), के लिए कृष्ण के बाके छैल छबीले रूप के वाचक शब्द सजोए गए हैं। उनमे मीरा की अपनी लोक सस्कृति के तत्त्व भी हैं—' टेढी पाग लद लटके।"

ऊभी ठाढी अरज करत हूँ—मे सामतवादी सस्कृति की झलक है। त्रिकुटी महल, झरोखा, सुन्न महल, सुरत, सुख की सेज, पिय के पलग, सुमिरन, सुरभी आसन, मेखला, माला, मुद्रा, खप्पर—ऐसी शब्दावली जोधपुर, मेडता नागोर के लोक जीवन म व्याप्त नाथपथी योगियो, सिद्धो और लोक देवताओ के प्रभाव के सकेत देती है।

सुदर, सुहावणा, मोहन, नटवर, बकट छबि—जैसे शब्द जोधपुरी राठौडो की सहज सुदरता और आकपक व्यक्तित्व और तद्रूप सौंदय बोध के वाचक हैं।

ढोल, डोरी, घुघरू, कछनी पखावज, ताल मदग, निरत मुरली, चग, डफ, मोरचग,—जैसी शब्दावली लोकप्रचलित नृत्य वाद्य, मस्ती, मगनता की सकेतक है तो बाजूबद कडूला, नौसर हार, सिंदूर, रतन जडित आभूषण, चूनर, लैगो, घाघरो, चूडो, तिलक, मोती माणक—जैसी शब्दावली तत्कालीन साज सज्जा का हवाला देती है।

मोती चौक, आरती, सुमिरण थाल, मोती चौछावरि, मगल गीत—जैसी शब्दावली राजपूती परम्परा, स्वागत, उत्सव की रीति नीति के वाचक हैं।

आम, कोयल, पपीहा, मोर, बिच्छू, केर, झिरमिट, बादल, कठ चुन, काली

साथ अथ की सगति भी बैठ रही है। वैसे ही 'बडे घर ताली लागी रे 33(21) वाले पद मे छोटी-बडी स्थितियो का तुलनात्मक सरणियो से जो विरोध वक्रता पैदा हो रही है, वह चमत्कारी अथ देती है— छीलरिये, डाबरिये' की तुलना मे 'दरयाव की सरचना, 'हाल्या मोल्या और काम्दारों' की तुलना मे 'दरबार' 'कांच, कथीर, लोहा' की तुलना मे हीरा रो व्योपार'—इस तरह से 'बेधि बार-पार ह्वै ग्यो ग्यान गुह गांसी' (22) की सरचना भी अथ की अतिशयता पैदा कर रही है।

'तो' सरचना वाली उक्तियां अथ मे निश्चयात्मकता और बल पैदा करती हैं— कोई निंदो कोई विंदा म्हें तो गुण गोविंद का गास्यां' (23)। क्रियापद के पास हान स अथ का भार 'गुण' पर नही, गोविंद' पर चला गया है।

इस तरह से वाक्य सरचना और पदक्रम की मीरा की अपनी विशिष्टता है जो उसके अथ को पैना और बेधक बनाती है—

'भाभी, बोलो वचन विचारि'मे (30) 'या न सोगन म्हारी' (30) म' वरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ' (31) मे सरचना बदल दें तो अथ का तीखापन खतम होकर रह जाएगा।

जब उक्ति लोक मे प्रचलित मुहावरो, रूढ़ोक्तियो से मिलती-जुलती होती है तो वह लोकानुभव को जाग्रत करने वाली और हृदयग्राही हो जाती है। रूढोक्तियो की चर्चा करते हुए इस बात को हम पहले उजागर कर चुके हैं। मीरा के पदों मे ऐसी उक्तियो की भरमार है—'यह छवि देख मगन भई मीरा' 33(2), 'आप बिना मोहि कुछु न सुहावै, निरखो सब ससार', दिल के बडे कठोर' (5), 'तुमसे हम कू कब रे मिलोन हम-सी लाख करोरि। (5), 'अरज करत भया भोर (5), 'मन बसिगो' (6), 'गउवन के सग डोलत हो' (6), 'ऊभी ठाढी अरज करत हूँ (5), वरजहू अपन दुलरवा' (6), 'सुनिये चितलाय (6), 'रूप लुभानी' (7), चरण कवल मीरा लपटानी' (8), 'नैणा लोभी रे' (9), 'बतियाँ कहत बनाई' (10), परहथ गये बिकाई' (10), सब लई सीस चढाई' (1), 'पल भरि रह्यो न जाइ' (9), नैणा बाण पडी (10), उर बिध आन अडी' (11), कब की ठाढी पथ निहारों (11), 'जीवन मूर जडी' (11), 'गिरधर हाथ बिकानी' (11), लोग कहैं बिगडी'(11) 'बनज बसाऊँ री (12), 'डरती पलक न नाऊँ री (12), 'झाँकी लगाऊँ री' (12), 'सज बिछाऊँ री' (12), 'अलि नाऊ री' (12), 'हिरदे धरि लीजे हो' (13) 'नैणा रस पीजे हो' (12) जेहि जेहि विधि रीझै हरी सोई विधि कीजे हो (13), 'बड भागण रीझ, हो' (13), प्रेमी जन कू जाचूगी' (14), यामे एक न राखूगी' (14) 'पलगा जा पौढूगी, रग राचूगी (14), 'कहा करिहै कोई' (15), 'भगति देखि राजी हुई जगती देखि रोई' (15), 'सब जग खारा लागत' (16), 'और

पीली आंधी, दामिनि, चन्द्रकला, पाला, मेहा, काली नाग, कागा—ऐसी शब्दावली मारवाडी प्रकृति के भिन्न भिन्न रूपो का आभास देती हैं।

डगर बुहारना, ढिंढोरा फेरना, पारधी, बनज बसाना, तोल तराजू, निरख परख, छाने चोडे लेना, पांवणां पधारणा, फेरी देना, पर घर गवण निवार, सरव रिया री पाल सापडणो, पतिया भेजना, सनेसा भेजना, अडसठ तीरथ, व्रत नम, अष्टकरम, खेत निपजाया कालर लूण, ताला कूची पेटी, गुलाल, चोवा, चदन, केसर, अरगजा गागर, राग छतीसू, रग तन कपडा, कसाई, चंडाल, बाखरिया और किवरिया, दही दूध, माखन माखन रोटी' मटुकी, गुजरिया—ऐसी शब्दावली लोक जीवन के विविध काय व्यापरो का सकेत देने वाली है।

मीरा के पदो की शब्द सम्पदा विपुल, व्यापक और प्रयोजनवती कही जा सकती है।

(2) उक्ति सम्पदा शब्द सम्पदा जब अथशक्ति से आवेशित की जाती है, तब वह उक्ति सम्पदा बनती है और वक्ता के आशय को, मन्तव्य को, धारणा को, और उसकी प्रेरणा को आकार देती हैं।

मीरा के पदो मे उक्ति चमत्कार कम है किंतु उक्तियों में भावना प्रवणता, अनुभूति की सहजता और मम भेदकता के तत्त्व अधिक हैं। उक्ति सम्पदा मे हम मीरा के पदो मे आयी उक्तियो की सरचना, उनकी मुहावरेदानी, रूढोक्ति परम्परा और लोक बान को देख सकते हैं।

किसी उक्ति का प्रभाव उसमे अर्थवत्ता की शक्ति, उसकी सरचना से आती है। मीरा के पदो मे उक्तियो के गठन की शैली सामान्य से कुछ भिन्न ही लगती है, यथा—

जिण चरण ब्रह्माड मेटयो नखसिखा सिरी धरण 33(1)—इस उक्ति मे ब्रह्माण्ड की सीमा मेटने के साथ नखसिखा का अव्यव प्रयोग अथ को साकारता देने का काम कर रहा है। ऐसा लगता है जैसे ब्रह्माड भी आकाश से पाताल तक एक रूप हो जिसे नख से शिख तक विष्णु के चरणा न नाप कर उसकी अनन्त सीमाओ का लोप कर दिया। ब्रह्माड नापना कहने या धरती आकाश नापना कहने से उक्ति मे ऐसी अथवत्ता नही आ सकती थी। उसी तरह 'क्षुद्र घटिका करि तट सोभित' (3) मे कटि तट की सरचना अनोखी है जो 'कमर की करधनी का अथ ध्वनित कर रही हैं। 'मेरे आसा चितवनि तुमरी और न दूजी दोर' (5)—यहाँ भी सरचना विचित्र है जो आशा और चितवन के बीच डोर का सम्बन्ध बनाती है वह अगर टूट जाए तो निराश्रितता का अथ मार्मिक बन कर उभरता है। उसी तरह— सुर नर मुनि मोहे हो ठाकुर जादुनाथ, (6) वाली उक्ति मे 'ठाकुर' ईश्वर वाचक और 'जदुनाथ' यदुकुल शिरोमणि वाचक होकर दुगुना अथ प्रकाशन करने वाली सरचना बना रहे है, तभी सुर' 'नर' और 'मुनि' जनो के

साथ अथ की सगति भी बैठ रही है। वैसे ही 'बडे घर ताली लागी रे 33(21) वाले पद मे छोटी वडी स्थितियो का तुलनात्मक सरणियो से जो विरोध वक्रता पैदा हो रही है, वह चमत्कारी अथ देती है—छीलरिये, डावरिये' की तुलना मे 'दरयाव की सरचना, 'हाल्या झोल्या और काम्दारा' की तुलना मे 'दरबार' 'कांच, कथीर, लोहा' की तुलना मे हीरा रो ब्यौपार'—इस तरह से बेधि वार-पार ह्वै ग्यौ ग्यान गुह गांसी' (22) की सरचना भी अथ को अतिशयता पैदा कर रही है।

'तो' सरचना वाली उक्तिया अथ मे निश्चयात्मकता और बल पैदा करती हैं—'कोई निदो कोई बिदो म्हे तो गुण गोविंद का गास्यां' (23)। क्रियापद के पास होने से अथ का भार 'गुण' पर नही, गोबिंद पर चला गया है।

इस तरह से वाक्य सरचना और पदक्रम की मीरा की अपनी विशिष्टता है जो उसके अथ को पैना और वेधक बनाती है—

'भाभी, बोलो वचन विचारि'मे (30) 'था ने सौगन म्हारी' (30) मे' बरजी मैं काहू की नाहि रहूँ' (31) म सरचना बदल दें तो अथ का तीखापन खतम होकर रह जाएगा।

जब उक्ति लोक में प्रचलित मुहावरो, रूढ़ोक्तियो से मिलती-जुलती होती है तो वह लोकानुभव को जाग्रत करने वाली और हृदयग्राही हो जाती है। रूढ़ावितयों की चर्चा करत हुए इस बात को हम पहले उजागर कर चुके हैं। मीरा के पदो मे ऐसी उक्तियों की भरमार है—'यह छवि देख मगन भई मीरा' 33(2), आप बिना मोहि कुछु न सुहावै, निरखो सब ससार', 'दिल के बडे कठोर' (5), 'तुमसे हम कू कब रे मिलोन, हम-सी लाख करोरि। (5), 'अरज करत भयो भोर (5), 'मन बसिगो' (6), 'गउवन के सग डोलत हो' (6), 'ऊभी ठाढी अरज करत हूँ' (5), 'बरजहू अपन दुलरवा' (6), 'सुनिये चितलाय' (6), 'रूप लुभानी' (7), चरण कवल मीरा लपटानी' (8), 'नैणा लोभी रे' (9), 'बतियाँ कहत बनाई' (10), परहथ गये बिकाई' (10), 'सब लई सीस चढ़ाई' (1), 'पल भरि रह्या न जाइ' (9), नैणा बाण पडी' (10), उर बिच आन अडी (11), कब की ठाढ़ी पथ निहारों (11) 'जीवन मूर जडी' (11), 'गिरधर हाथ बिकानी' (11), लाग कहूँ बिगडी'(11) 'बनज बसाऊँ री (12), 'डरती पलक न लाऊँ री' (12), 'झाँकी लगाऊँ री' (12), 'सेज बिछाऊँ री (12), 'गलि लाऊँ री' (12), 'हिरदे धरि लीजे हो' (13), नैणा रस पीजे हो' (12), जेहि जेहि विधि रीझै हरी सोई विधि कीजे हो (13), 'बढ भागण रीझ, हो' (13), 'प्रेमी जन कू जांचूगी' (14), याम एक न राखूगी' (14) पलगा जा पौढ़ूगी, रग राचूगी' (14), 'कहा करिहै काई' (15) 'भगति देखि राजी हुई जगती देखि रोई' (15), 'सब जग खारो लागत' (16), और

बात सब कांची (16) 'गिरधर के घर जाऊँ' (17), 'ज्यू त्यू वाहि रिझाऊँ' (17), 'जो पहिरावै सो ही पहिरूँ जो दे सो ही खाऊँ' (17), 'बेचे तो बिक जाऊँ' (17), जहाँ जहा पाँव धरणो पर' (18), कोई कहे छाने कोई कहै चौडे' (19), 'बजना ढोल, 'मूहघो सूहघो', 'तराजू ताल', 'अमोलक माल', 'लियोरी आँखी खोल, 'पूरब जनम को कौल मतलब कि मीरा के पदो मे लौकिक शैली की मुहावरेदारी ही उन्हें हृदयहारी बनाती है, उनम मगन भाव और अल्हडता लाती है। एक एक पद मे चार से छह तक मुहावरो की बहार दिखाई पडती है—

'खोल मिली तन गाती (20), 'ना कहु आती जाती', 'विरह कलेजो खाय' (101), 'क्यू तरसावो अतर जामी (101), 'पापी जीव न जावै' (96), 'नगर ढिढोरा फेरती रे' (102), 'रीत छोड अनरीत करोना' (173),—जिधर भी नजर डालें चाहे जिस पद को उठा लें उसमे मुहावरेदार प्रयोग की चटक जरूर मिल जाएगी। इस मुहावरे दरिता के कारण ही मीरा के पद अथवान और सीधे चोट करने वाले बन जाते हैं।

इसके अलावा उनम कहावतो और सहज उपमा, रूपक, आदि अलकार मयता के कारण भी मीरा की उक्तियाँ विशेष प्रभाव पैदा करती हैं—'और आसिरो नाही तुम बिन, तीनू लोक मझार' 33(4), 'तुमसे हमकू कबर मिलागे, हम मी लाख करोरि (5), देस्यू प्राण अकोर' (5), 'कुटिल भृकुटी, तिलक भाल, चितवन मे टोना खजन अर मधुप, मीन, भूले मगछौना (9) भली कहो कोई बुरी कहो मैं, सब लहू सीस चढाइ' (10), चित्त चढी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अडी' (11), 'पिव के पलगा जा पौढूगी मीरा हरि रग राचूगी' (14), 'जहाँ बिठावे तित ही बैठूं, बेचे तो बिक जाऊँ' (17) 'कोई कहे छाने, कोई कहे चौडे, लियो री बजता ढोल' (19), कोई कहे मूहघो, कोई कहे सूहघो, लियो री तराजू तोल' (19), 'चदा जायगा, सूरज जायगा धरणी अकसी। पवन पाणी दोनूं ही जायेंगे, अटल रहे अविनाशी' (20) 'ना घर मेरा, ना घर तेरा, गाव मीरा दासी' (20), 'इमरित प्याला छोडिके, बुण पीवै कडवो नीर' (21), कुल कुटुम्बी आन बैठे मानहु मधु माखी' (22), 'गज से उतर के खर नहिं चढस्या' (23), 'चाट लगी निज नाम हरी की म्हारे हिवडे खटकी (24), 'साँची पियाजी री गूदडी, देखि विराणै निवाण कू, क्यूं उपजावै खीज। कालर अपणोही भलो, जामे निपजै चीज (25), छैल विराणा लाख को हे अपणे काज न होइ' (25) 'वर हीणो अपणो भलो, कोढ़ी कुष्टी कोई,' (25), 'माता पिता सुत कुटुम कबीला, टूट गया ज्यू तागा' (25), जो मास्यां की बावडी ज्यां कू नीर न पीजै, हरि नारे अमृत झरे, ताकी आस करीजै' (28), पुन के मारग चालतां जी, झक मारो संसार' (29), 'बहां घर में जनम लिया छै, नाचो दै दै तारी' (30), 'मान अपमान दाउ घर पटवे' (33), यह ससार बाड का काँटा, ज्यां सगत नहिं जास्यां'

(34), 'थें तो राणाजी म्हांने इसडा लागो, ज्यू अच्छन म कैर' (37), 'राम नाम का थाल चलास्यां भय सागर तर जास्यां' (38), 'जैसे कचन दहत अगिन म, निकसत बारा बाणी (41), 'अपणे घर का परदा कर ले, मैं अबला बौराणी (41) 'म्हनैं भावे गरदनमार' (42) राठोडा री धीयडी जी सीसोदयां रे साथ। सैं जाती बैकुंठ कू म्हारी नेकु न मानी बात (42), 'या तो अमल म्हारो कबहुँ न उतरे' (44) 'सांझ भई मीरा सोवण लागी, मायो फूल बिछाय' (45) सास लडै म्हारी ननद खिजावै, राणो रह्या रिसाय (46), सीप भर्‌यो पाणी पिबे रे, टांक भर्‌यो अन्न खाय (47), मार्‌या पराछित लागसी, म्हांने दीजो पीहर मेल' (47), 'कुल की तारण अस्तरी या तो मुरड चली राठोर' (47), कर सूरापण नीसगी, म्हारे कुण राजा कुँण राव' (47), फारूँगी चीर करूँ गल कथा, रहूँगी बैरागण होय री चुटियां फोरूँ, मांग बिखेरू, कजरा मैं डारूँ धोय री' (48), 'पांवन चालैं पथ दुहेला, आडा औघट घाट' (49), 'अगर चदण की चिता बणाऊँ, अपणे हाथ जला जा' (50), 'जल बल भाई भसम की ढेरी, अपणे अग लगाजा' (50), 'जोत मे जोत मिलाजा' (50), 'राबारी हो के किण रे जाऊँ' (51), तरे खातर जोगण हूँगी, करत लूगी कासी' (52) 'जात न दीसैं, जात न दीसैं, जोगी किसका मीत' (59) 'डमरित पाइके बिष क्यू दीजै, कूण गाँव की रीत' (60), 'मैं जाणू या पार निभैगी छोड चले अध बीच' '(61), 'चढती बैस नैण अणियाले, तू घरि घरि मत डोल' (62), 'विरह समद मे छोड गया छो नेह की नाव चढाय' (66), 'पाट न खोल्या, मुख ना बोल्या, सांझ भई परभात' (68), 'सूली ऊपर सेज हमारी, किण विधि सोवणा होइ' (75), 'छाणैं लघण मैं कियारी, राम मिलण के काज' (74), 'मास गले गल छीजिया रे, करक रह्या गल आहिं' आगलिया री मूदडो म्हारे आवण लागो बाह' (74), 'बिन पिया जोत मदिर अँधियारो, दीपक दाया न आवैं' (75), 'विरह नागण मेरी कायाडसी है, लहर लहर जिव जाव' (75) दाभन्या ऊपर लूण लगायो, हिवडो करवत सार्‌यो'(83), 'ज्यू चातक घन कू रटैं, मछरी जिमि पाणी हो' (87)।

मन कू मार सजू सतगुरु सू दुरमत दुर भगाऊँ।
जाको नाम, सुरत की डोरी, कडिया प्रेम चढाऊँ।
ज्ञान को ढोल बण्यो अति भारी, मगन होय गुण गाऊ।

तन करू ताल, मन करूँ मारेचग, सोती सुरत जगाऊँ। (92) तरे कारण जोगण हूँगी, दूगी नगर बिच फेरी (24)' रूम रूम छावा भई डर मे, मिटि गई फेराफेरी (94), 'भूख गई निदरा गई, पापी जीवन जाणे दै (96),' मीरा दासी भई है पडर, पलटया काला केस (97), 'दरसण बिण मोहि जक न परत है, चित मेरो डांवाडोल मीरा कहे मैं भई रावरी, कहो तो बजाऊँ ढोल (110)',

प्राण गमायो झूरता रे, नयण गमायां सेय (102)', सबद सुणत मेरी छतियां कांपै, मीठे मीठे बैन (103)', 'भई छमासी रैन, (103), 'तुम देख्यां बिन कल न परत है, जानत मेरी छाती, (106), 'यो मन मेरो बडो हरामी, ज्यू मदमातो हाथी, (106), 'लागि लगनि छूटण की नांही, अब क्यू कीजै अंटिडियां, (108), 'तुम गुणवत बडे गुण सागर, मैं हूं जो औ गुण हारा, (113)' 'तुम बिच हम बिच अतर नाही जैसे सूरज धामा,' (115), साजणिया दुसमन होय बैठया, सबने लगू कडी (119)—कहीं कहावतों का प्रयोग, कहीं रूढोक्ति का उपयोग, कहीं सहज समावेश वाली उपमाएँ, कहीं रूपक, कही उत्प्रेक्षा, कही विभावना—'बिन सुर राग छत्तीसू गावै (151), कही अत्युक्ति—'आंगलियारो मूदडो म्हारे आवण लागो हाथ, कही उदाहरण—'तुम बिच हम बिच अतर नाही, जैसे सूरज धामा, कही विरोध वक्रता और कही नितात लौकिक प्रयोग—फाटत छाती, बोलो बचन सम्हालि, दरस की भूखी, हमसी लाख करोर, पियत पिभूख न भटके, चरणा लिपट परूंगी—ये सब मिलकर मीरा की अभिव्यक्ति को पैनी, तीखी, चुटीली और सहज भाव से मन मे उतरने वाली बनाते हैं। उसकी उक्तियां जितनी सपाट बयानी वाली हैं, उतनी ही लोकानुभूतियो से सम्पृक्त हैं। उनमे कवियो की सी कसरत भी नही है, जडाव और सजाव नही है, इसी कारण शायद ये उक्तियां जन जन की हो गई हैं, सर्वव्यापक हो गई हैं और युग जीवी बन गई हैं।

उपसहार

मीरा का युग मध्यकालीन सामती युग था। युग ऐसा जिसमे भक्ति, ज्ञान, वैराग, वीरता और बलिदान की पाच धाराएँ समातर बहती थी। एक सुदीर्घ सास्कृतिक परम्परा ने उन सबका एकमेक करके ऐसे लोक धरातल का निर्माण कर रखा था कि उसमे से उनके तत्वो को अलग करना सभव नही था। मीरा से कुछ पहले नामदेव, कबीर, रैदास, लगभग समकालीन पीपा, सेन, सूरदास, वल्लभाचार्य, विट्ठलदास आदि थे। मारवाड की भूमि मे लालनाथ, बालनाथ, जभोगी, रामदेवजी जैसे सत और पीर अपने पूरे प्रभाव के साथ लोकचर्चित थे। ऐसे मे मीरा के व्यक्तित्व ने जो भक्ति की बान पकडी तो वह सबके प्रभाव से एक अनोखी ज्योति बनकर प्रकट हुई। उसी पूव काल मे ढोला मारू, सोहणी-महिवाल, पद्मणी, वीसलदे रासो परमार रासो (आल्हाखड) जैसे लोककाव्य, भरथरी, गोपीचन्द, गोरख मछिदर जैसे नाथ कुछ एसा परिप्रेक्ष्य बना गए थे जिसम आम आदमी की आम अनुभूतियो, राग विरागो और अल्हड धारणाओ को वाणी मिली थी। मीरा की अभिव्यजना का वही धरातल था। इसी कारण उसके पदो म हमे ऐसी तीखी अल्हड उक्तियाँ मिलती हैं जो लोक भाषा मे, लोक व्यवहार मे, ही होती हैं, तथाकथित साहित्य मे प्रयुक्त परिनिष्ठित और सीमित अभिव्यक्ति मीरा के पदो का लक्षण नही हो सकती।

इसी कारण हम पात हैं कि मीरा के कुछ पदो म कबीर, नामदव, धमदास, गोरख, तो कुछ मे नरसीभगत, सूर, तुलसी, हरिदास और कुछ मे सूफियाना आशिक मिजाजी मिलती है। ऐसी समानता का कारण यही है कि ये सब लोक साधक थे। लोक मगल उनका क्षेत्र था और लोकमानस के साथ वे तदाकार हो गए थे, सारे देश मे लोकमानस—किसी समय विशेष मे—किसी सीमा तक एकाकार होता है और किसी सीमा तक उसमे आंचलिक प्रस्थान भेद भी होता है। उदाहरणतया 'भक्ति या ज्ञान तत्व की प्राप्ति अमूल्य धन है'—यह लोक-मान्यता हजारो वष पुरानी है और सस्कृत से लेकर आज तक उसे भक्तो, सतो, कवियो ने अपने ढग से वाणी दी है—

"निधन को धन राम हमारो निर्धन को धन राम।
चोर न लेवे, घटहु न जावे, भीर पडे पै आवे काम।"

—यह कबीर की वाणी है तो—

"हमारो निरधन को धन राम।"
"हाथ न खरचत, चोर न लूटत, गाढे आवत काम।"

—यह तुलसी की। इधर—

"पायो जी मैंने राम रतन धन पाया।"
"खरचे नहिं कोई चोरन लेवे, दन दन बढत सवायो।"

—मीरा ने गाया है। एक तरफ कबीर 'साधना पथ की कठिनाई' गा गए कि—

"मिलना कठिन है कैसे मिलेगी प्रिय जाय।"
"ऊँची जेल यह रपटीली, पाँव नही ठहराय।'
"लोकलाज कुल की मरजादा, देखत मन सकुचाय।"
'नैहर बास बसो पीहर मे, लाज तजी नहिं जाय।"

तो दूसरी तरफ मीरा ने लोकलाज त्यागने मे सकोच नही किया—

'लोकलाज कुल की मरजादा या मे एक न राखूगी।'

बल्कि—

'छाँडि दई कुल की कनि कहा करि है कोई"

—यद्यपि उसके लिए भी—

'गली तो चारो बद हुई हैं, मैं हरि सू मिलू कैसे जाय।"
"ऊँची नीची राह रपटीली, पाँव नहिं ठहराह।"

—वाली स्थिति थी।

जब भक्त और सत लोक धरातल पर जीते हैं तो उनके काव्य के उपजीवक लोक अवचेतन मे से आते हैं। इसी कारण हमे सब भक्तो सतो मे काफी समान अभिव्यजना दिखाई देती है—

कबीर के लिए भी 'परमात्मा जोगी था और उससे मिलने की तडप लौकिक तडपन जैसी तीखी थी'—

"कोई मिलावो मोहि जोगिया जोगिया बिन रह्योई न जाय।"
हौं हिरनी पिव पारधी हो मारे सबद के बान।"

—तो मीरा के मानस मे भी यही लोक चेतना घुमड रही थी—

"पिया बिन रह्योई न जाई।"
और 'है ऐसो कोई परम सनेही, तुरत सदेसो लावै।"

—तो, दोनो मे एक सी वेदना और एक सी भाषा भी है—

उसी तरह रैदास भी लोक मानस के रमैया थे और मीरा भी। तो मीरा और रैदास की कुछ अभिव्यक्तिया भी लगभग समान मिल जाती हैं—

रैदास गाते हैं—

'जो तुम तोरो सैया मैं नाहिं तोरू रे।"
"तुम सग गोरिक सजना कौन सग जोरू रे!'

—उधर मीरा उलाहना देती है—

"रावरी होइ के किणरे जाऊ, तुम ही हिवडा ये साज।"

—अगर रैदास के यहा ब्रह्म-जीव के नाते—सखर-मछिया दीपक-बाती, चाँद चकोरा के हैं तो मीरा के वहा "तुम बिच हम बिच अतर नाही जैसे सूरज घामा" की व्यजना है।

अगरचे सूर, तुलसी, कबीर रैदास, सबने 'असार ससार और दुलभ मनुष्य जन्म की बातें की हैं तो मीरा ने भी की हैं—

"नहिं ऐसो जनम बारम्बार।"
का जान् कछ पुण्य प्रकटे माणसावतार।"

—सूरदास इसी को यू कहते हैं—

"नहिं अस जनम बारम्बार।"
पुटवलौं धौं पुन्न प्रगट्यो, लह्यो नर अवतार।'

और तुलसी इस तरह से कहते हैं कि स्वर वही है, वाणी भिन्न हो गई है—

'अब लौं नसानी अब ना नसैहो।"
"राम कृपा भव निसा सिरानी, जागे फिर ना डसै हौं।"

—सूर अपनी गोपियो के माध्यम से 'गोविंद की प्रीत से हटकी रहने, लोक-लाज टूटने, चौडे आ जाने की बातें कराते हैं—

'माई री गोविंद सों प्रीत करत, तब ही काहे न हटकी री।"
"अब तो बात फैल गई, भई बीज बट की री।"
घर घर नित इहै बेर बानी घट घट की री।"
'मैं तो यह सब सही, लोक लाज पटकी।"

—मगर मीरा तो बचपन से ही कहती है—

'तू मन बरजे माइडी म्हनें साँवाँ दरसण जाता।" और
लोकलाज कुण काण जगत की, दइ बहाय जास पाणी।" कहकर सूर को पीछे छोड देती है।

रह जाता, उसकी बानी लोक बानी बन जाती है और अपने अपने ढग से व्यापक भूगोल मे, व्यापक देश-काल मे वह लोकवाही हो जाती है। इन व्यापकताओ के बीच मूल को छान निकालना कठिन काम हो जाता है। गोरख, कबीर, रैदास, सूर, तुलसी की तरह मीरा को छान निकालना भी कठिन काम कहा जाएगा। तथापि मीरा के पदो मे हम कुछ लक्षण ऐसे खोज सकते हैं जो 'मीरा की पहचान' बनाने वाले कहे जा सकते हैं, यथा—

(1) कबीर, सूर, की तरह पदो मे मीरा" 'दासी मीरा' की छाप एक पहचान कही जा सकती है।

(2) पदो मे आत्मनिष्ठता की प्रधानता। तदनुसार ही 'म्हैं', म्हारी', हम' के सम्बोधनो को एक पहचान बना सकते हैं।

(3) उक्तियो मे, राजस्थानी लोकजीवन की रूढ़ीक्तिया, कहावतो मुहावरो की अधिकता को एक पहचान बना सकत हैं। आम तौर पर हर पद मे उक्तियो की वह लौकिकता ही मीरा की मुख्य पहचान बन सकती है कि उनके कारण ही मीरा की अभिव्यक्ति मे खरापन, तीखापन, अल्हडता और सपाट बयानी आती है। सार रूप मे कथन शैली म एक ओर हम 'कबीर' को रखें—अक्खडपन म तो दूसरी ओर हमें मीरा को रखना चाहिए अल्हडपन मे—

(4) भाषा के शब्द रूपो को, व्याकरणिक गठन को, आधार बना कर हम पहचान नही बना सकते क्योकि जब बानी सावदेशिक हो जाती है तो उसका स्थानिक व्याकरण जीवित नही रहता। फिर, बानी युगजीवी हो जाए तो रूपाकार शेष नही रह जाता, भावना ही भावना रह जाती है। अत मीरा के पदा की पहचान हमे उसके पदो मे व्यक्त— (i) टेक (ii) हठीलापन, (iii) एकागी समपण और (iv) धारदार गति से करनी चाहिए।

(5) यह भी नही भूलना चाहिए कि "कितनी भी लोको मुखी हो गई हो, अभिव्यक्ति मे कितनी भी धारदार हो गई हा, अ तत मीरा राजघराने की राठौर कन्या थी गुहिलौत-वहू थी और राज गयादा इसके रक्त मे थी।"

अत मीरा के पदो को बहुत सावधानी के साथ—खास करके सयोग, वियोग से जुडे पदो को भावना भूमि पर परखने की कोशिश होनी चाहिए। इस दृष्टि मे एक आयाम यह भी जोड लेना चाहिए कि मीरा के जीवन क्रम के जितने मुकाम थे, पदो को उनस सहयोजित करके देखना बेहतर होगा—यथा—(i) किशोरअवस्था, (ii) विवाह सुख की अवस्था, (iii) वैधव्य की वह अवस्था जो राणा सागा की

सूरदास यदि 'गोविंद को मोल' लेते हैं तो मीरा भी वही करती है—

"हम नन्द नदन मोल लिये।"

"जम की फाँस काट मुसकाये, अभय आजात किये।" (सूर)

तो मीरा ने—

"माई री मैं तो लियो गोविंदो मोल।"

"कोई कहे छाने माई कहे चौडे लियो री बजता ढोल।"

एक तरफ किन्ही गदाधर भट्ट नाम के कीतनकार का एक पद मिलता है—9(242)

"हू ता स्याम रग राचो।"

देखि बिकाय गई वह मूरति, सूरति माँहि पगी।'

तो मीरा के पद मे कुछ अल्हड अभिव्यक्ति है—

"मैं अपन सैयाँ सग साँची।"

"अब काहे की लाज सजनी परगट हूँ नाची।"

वल्लभ छाप के कृष्णदास और मीरा (दोनो समकालीन) के कुछ पदो मे भाव साम्य मिल जाता है—

"तनक हरि चितवौ मेरी ओर।"

"मेरे तो मोहन तुम्ही एक हो, मो सो तुमको लाख करोर।"

कबकी ठाढी मैं अरज करत हूँ, सुनि हो नदकिशोर।" (कृष्णदास)

ऐसे ही भाव मीरा के अलग अलग पदो मे मिलते हैं—

"तनक हरि चितवो जी हम ओर।"

"हम चितवत तुम चितवत नाही, दिल के बडे कठोर।"

—एक-दूसरे पद मे—"तुमसे हमकू एक होजी, हमसी लाख करोर।"

और एक तीसरे पद में—' ऊभी ठाढी अरज करत हूँ साच भयो परभात।'

—ऐसे ही निर्गुनिया छाप वाले मीरा के पदा म भी सतो की बानी के साथ समानता मिल जाती है। इन सबका कारण यही जान पडता है कि पूर लोक मानस मे धर्म भक्ति, वैराग, साधना, नीति, सचाचार, व्यवहार, दर्शन, ससार, जगत, काम, क्रोध लोभ माह स्वाथ, परमाथ आदि के बारे म सोच समान धरातल पर स्पदित हाता था।

यह मान लेना कि मीरा के पद किन्ही अन्य जनो के हैं और उन्ह मीरा की छाप से खपा लिया गया है, अच्छा निष्कप नही होगा। प्रक्षेपो की मान्यता के कारण मीरा के पदो म अनक विधता और विविधता मिलती है। हकीकत यह कि जब कोई सत या भक्त लोक तत्वो का सिद्ध बन जाता है तब वह व्यक्ति नहीं

रह जाता, उसकी बानी लोक बानी बन जाती है और अपने अपने ढग से व्यापक भूगोल मे, व्यापक देश-काल मे वह लोकवाही हो जाती है। इन व्यापकताओ के बीच मूल को छान निकालना कठिन काम हो जाता है। गोरख, कबीर, रैदास, सूर, तुलसी की तरह मीरा को छान निकालना भी कठिन काम कहा जाएगा। तथापि मीरा के पदो मे हम कुछ लक्षण ऐसे खोज सकते हैं जो 'मीरा की पहचान' बनाने वाले कहे जा सकते हैं, यथा—

(1) कबीर, सूर, की तरह पदो मे 'मीरा" 'दासी मीरा' की छाप एक पहचान कही जा सकती है।

(2) पदा मे आत्मनिष्ठता की प्रधानता। तदनुसार ही म्हैं', 'म्हारी', 'हम' के सम्बोधनो को एक पहचान बना सकत हैं।

(3) उक्तियो मे राजस्थानी लोकजीवन की रूढोक्तियो, कहावतो मुहावरो की अधिकता को एक पहचान बना सकत हैं। आम तौर पर हर पद मे उक्तियो की वह लौकिकता ही मीरा की मुख्य पहचान बन सकती है कि उनके कारण ही मीरा की अभिव्यक्ति मे खरापन, तीखापन, अल्हडता और सपाट बयानी आती है। सार रूप मे कथन शैली मे एक ओर हम 'कबीर' को रखें—अक्खडपन मे तो दूसरी ओर हमे मीरा को रखना चाहिए अल्हडपन मे—

(4) भाषा के शब्द रूपो को, व्याकरणिक गठन को, आधार बना कर हम पहचान नहीं बना सकते क्योकि जब बानी सावदेशिक हो जाती है तो उसका स्थानिक व्याकरण जीवित नही रहता। फिर, बानी युगजीवी हो जाए तो रूपाकार शेष नही रह जाता, भावना ही भावना रह जाती है। अत मीरा के पदो की पहचान हमे उसके पदो मे व्यक्त— (i) टेक, (ii) हठीलापन, (iii) एकागी समपण और (iv) धारदार गति से करनी चाहिए।

(5) यह भी नही भूलना चाहिए कि "कितनी भी लोको मुखी हो गई हो, अभिव्यक्ति मे कितनी भी धारदार हो गई हो, अतत मीरा राजघराने की राठौर कन्या थी, गुहिलोत बहू थी और राज मर्यादा उसके रक्त मे थी।"

अत मीरा के पदो को बहुत सावधानी के साथ—खास करके सयोग, वियोग से जुडे पदो को भावना भूमि पर परखने की कोशिश होनी चाहिए। इस दृष्टि मे एक आयाम यह भी जोड लेना चाहिए कि मीरा के जीवन क्रम के जितने मुकाम थे, पदो को उनसे सहयोजित करके देखना बेहतर होगा—यथा—(i) किशोरअवस्था, (ii) विवाह सुख की अवस्था, (iii) वैधव्य की वह अवस्था जो राणा सागा की

मृत्यु तक रही, (iv) वैधव्य की वह अवस्था जो रत्नसिंह के शासन के समय थी, (v) वैधव्य की वह अवस्था जो मेवाड त्याग से लेकर सम्पूर्ण निराश्रयता के समय तक थी और (vi) द्वारिकावास के समय की अवस्था। इन छह अवस्थाओं में मीरा के पदों को वर्गीकृत करके देखा जाए तो मीरा के पदों का कुछ प्रमाणिक स्वरूप उभर सकता है।

□□

सन्दर्भ सकेत

[सन्दर्भ देते समय पहले तो सन्दर्भ सख्या दी गई है। उसके बाद कोष्ठक मे पृष्ठ सख्या और पद सख्या।]

सकेत ग्रन्थ का नाम

1 महाराणा सागा—हरविलास शारदा
2 भारत का इतिहास—खण्ड III
3 राजस्थान के अभिलेखो का सास्कृतिक अध्ययन—डा० श्याम प्रसाद व्यास
4 राजस्थान के मेडतिया राठौड—डा० हुक्म सिह भाटी
5 सास्कृतिक गुजरात—गोपाल नारायण बहुरा
6 सोलहवी सदी मे राजस्थान—डा० मनोहर सिह राणावत
7 परम्परा (पत्रिका) भाग 63 64—सपा० नारायण सिह भाटी
8 मारवाड रा परगना री विगत—मुहता नैणसी—प्रथम भाग
9 मीरा व्यक्तित्व और कृतित्व—पद्मावती शबनम
10 मारवाड का इतिहास—रामकरण आसोपा
11 मीरा का जीवन वृत्त और काव्य—कल्याण सिह शेखावत
12 आल्हा खण्ड
13 हिन्दी वीर काव्य मे सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति—डा० राजपाल
14 उदयपुर का इतिहास—गौ० श० ही० च० ओझा
15 वीर भूमि चित्तौड—राम वल्लभ सोमानी
16 जैसलमेर की ख्यात [सवत 1513 मे चित्तौड पर राणा कुभा का राज्य था। उसकी पुत्री दिलकवर जैसलमेर के कुवर देवीदास को ब्याही गई थी। सवत 1585 मे लूणकरण भाटी को चित्तौड के राणा सागा की पुत्री सरस कवर ब्याही थी और उसने अपनी पुत्री राज कवर—उदैसिह को ब्याही थी।]
17 मीराबाई ऐतिहासिक व सामाजिक विवेचन—डा० हुकुमसिह भाटी

18 जयमल वश प्रकाश
19 मारवाड रा परगना री विगत—नैणसी द्वितीय भाग
20 मुगल कालीन सगुण भक्ति काव्य का सास्कृतिक विश्लेषण—डा० रत्नचन्द शर्मा
21 चुरु मडल का इतिहास—गोविन्द अग्रवाल
22 दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता
23 मीरा स्मृति ग्रथ—सपा० 'शलभ'
24 मारवाड का इतिहास—विश्वेशरनाथ रेऊ
25 वश भास्कर—सूर्यमल्ल मीसण
26 पूव आधुनिक राजस्थान—डा० रघुबीर सिह
27 मुगल कालीन सगुण भक्ति काव्य का सास्कृतिक विश्लेषण—डा० रत्नचन्द शर्मा
28 मध्यकालीन राजस्थान मे धार्मिक आदोलन—डा० पेमाराम
29 मध्यकालीन भारतीय सस्कृति—डा० गौ० ही० ओझा
30 मीराबाई री परची—परम्परा 1984
31 मीरा एक अतरग परिचय—नीलिमा सिह
32 मीराबाई—डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर
33 मीराबाई की पदावली—परशुराम चतुर्वेदी, सवत, 2012
34 रामचरित मानस—गो० तुलसीदास
35 मीरा मगल—मरुवाणी 3 1
36 राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी
37 लोक साहित्य विज्ञान—डा० सत्येन्द्र
38 हिन्दी उपन्यासो मे लोक तत्त्व—डा० इन्दिरा जोशी
39 यहाँ हमने आचाय परशुराम चतुर्वेदी, डा० कल्याणसिह शखावत तथा पद्मावली शबनम द्वारा चयनित पदो का सहारा लेकर लोकतात्त्विक अध्ययन किया है।
40 हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल
41 कबीर ग्रथावली—सपा० श्याम सुन्दरदास
42 सत साहित्य मे प्रतीक विधान—डा० मुहम्मद अहसन
43 राजस्थानी कहावत कोश—भगीरथ कानाडिया
44 मीराबाई—डा० प्रभात
45 ढोला मारू रा दूहा—डा० भगवती लाल शर्मा
46 मीरा सुधा सिधु—स्वामी आनन्द स्वरूप

—×—